PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor :

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSHA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2348:5639

SHODH SAMALOCHAN Jan-March : 2026

Dr. Versha Rani, Dr. Naresh Sihag, Adv.

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा भारत-नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Vol. : 13, Issue : 1

Jan-March : 2026

Executive Editor :
Dr. Varsha Rani

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

https://zenodo.org/records/18373199

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

संस्थापक संपादक
स्व. फतेहचंद

SHODH SAMALOCHAN

शोध-समालोचन (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

वर्ष-13, अंक-1 | जनवरी-मार्च / 2026 (भाग-2) | आईएसएसएन : 2348-5639

संरक्षक
- डॉ. इस्पाक अली, बैंगलुरु

संपादक
- डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

कार्यकारी संपादक
- डॉ. वर्षा रानी

प्रबंध संपादक
- डॉ. मुकेश 'ऋषिवर्मा'

सह-संपादक
- डॉ. लता एस. पाटिल,
- डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अक्षर संयोजन
- मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
- डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
- अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक मंडल

- आशीष कुमार, गाजियाबाद
- डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
- डॉ. निशीथ गौड, आगरा
- डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
- श्री शियोन छन श्यू, चीन
- डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
- डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
- डॉ. दीपशिखा, पटियाला
- डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
- श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
- डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
- डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
- डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
- डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा

1. 'शोध-समालोचन' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध-समालोचन' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक/ स्वामी डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवाया।

'शोध समालोचन' की सदस्यता का शुल्क भुगतान राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक का विवरण निम्नानुसार है–**बैंक :** PUNJAB NATIONAL BANK **Branch :** Yamuna Vihar, Delhi-110053 **IFSC :** PUNB0225600 **Account Holder :** SANIA PUBLICATION **Current Account No.** 2256002100405546 भुगतान की मूल रसीद, शोध -पत्र पत्रिका की ई-मेल पर भेजना अनिवार्य है।

नोट :- इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें मो. 9818128487

मूल्य : 650/- रु. एक प्रिंट प्रति | वार्षिक 2500/- रु.

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला-बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला-धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

Request to Writers

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

At the end of the composition, mention your complete postal address, mobile number and e-mail address.

- Editor

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :

सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094

मोबाइल : 9818128487, 8383042929

ISSN : 2348-5639

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

[भाग III—खण्ड 4] भारत का राजपत्र : असाधारण 105

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

संपादकीय

प्रिय पाठको,

शोध, समालोचना और विचार—ये तीनों किसी भी सशक्त बौद्धिक परंपरा के आधार स्तंभ हैं। शोध समालोचन त्रैमासिक पत्रिका का जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 अंक इन्हीं स्तंभों को केंद्र में रखकर पाठकों, शोधार्थियों और विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पत्रिका केवल शोध आलेखों के प्रकाशन तक सीमित नहीं, बल्कि ज्ञान की आलोचनात्मक परख, वैचारिक संवाद और समकालीन यथार्थ की गहन समझ को विकसित करने का सतत प्रयास है।

आज का समय तेज़ी से बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक परिदृश्य का समय है। एक ओर तकनीक और सूचना क्रांति ने ज्ञान को सुलभ बनाया है, तो दूसरी ओर सतही अध्ययन, जल्दबाज़ी में निष्कर्ष और शोध की औपचारिकता जैसे खतरे भी सामने आए हैं। ऐसे समय में शोध समालोचन जैसी पत्रिकाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जो शोध को केवल सूचना-संग्रह न मानकर, विवेकपूर्ण विश्लेषण और आलोचनात्मक दृष्टि से जोड़ती हैं।

शोध का वास्तविक उद्देश्य सत्य की खोज, समाज की समझ और मानवीय मूल्यों की रक्षा है। समालोचना इस प्रक्रिया को संतुलन प्रदान करती है। बिना समालोचना के शोध दिशाहीन हो सकता है और बिना शोध के समालोचना आधारहीन। शोध समालोचन पत्रिका इन दोनों के संतुलित समन्वय को अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता मानती है। इस त्रैमासिक अंक में प्रकाशित आलेख इसी समन्वय का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 के इस अंक में साहित्य, समाज, संस्कृति, इतिहास, शिक्षा, मीडिया और समकालीन विमर्श से जुड़े विविध विषयों पर केंद्रित शोध आलेख शामिल हैं। हिंदी साहित्य की आलोचना परंपरा, आधुनिक और उत्तर-आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, लोक-संस्कृति, पर्यावरणीय प्रश्न तथा डिजिटल युग में साहित्य और आलोचना की बदलती भूमिका जैसे विषयों पर गंभीर और विचारोत्तेजक लेख इस अंक को वैचारिक गहराई प्रदान करते हैं। इन आलेखों की विशेषता यह है कि वे केवल सैद्धांतिक बहस तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ से गहरे जुड़े हुए हैं।

शोध समालोचन शोध की गुणवत्ता, मौलिकता और संदर्भ-सटीकता को सर्वोपरि मानती है। आज जब शोध प्रकाशन की संख्या बढ़ी है, वहाँ यह आवश्यक हो गया है कि शोध नैतिकता, उद्धरण-पद्धति और बौद्धिक ईमानदारी पर विशेष ध्यान दिया जाए। इस पत्रिका में अपनाई गई पियर-रिव्यू प्रक्रिया इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है, जिससे प्रकाशित सामग्री अकादमिक दृष्टि से विश्वसनीय और उपयोगी सिद्ध हो सके।

यह पत्रिका अनुभवी विद्वानों के साथ-साथ नवोदित शोधार्थियों को भी समान मंच प्रदान करती है। नव शोधकर्ताओं की नई दृष्टि और वरिष्ठ विद्वानों के अनुभव का संगम ही किसी भी अकादमिक परंपरा को जीवंत और गतिशील बनाता है। इस अंक में यह संतुलन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, जो शोध समालोचन की समावेशी और लोकतांत्रिक सोच को रेखांकित करता है।

समकालीन समय में भाषा और संस्कृति के प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गए हैं। भारतीय भाषाओं में गंभीर शोध और आलोचना को बढ़ावा देना आज की आवश्यकता है। शोध समालोचन हिंदी भाषा के माध्यम से न केवल राष्ट्रीय, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श को सशक्त करने का प्रयास कर रही है। यह प्रयास भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक संदर्भों में पुनःस्थापित करने की दिशा में एक सार्थक कदम है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यह पत्रिका विचारधारात्मक संकीर्णता से बचते हुए विविध दृष्टिकोणों को स्थान देती है। स्वस्थ वैचारिक असहमति और तर्कपूर्ण संवाद किसी भी बौद्धिक समाज की पहचान होते हैं। शोध समालोचन इस लोकतांत्रिक बौद्धिक संस्कृति को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है, जहाँ शोध और समालोचना संवाद के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, न कि टकराव के माध्यम से।

अंततः, हम जनवरी-फरवरी-मार्च 2026 के इस अंक में योगदान देने वाले सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय सहयोगियों और पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। उनके विश्वास, परिश्रम और वैचारिक सहभागिता के बिना यह यात्रा संभव नहीं होती। हमें पूर्ण विश्वास है कि शोध समालोचन का यह त्रैमासिक अंक पाठकों को गहन चिंतन, विवेकपूर्ण विश्लेषण और सार्थक संवाद के लिए प्रेरित करेगा तथा शोध और समालोचना की परंपरा को नई ऊर्जा प्रदान करेगा।

सादर,

संपादक

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

विषयानुक्रमणिका

संपादकीय 6

शिक्षा प्रणाली में गांधीवादी मूल्यों का एकीकरण : एक समग्र दृष्टिकोण 11
डॉ. मो. हेदायतुल्लाह

बीकानेर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों एवं पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पिति मे सम्बन्ध का अध्ययन करना 15
डॉ. प्रीति ग्रोवर
प्रभा बिस्सा

गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में शैक्षिक विचारधारा का समालोचनात्मक अध्ययन 21
डॉ. सुमन रानी
कमलजीत कौर

स्वातन्त्र्योतर काव्य चिन्तन में युवा कविता : कुछ विचारणीय प्रश्न 26
डॉ. पूजा धामीजा
सुभाष चन्द्र वर्मा

चयनित हिंदी फ़िल्मों के संवादों का भाषाई दृष्टि से अध्ययन (1950 से 80) 30
रोहन कौशिक

Study Of Properties And Characteristic Behavior Of Analytic Functions 37
Rajender Kumar
Dr. Arvinder Kumar Bhardwaj

A Study of Mediaeval South India : Rani Umayamma and Mangammal 45
Dr. Shama Anjum

कबीरदास के काव्य में निहित मानवतावाद और उसके शैक्षिक निहितार्थ : एक गहन विश्लेषण 53
डॉ. सतीश चन्द मंगल
राम खिलाड़ी गुर्जर

नंदकिशोर नवल की आलोचनात्मक-दृष्टि और मैथिलीशरण गुप्त 57
सुशांत कुमार
डॉ. शिप्रा प्रभा

आत्मकथा के दृष्टिकोण से : परिवार का साथ और किन्नरों का विकास 61
डॉ. नेहा कुमारी

विलय-पूर्व अवध में गांव एवं तालुकदार में अंतर्संबंध 66
मो. नसरुल मुस्तफ़ा खान

नृत्य व पर्यावरण 71

श्रीमति प्रीति शर्मा

सुश्री मोनिका सोनी

श्रीमति निधि पंवार

भारत-चीन सैन्य गतिशीलता को आकार देने में अन्य पक्षों की भूमिका 74

कैलाश नाथ द्विवेदी

प्रो. ओ. पी. शुक्ला

उदय प्रकाश की महाकाव्यात्मक कहानी 'पीली छतरी वाली लड़की' में निहित मूल संवेदना 79

संतोष कुमार

Role of Organizational Reward Systems in Enhancing Employee Performance 82

Dr. Varsha Goyal

Sonia

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री श्रीरामचरितमानस में वर्णित शबरीजी एवं अहल्याजी को दिए गये भक्ति उपदेशों का अध्ययन करना 91

आरती दास

डॉ. अल्पना शर्मा

झुंझुनू जिले में अनाज, दलहन और तिलहन फसलों के अंतर्गत फसल प्रतिरूप 100

रीनू कुमारी

आधुनिक भारत में अम्बेडकर के दर्शन की भूमिका 107

Dr. Kamlesh Kumar Singh

डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा 'शंकी' की कविताओं में मानवीय चेतना 110

यादराम वर्मा

डॉ. कृष्ण कुमार

सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण 113

Dr. Dinesh Kumpawat

वृद्धावस्था में परिवार की भूमिका और देखभाल के स्वरूपों का समाजशास्त्रीय अध्ययन 122

Dr. Unnati Sharma

समन्वित ग्राम विकास : श्रीगंगानगर के संदर्भ में एक विस्तृत विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन 128

डॉ. सोमप्रकाश

अमरप्रीत सिंह

पृथ्वीराज चौहानकालीन सिक्कों का अध्ययन 137

डॉ. नीलम शर्मा

कोरोना त्रासदी : विभीषिका का साहित्यिक दस्तावेज ('अमर देसवा' के विशेष सन्दर्भ में) 142

डॉ. कुँवर संजय विक्रम सिंह

महिलाओं की स्थिति सुधार में बुद्धिजीवी वर्ग का योगदान : एक अध्ययन 148

कमला

आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि का विकास और उसका सामाजिक प्रभाव 153

आशा कुमारी / डॉ. विनोद कुमार शर्मा

साहित्य का सामाजिक विवेक : रामचन्द्र शुक्ल का आलोचनात्मक अवदान 158
रेमीसा सी.यु.
BRICS Expansion 2024: Impact on Global Power Balance 162
Pratyush Meher
उत्तराखंड राज्य के किशोरों के सामाजिक व्यवहार में सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 167
Km Preeti
Lucy Kumari
Astha
प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री विमर्श 173
Dr. Anupama
बीसवीं शताब्दी में गुरुधामों का अभिलेखन : भाई धन्ना सिंह चहल (पटियालवी) की साइकिल यात्राओं का ऐतिहासिक विश्लेषण 180
डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'
खड़ी बोली रामकाव्य में आधुनिक जीवन मूल्य : एक पुनर्विवेचन 184
डॉ. अंकिता पाण्डेय
रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटा हुआ' में अभिव्यक्त स्त्री चेतना 188
शकील
पर्यावरणीय जोखिम, संवेदनशीलता एवं अनुकूलन रणनीतियाँ: भूगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण 192
डॉ. पूनम कुमारी
जल संसाधनों का असमान वितरण और पर्यावरणीय संकट : एक क्षेत्रीय अध्ययन (बिहार के विशेष संदर्भ में) 201
डॉ. सुनीता कुमारी

शिक्षा प्रणाली में गांधीवादी मूल्यों का एकीकरण : एक समग्र दृष्टिकोण

डॉ. मो. हेदायतुल्लाह
राजनीति विज्ञान
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
Email: hedayatm60@gmail.com

सारांश : वर्तमान शिक्षा प्रणाली के रोजगार-केंद्रित, अंक-आधारित और मूल्य-विहीन मॉडल के संकट के समाधान हेतु गांधीवादी शिक्षा दर्शन ('नई तालीम') एक व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत करता है। यह शिक्षा सिद्धांत हस्तकला के माध्यम से बौद्धिक-शारीरिक श्रम के समन्वय, चरित्र निर्माण हेतु सत्य-अहिंसा जैसे मूल्यों के एकीकरण, और शिक्षा को समुदाय की आवश्यकताओं से जोड़ने पर बल देता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अवसर का उपयोग करते हुए, इस दृष्टिकोण को पाठ्यचर्या सुधार, अनुभवात्मक शिक्षण पद्धतियों, शिक्षक प्रशिक्षण और वैकल्पिक मूल्यांकन प्रणालियों में समावेशित करके एक संतुलित, मानव-केंद्रित और सामाजिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया जा सकता है, जो विद्यार्थियों को केवल कुशल पेशेवर ही नहीं, बल्कि संवेदनशील नागरिक बनने की दिशा में तैयार करे।

की वर्ड : बुनियादी शिक्षा, चरित्र निर्माण, हस्तकला शिक्षा, समग्र विकास, नैतिक मूल्य, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, सत्य-अहिंसा, स्वदेशी, अपरिग्रह, सर्वोदय, शिक्षक प्रशिक्षण, मूल्यांकन पद्धति, ग्राम स्वराज।

प्रस्तावना : वर्तमान शैक्षणिक प्रणाली मौलिक संकट से गुज़र रही है। यह प्रणाली जहाँ एक ओर उपभोक्तावादी बाज़ार की माँगों को पूरा करने के लिए यंत्रवत मानव तैयार कर रही है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को उपेक्षित कर रही है। रोटी कमाने के लिए डिग्रियाँ प्रदान करने वाली यह शिक्षा जीवन जीने की कला सिखाने में विफल रही है। यूनेस्को की 2021 की रिपोर्ट 'फ्यूचर्स ऑफ एजुकेशन' इस बात की पुष्टि करती है कि "वैश्विक शिक्षा प्रणाली संकट में है और इसे मूलभूत पुनर्विचार की आवश्यकता है।"[1] इसी संदर्भ में महात्मा गांधी की शैक्षिक दृष्टि—'नई तालीम' या 'बुनियादी शिक्षा'—एक प्रासंगिक और क्रांतिकारी विकल्प प्रस्तुत करती है। गांधी की शिक्षा दर्शन के केन्द्र में मनुष्य का समग्र विकास है, जो जीवन के सभी पहलुओं—बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक—को समाहित करता है।

गांधीवादी शिक्षा दर्शन के मूल सिद्धांत

हस्तकला के माध्यम से शिक्षा - गांधी की 'नई तालीम' की सबसे विशिष्ट विशेषता हस्तकला को शिक्षा का माध्यम बनाना है। उनका मानना था कि "हाथ और दिमाग का समन्वय ही सच्ची शिक्षा है।"[2] उन्होंने चरखा, बुनाई, कृषि, मिट्टी के बर्तन बनाने जैसे हस्तशिल्प को शिक्षण का केंद्र बनाया। इसके पीछे तर्क था कि :

बौद्धिक और शारीरिक श्रम का समन्वय : यह शिक्षा विद्यार्थी को सम्पूर्ण व्यक्ति के रूप में विकसित करती है।

आत्मनिर्भरता का विकास : छात्र उपयोगी कौशल सीखते हैं जो उन्हें जीविकोपार्जन में सहायक होते हैं।

शिक्षा का व्यावहारिकीकरण : सीखना अमूर्त न रहकर मूर्त और प्रयोगात्मक हो जाता है।

शिक्षा मनोविज्ञान के शोध भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि "किनेस्टेटिक लर्निंग" या गतिमान शिक्षण बच्चों की संज्ञानात्मक क्षमताओं को बढ़ाता है।[3] गांधी का यह दृष्टिकोण आज के 'स्टीम एजुकेशन' (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कला और गणित) से भी आगे का समग्र मॉडल प्रस्तुत करता है।

चरित्र निर्माण (नैतिक शिक्षा को केन्द्र में रखना)- गांधी के लिए शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य चरित्र निर्माण था। वे कहते थे, "शिक्षा का अर्थ है बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में निहित सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास।"[4] उनकी शिक्षा योजना में निम्नलिखित मूल्य अनिवार्य थे :

सत्य और अहिंसा : व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का आधार।

स्वदेशी : स्थानीय संसाधनों, संस्कृति और समुदाय के प्रति प्रेम।

अपरिग्रह : सादगी और संयम का जीवन।

सर्वधर्म समभाव : सभी धर्मों के प्रति सम्मान।

ये मूल्य केवल सैद्धांतिक शिक्षा नहीं, बल्कि दैनिक जीवन के व्यवहार में अनुप्रयोग के लिए थे। आज जब शैक्षणिक संस्थानों में "नैतिक मूल्यों के संकट" की चर्चा हो रही है, गांधी का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) की 2019 की रिपोर्ट भी भारतीय स्कूलों में मूल्य शिक्षा को व्यवस्थित रूप से शामिल करने की अनुशंसा करती है।[5]

समुदाय-केंद्रित शिक्षा (शिक्षा को समाज से जोड़ना)- गांधी की शिक्षा योजना शिक्षार्थी को समुदाय से अलग नहीं करती। उनका "ग्राम स्वराज" का विचार शिक्षा को गाँव की आवश्यकताओं और संदर्भ से जोड़ता है। इस मॉडल में :

- पाठ्यचर्या स्थानीय संदर्भ पर आधारित होती है।
- विद्यार्थी समुदाय की समस्याओं के समाधान में सक्रिय भागीदारी करते हैं।
- शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन होता है।

यह दृष्टिकोण आज के "सामुदायिक-आधारित शिक्षण" और "सर्विस लर्निंग" की अवधारणाओं से पूर्णतः सामंजस्य रखता है। यूनेस्को के 'ग्लोबल सिटिजनशिप एजुकेशन' कार्यक्रम का उद्देश्य भी शिक्षार्थियों को स्थानीय और वैश्विक समुदाय के सक्रिय सदस्य बनाना है।[6]

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में गांधीवादी मूल्यों का एकीकरण : व्यावहारिक रूपरेखा

पाठ्यचर्या सुधार (संतुलित शिक्षण की ओर)- वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 ने गांधीवादी सिद्धांतों को आंशिक रूप से शामिल करने का प्रयास किया है। पूर्ण एकीकरण के लिए निम्नलिखित कदम आवश्यक हैं :

बुनियादी कौशल का अनिवार्य समावेश : कक्षा 6 से 12 तक प्रत्येक विद्यार्थी के लिए कम से कम एक हस्तकला या व्यावसायिक कौशल (जैसे बागवानी, लकड़ी का काम, कपड़ा बुनाई, डिजिटल डिज़ाइन) अनिवार्य हो। यह "बुनियादी शिक्षा" के सिद्धांत पर आधारित हो।

मूल्य-आधारित शिक्षा का व्यवस्थित पाठ्यक्रम : प्रत्येक कक्षा में आयु-उपयुक्त तरीके से नैतिक शिक्षा के पाठ शामिल हों। इनमें गांधी के जीवन प्रसंग, सत्य और अहिंसा के प्रयोग, और पर्यावरण संरक्षण जैसे विषय सम्मिलित हों। इन्हें केवल नैतिक शिक्षा की पुस्तकों तक सीमित न रखकर विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में भी समेकित किया जाए। जैसा कि कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक 'द पॉलिटिकल एजुकेशन ऑफ महात्मा गांधी' में लिखा है, "गांधी के लिए शिक्षा कभी भी मूल्य-निरपेक्ष नहीं हो सकती थी।"[7]

स्थानीय ज्ञान प्रणाली का सम्मान : पाठ्यपुस्तकों में स्वदेशी ज्ञान, स्थानीय इतिहास, क्षेत्रीय भाषाओं और परंपरागत

कलाओं को समुचित स्थान दिया जाए। यह 'स्वदेशी' के सिद्धांत को शिक्षा में उतारने का प्रयास होगा।

शिक्षण पद्धति में परिवर्तन (छात्र-केंद्रित और अनुभवात्मक शिक्षण)- गांधी की शिक्षा पद्धति रटंत प्रणाली के विरुद्ध थी। आधुनिक शिक्षण विधियों के साथ इसका एकीकरण इस प्रकार संभव है :

प्रोजेक्ट-आधारित शिक्षण : विद्यार्थी ऐसे प्रोजेक्ट्स पर कार्य करें जो स्थानीय समस्याओं (जैसे जल संरक्षण, अपशिष्ट प्रबंधन, सामाजिक समरसता) से जुड़े हों। इससे उनमें "समस्या-समाधान कौशल" और "सामाजिक उत्तरदायित्व" का विकास होगा।

सहकारी शिक्षण : प्रतिस्पर्धा पर सहयोग को प्रोत्साहन। कक्षा में ऐसी गतिविधियाँ जहाँ विद्यार्थी समूह में कार्य करके सीखें। यह गांधी के 'सर्वोदय' (सभी का उत्थान) के सिद्धांत को प्रतिबिंबित करेगा।

प्रकृति के साथ जुड़ाव : शिक्षण को कक्षा की चारदीवारी से बाहर ले जाना। पर्यावरण शिक्षा को केवल पुस्तकीय ज्ञान न बनाकर प्रकृति के सीधे संपर्क और संरक्षण गतिविधियों के माध्यम से सिखाना। रबीन्द्रनाथ टैगोर के 'शांतिनिकेतन' मॉडल और गांधी के 'सेवाग्राम' दोनों ही इस दृष्टिकोण के प्रबल पक्षधर थे।

शैक्षिक शोध यह दर्शाते हैं कि "अनुभवात्मक शिक्षण" विद्यार्थियों की समझ को गहरा करता है और उनमें आत्मविश्वास पैदा करता है।[8]

शिक्षक प्रशिक्षण (गांधीवादी मूल्यों के वाहक के रूप में)- किसी भी शैक्षिक सुधार की सफलता शिक्षकों पर निर्भर करती है। गांधीवादी मूल्यों के एकीकरण के लिए शिक्षक शिक्षा में निम्नलिखित परिवर्तन अनिवार्य हैं :

पाठ्यक्रम में गांधी दर्शन का समावेश : बी.एड. और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में 'गांधीवादी शिक्षा दर्शन' एक अनिवार्य विषय हो।

शिक्षकों के लिए नैतिक संहिता : एक ऐसी संहिता का विकास जो शिक्षकों से केवल शैक्षणिक दक्षता ही नहीं, बल्कि सादगी, ईमानदारी, और सेवा-भाव की अपेक्षा करे।

समुदाय के साथ जुड़ाव प्रशिक्षण : शिक्षक प्रशिक्षण में समुदाय की आवश्यकताओं को समझने और उन्हें पाठ्यचर्या से जोड़ने के कौशल विकसित करने पर जोर।

"अध्यापक गांधीवादी शिक्षा का केंद्र बिंदु है, उसे स्वयं इन मूल्यों को जीना होगा।"[9] शिक्षक केवल जानकारी प्रदाता नहीं, बल्कि एक "आदर्श" और "मार्गदर्शक" बनें।

चुनौतियाँ

बाज़ारवादी दबाव : अभिभावक और विद्यार्थी रोजगारोन्मुखी शिक्षा पर जोर देते हैं, जो अक्सर मूल्य-आधारित शिक्षा के साथ संघर्ष करता है।

मूल्यांकन की सीमाएँ : वर्तमान परीक्षा प्रणाली स्मृति और तार्किक कौशल का तो आकलन करती है, लेकिन चरित्र, सहयोग और सामाजिक संवेदनशीलता का नहीं।

संसाधनों की कमी : हस्तकला और अनुभवात्मक शिक्षण के लिए अतिरिक्त संसाधन, स्थान और प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता होती है।

राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव : शिक्षा नीति में निरंतर परिवर्तन और मूलभूत सुधारों के प्रति उदासीनता।

समाधान और रणनीतियाँ

चरणबद्ध कार्यान्वयन : पूर्ण प्रणालीगत परिवर्तन के स्थान पर, एक विद्यालय, एक ब्लॉक या एक जिले स्तर पर पायलट प्रोजेक्ट्स शुरू किए जाएँ। सफलता मिलने पर इसे विस्तार दिया जाए। गुजरात का "गांधी तालीमी संघ" और महाराष्ट्र के "नई तालीमी समिति" इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

वैकल्पिक मूल्यांकन पद्धतियाँ : पोर्टफोलियो आकलन, समूह परियोजनाओं का मूल्यांकन, सामुदायिक सेवा का दस्तावेजीकरण, और स्व-मूल्यांकन जैसी तकनीकों को शामिल किया जाए। इससे विद्यार्थी का "समग्र विकास कार्ड" तैयार हो सकता है।

सार्वजनिक-निजी साझेदारी : उद्योग जगत और सामाजिक संगठन शिक्षा में हस्तकला और कौशल विकास के लिए संसाधन और विशेषज्ञता उपलब्ध करा सकते हैं। "स्वदेशी" के सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए स्थानीय उद्योगों के साथ सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

प्रौद्योगिकी का सकारात्मक उपयोग : डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग गांधी के जीवन और सिद्धांतों को रोचक ढंग से पढ़ाने, देश भर के शिक्षकों को जोड़ने और अच्छे अभ्यासों को साझा करने के लिए किया जा सकता है। हालाँकि, गांधीवादी सादगी के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए प्रौद्योगिकी का संयमित और उद्देश्यपूर्ण उपयोग होना चाहिए।

निष्कर्ष : 21वीं सदी की शिक्षा के समक्ष जो चुनौतियाँ हैं—बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, सामाजिक विखंडन, पर्यावरणीय संकट और अर्थपूर्ण जीवन की खोज—उन सभी का समाधान गांधीवादी शिक्षा दर्शन में निहित है। "नई तालीम" कोई पुरातनपंथी विचार नहीं, बल्कि एक भविष्योन्मुखी और क्रांतिकारी शैक्षिक दर्शन है जो मनुष्य को मशीन नहीं, संवेदनशील और जिम्मेदार नागरिक बनाना चाहता है।

शिक्षा में गांधीवादी मूल्यों का एकीकरण एक "सतत प्रक्रिया" है, जिसके लिए शिक्षकों, अभिभावकों, नीति निर्माताओं और समाज सभी की सामूहिक इच्छाशक्ति आवश्यक है। जैसा कि गांधी ने स्वयं कहा था, "सच्ची शिक्षा वह है जो हमें स्वयं पर नियंत्रण सिखाए।" आज के अति-उपभोग, प्रतिस्पर्धा और बेचैनी के युग में, आत्म-नियंत्रण और संतोष का यह पाठ ही हमारी शिक्षा प्रणाली और समाज को सच्ची मुक्ति और समृद्धि की ओर ले जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस दिशा में पहला कदम उठाया है; अब आवश्यकता है इसके प्रभावी कार्यान्वयन और गांधीवादी दृष्टि को पूर्ण रूप से आत्मसात करने की।

संदर्भ सूची

1. यूनेस्को (UNESCO). (2021). फ्यूचर्स ऑफ एजुकेशन : लर्निंग टू बिकम (शिक्षा का भविष्य : बनने के लिए सीखना). पेरिस : यूनेस्को प्रकाशन. पृ. 15.
2. गांधी, एम.के. (1937, 31 जुलाई). 'बेसिक एजुकेशन'. हरिजन. अहमदाबाद.
3. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (National Education Policy 2020). नई दिल्ली. खंड 4.5.
4. गांधी, एम.के. (1931, 21 मई). 'दी अर्थ ऑफ एजुकेशन'. यंग इंडिया.
5. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT). (2019). लर्निंग विदाउट बर्डन : एक्सपीरियंसेस फ्रॉम द फील्ड (बोझ के बिना सीखना : मैदानी अनुभव). नई दिल्ली : एनसीईआरटी. पृ. 45.
6. यूनेस्को (UNESCO). (2015). ग्लोबल सिटिजनशिप एजुकेशन : टॉपिक्स एंड लर्निंग ऑब्जेक्टिव्स (वैश्विक नागरिकता शिक्षा : विषय और अधिगम उद्देश्य). पेरिस : यूनेस्को. पृ. 18.
7. कुमार, कृष्ण. (2001). द पॉलिटिकल एजुकेशन ऑफ महात्मा गांधी (महात्मा गांधी की राजनीतिक शिक्षा). नई दिल्ली : ओरिएंट लॉन्गमैन. पृ. 89.
8. कॉल्ब, डेविड ए. (1984). एक्सपीरियंशियल लर्निंग : एक्सपीरियंस एज़ द सोर्स ऑफ लर्निंग एंड डेवलपमेंट (अनुभवात्मक शिक्षण : अनुभव, सीखने और विकास का स्रोत). न्यू जर्सी : प्रेंटिस-हॉल. पृ. 34.
9. गुप्ता, अरविंद. (2018). 'द रोल ऑफ टीचर इन गांधियन एजुकेशन'. (इंटरव्यू). प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन, नई दिल्ली.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बीकानेर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों एवं पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पिति में सम्बन्ध का अध्ययन करना

डॉ. प्रीति ग्रोवर
आचार्य
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

प्रभा बिस्सा
पी.एच.डी. शोद्यार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

सारांश

प्रस्तुत शोध में "बीकानेर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों एवं पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पिति में सम्बन्ध का अध्ययन करना" किया गया हैं। अध्ययन में प्राप्त आंकडों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गए है। प्रस्तुत शोध में राजस्थान राज्य के बीकानेर जिले के इस शोध कार्य हेतु चयनित विद्यालयों में अध्ययनरत् 500 विद्यार्थियों को वर्गीकृत क्रम मे यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत लाटरी विधि से चयनित किया गया है। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों को मापन हेतु डॉ. मंजू अग्रवाल एवं पारिवारिक संस्कारों मापने के लिए स्वनिर्मित उपकरणों का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में राजकीय उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों एवं पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पति पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

मुख्य शब्द- उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, व्यक्तित्व गुण, पारिवारिक संस्कार एवं शैक्षिक निष्पिति

प्रस्तावना

शिक्षा को शब्दों में बांधना मुश्किल है इस संदर्भ में केवल इतना कह देना ही सही ही होगा की शिक्षा माता के समान पालन पोषण करती है पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने में लगाती है। जिस प्रकार सूरज की रोशनी पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्यास्त होने पर कुम्हला जाता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा की रोशनी को पाकर व्यक्ति कमल की भाँति खिल उठता तथा अशिक्षित रहने पर गरीबी, शोक एवं कष्ट के अंधकार में डूब जाता है। इस प्रकार यह रोशनी देने वाली शिक्षा अपने घर और विद्यालय से प्राप्त होती है। पारिवारिक वातावरण और विद्यालय वातावरण दोनों ही बच्चे के जीवन को प्रभावित करते हैं। अगर दोनों का वातावरण सकारात्मक है तो बच्चे में अनेक प्रकार के आदर्श, मूल्य, गुणों तथा संस्कारों का विकास होता है और यदि नकारात्मक है तो बच्चा अनेक प्रकार के अवगुणों से भर जाता है। शिक्षा समाज में निरंतर चलने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है।

शिक्षा वास्तव में बाहर से लादी जाने वाली शिक्षा नहीं है, वह व्यक्ति के अंदर से उत्पन्न होने वाली शक्ति या ऊर्जा है जिसके प्रकाश में व्यक्ति विवेक द्वारा सत्य और असत्य को समझने में समर्थ होता है।

डी.वी. महोदय के अनुसार ''शिक्षा वह है जो बालक को इस योग्य बनाए कि वह स्वयं के लिए चिंतन कर सके, अच्छा मसीहा बन सके तथा जीवन का आनन्द उठा सके।''

शिक्षा एक ऐसा साधन है जो मानव को प्राणी जगत के अन्य जीवों से पृथक करती है। शिक्षा का मानव जीवन में काफी महत्व है। शिक्षा के बिना मानव पशु के समान है। शिक्षा मानव को एक सामाजिक प्राणी बनाकर सांस्कृतिक धरोहर को आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करने के काबिल बनाती है।

बिना शिक्षा के कोई भी व्यक्ति सुव्यवस्थित व सुसंस्कृत नहीं हो सकता है। शिक्षा से ही मानव का सर्वागीण विकास होता है। मानव अपना व्यक्तित्व, जीवन सुखमय बनाता है और सामाजिक जीवन में अपने कर्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र के विकास में योगदान देता है। शिक्षा के फल स्वरुप मनुष्य एक दूसरे के लिए प्रेम सहानुभूति सेवा तथा त्याग की भावना का अनुभव करता है। शिक्षा प्राप्त करने के कारण ही हम विविध सामाजिक संस्थाओं का निर्माण करते हैं। और विकास के पथ पर आरूढ़ रह रहते है। शिक्षा के ही फल स्वरूप कला साहित्य व विज्ञान के क्षेत्र में अपूर्व कृतियों का निर्माण होता है। शिक्षा के कारण तो आज की मानव सभ्यता और संस्कृति अपने के वर्तमान स्तर पर पहुंच सकी है। जिन बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त होती है वह श्रेष्ठ रूप से विकास करते हैं। इसके विपरीत कम शिक्षित बच्चे पिछड़े रह जाते हैं। विद्यालय समाज की प्रतिनिधि संस्था है जो सामाजिक प्राणी को समाज में रखकर सामाजिक विकार को दूर करते हुए मनुष्य को मनुष्य का दर्जा दिलाने में सहयोग करती है।

वर्तमान युग में विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते कदम 21वीं सदी में परिवर्तनशील राष्ट्रीय व समाजिक परिस्थितियाँ, शिक्षकों को भावी पीढ़ी के लिए सोचने पर मजबूर कर रही हैं। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधन 1992 में शिक्षा बाल केंद्रित हो गई। अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को मजबूती प्रदान कर सकता है ताकि व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर उनके संपूर्ण व्यक्तित्व विकास हेतु कक्षा में छात्रों को उपयुक्त वातावरण प्रदान कर सके साथ ही संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करके उनमें राजकीय उच्च आकांक्षाओं को विकसित कर सके।

परिवार मनोवांचित गुणों की प्राथमिक पाठशाला भी है क्योंकि परिवार से प्राप्त संस्कार ही बालक को सुदृढ़ चरित्र का निर्माण करते हैं और उसे सही दिशा निर्देश देकर एक सुयोग्य नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

1.2 शोध की आवश्यकता-

वर्तमान समय में शिक्षा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। भारत में नामांकन का प्रतिशत दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अशिक्षित माता पिता भी अपनी संतान को शिक्षा प्रदान करने में तन मन और धन से न्यौछावर रहते हैं परंतु फिर भी यदि देखा जाए तो सभी बालक की शैक्षिक निष्पत्ति समान नहीं होती। वार्षिक परिणाम में प्रत्येक बालक की शैक्षिक निष्पत्ति की विभिन्नता के दर्शन आसानी से किए जा सकते हैं।

इस विषय में गहन अध्ययन की आवश्यकता है कि भिन्न-भिन्न विद्यालय वातावरण में दी गई शिक्षा में तो शैक्षिक निष्पत्ति के स्तर में भिन्नता आ सकती है परंतु एक ही विद्यालय वातावरण में दी गई शिक्षा जो कि एक ही शिक्षक ने एक ही शिक्षण विधि के माध्यम से दी है फिर भी शैक्षिक निष्पत्ति में पर्याप्त अंतर दिखाई दे जाएगा।

शोधकर्त्री के मस्तिष्क में इस विषय से सम्बन्धित अनेक प्रश्न उठे। जैसे बालक के व्यक्तित्व का उसकी शैक्षिक निष्पत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है। बालक के व्यक्तित्व में ऐसे कौन कौन से गुण हैं जो कि बालक की निष्पत्ति को कुछ बना सकते हैं। और ऐसे गुणों का विकास किस प्रकार किया जा सकता है। बालक के व्यक्तित्व का उसकी निष्पत्ति पर कितने प्रतिशत प्रभाव पड़ता है, क्या शैक्षिक निष्पत्ति पूर्णतया व्यक्तित्व गुणों से प्रभावित होती है, शैक्षिक निष्पत्ति को प्रभावित करने में व्यक्ति व गुणों के अतिरिक्त कौन-कौन से तत्व सहयोगी होते है।

शोधकर्त्री इस पर भी विचार करने के लिए मजबूर हो गई है कि बालक के पारिवारिक संस्कार उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव डालते है या नहीं। पारिवारिक संस्कारों का निर्वहन हमारे व्यक्तित्व के गुणों को प्रभावित करता है या नहीं। क्या पारिवारिक संस्कारों का निर्वहन करते करते संस्कार उनके रग-रग में बस जाता है? परिवार के प्रति, देश के प्रति जिम्मेदारियों

का निर्वहन करना उनकी आदत बन जाती है। ऐसा व्यक्तित्व इतनी प्रखरता लिए हुए होता है कि नकारात्मकता उनके आसपास भी दिखाई नहीं देती है तो क्या शैक्षिक निष्पत्ति उच्च होती है?

पारिवारिक संस्कारों का शैक्षिक निष्पत्ति पर कितना प्रभाव पड़ता है? क्या यह प्रभाव हमेशा खराब होता है? क्या यह प्रभाव सकरात्मक होता है? शैक्षिक निष्पत्ति पर पारिवारिक संस्कारों का प्रभाव छात्रों पर अधिक होता है या छात्राओं पर? छात्र-छात्राओं के शैक्षिक निष्पत्ति पर उनके पारिवारिक संस्कारों का प्रभाव लैंगिक भिन्नता लिए हुए होता है अथवा नहीं?

शहरी विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति के प्रभावकारी कारक कौन-कौन से है? क्या ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों में पारिवारिक संस्कारों में अंतर पाया जाता है?

इस प्रकार के अनेक प्रश्न शोधार्थी के मस्तिष्क में कौधते रहे। शोधकर्त्री को आवश्यकता महसूस हुई यह जानने की शैक्षिक निष्पत्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं? व्यक्तित्व कारकों का क्या महत्व है इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए शोधकर्त्री ने निम्न समस्या का चयन किया।

समस्या कथन -

"बीकानेर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों एवं पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पिति में सम्बन्ध का अध्ययन करना"

अध्ययन में प्रस्तुत तकनीकी शब्दों की व्याख्या -

उच्च माध्यमिक स्तर

उच्च माध्यमिक प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा-11 के विद्यार्थियों को राजकीय उच्च माध्यमिक स्तरीय मानते हुए न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक प्रणाली के द्वारा स्वीकार किया गया है।

व्यक्तित्व गुण - व्यक्तित्व का अर्थ बहुत व्यापक है व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है।

1. आंतरिक

2. बाह्य

प्रस्तुत अध्ययन में संपूर्ण व्यक्तित्व को समेटा गया है व्यक्तित्व की समस्त क्रियाओं से उसके व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं को जाना जा सकता है।

पारिवारिक संस्कार -

परिवार मानवोचित गुणों की प्राथमिक पाठशाला भी है क्योंकि परिवार से प्राप्त संस्कारों ही बालक के सुदृदृढ़ चरित्र का निर्माण करते हैं। बालक के आचार व्यवहार को देखकर हम उसके परिवार से प्राप्त संस्कार को आसानी से ज्ञात कर सकते हैं। संस्कारों से अपने आचार विचार में संशोधन एवं परिष्कार होता है। संस्कार मानव जीवन को परिमार्जित परिष्कृत और सुव्यवस्थित रखने का एक उपक्रम है। घर के शैक्षिक वातावरण से प्राप्त संस्कारों का प्रकटीकरण कक्ष में होता रहता है। क्योंकि बालक अपने पारिवारिक वातावरण का दर्पण होता है।

शैक्षिक निष्पत्ति - निष्पत्ति का आशय है कि छात्र द्वारा विभिन्न विषयों में प्राप्त परिपूर्णता का स्तर। शैक्षिक निष्पत्ति का आशय विद्यार्थियों के कक्षा-10 में प्राप्त परीक्षा परिणाम से है शोधार्थी का शैक्षिक निष्पत्ति से आशय है कि न्यादर्श हेतु चयनित छात्र अथवा छात्रा विद्यालय में कितने प्रतिशत अंक प्राप्त करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

(1) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

(2) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकपनाएँ :-

(1) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

(2) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

न्यादर्श :-प्रस्तुत शोध में प्रस्तुत शोध में राजस्थान राज्य के बीकानेर जिले के इस शोध कार्य हेतु चयनित विद्यालयों में अध्ययनरत् 500 विद्यार्थियों को वर्गीकृत क्रम मे यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत लाटरी विधि से चयनित किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :-

1. व्यक्तित्व गुण मापनी (डॉ. मंजू अग्रवाल)

2. पारिवारिक संस्कार मापनी (स्वनिर्मित)

प्रदत्तों का विश्लेषण व विवेचन -

(1) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

सारणी संख्या - 1

चर	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	सहसम्बन्ध	सार्थकता का स्तर
उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुण	500	145.24	12.349	0.063	स्वीकृत
उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति	500	73.38	11.052		

व्याख्या :- परिकल्पना संख्या 1 के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्धित दत्तों को विश्लेषित किया गया है। उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति के प्रदत्तों के मध्यमान व मानक विचलन के आधार पर सहसम्बन्ध गुणांक त-का प्राप्त मान सार्थकता के स्तर 0.01व 0.05 पर सारणी मान से कम है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्री द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति एक दूसरे से प्रभावित नहीं होते है तथा दोनो सहसम्बन्धित नहीं है अर्थात् उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व गुणों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

(2) उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

सारणी संख्या - 2

चर	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	सहसम्बन्ध	सार्थकता का स्तर

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कार	500	74.49	11.11	0.048	स्वीकृत
उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति	500	73.27	10.842		

परिकल्पना संख्या 2 के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्धित प्रदत्तों के मध्यमान व मानक विचलन के आधार पर सहसम्बन्ध गुणांक त- का प्राप्त मान सार्थकता के स्तर 0.01 व 0.05 पर सारणी मान से कम है। अतः इस आधार पर शोधकर्त्री द्वारा निर्मित शून्य परिकल्पना को सार्थकता के दोनों स्तरों पर स्वीकृत किया जाता है तथा परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति एक दूसरे से प्रभावित नहीं होते है तथा दोनो सहसम्बन्धित नहीं है। अर्थात् उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर कोई सार्थक संबंध नहीं पड़ता।

शैक्षिक सुझाव

1. विद्यालय में आयोजित होने वाली सांस्कृतिक, साहित्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं में अधिक से अधिक भाग लेना चाहिए ताकि व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सके। ताकि विद्यार्थियों को सीखने के अवसर प्राप्त हो।

2 विद्यार्थियों को शिक्षा संबंधित समस्याओं से अध्यापकों व अभिभावकों को अवगत कराना चाहिए ताकि उसका समाधान किया जा सके।

3. विद्यार्थियों को चाहिए कि वह कक्षा में स्वयं विनियमित शिक्षार्थी बनने का प्रयास करें क्योंकि स्वयं भी नियमित शिक्षण यह सुनिश्चित करता है कि छात्र सीखने के दृष्टिकोण में सक्रिय है।

4. बालक को शुरू से ही अच्छे संस्कारों को अपनाकर आगे बढ़ना चाहिए जिससे वरिष्ठ नागरिक बन सके। संस्कारों का निर्माण होने के बालक में सहयोग और सहानुभूति, सेवा, नैतिकता यह सभी सामाजिक गुण आ जाते हैं।

भावी शोध हेतु सुझाव

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन का कार्य उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र छात्राओं पर किया गया है। इस प्रकार का शोध अध्ययन प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर, स्नातक स्तर तथा परास्नातक स्तर के छात्र-छात्राओं पर भी किया जा सकता है।

2. विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का उनकी बु(पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

3. प्रस्तुत शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर विद्यार्थियों पर किया गया है। इसको अन्य वर्ग शिक्षक, अभिभावकों आदि पर भी किया जा सकता है।

4. अनुसूचित जाति व सामान्य जाति के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

5. अनुसूचित जाति व सामान्य जाति के विद्यार्थियों के पारिवारिक संस्कारों का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

6. वंचित बालकों व सामान्य बालकों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. कौर किरणदीप और संधु ''विद्यार्थियों के पारिवारिक लगाव, पालन-पोषण प्रणाली का विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्धारण का तुलनात्मक अध्ययन''।
2. कपिल, एच. के. (2006), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
3. गुप्ता, मधु 2005, परिवार की प्रकृति, गृह वातावरण और माता पिता की सहभागिता का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव, परिप्रेक्षय, वर्ष-12, अंक-2, अगस्त 2005, पेज नं. 103-114।
4. डॉ. शर्मा, वी. एस. ''शिक्षा मनोविज्ञान'' साहित्य प्रकाशन आगरा (2004)
5. डॉ. अरोड़ा रीता, सुदेश मारवाह (2005) ''शिक्षा मनो विज्ञान एवं सांख्यिकी'' शिक्षा प्रकाशन जयपुर पृष्ठ संख्या (407-430)
6. पाण्डेय लक्ष्मी नारायण 2010 'माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के समायोजन, मूल्यों एवं अध्ययन आदतों पर पारिवारिक सम्बन्धों के प्रभाव का अध्ययन' पी-एच.डी. स्तरीय शोधकार्य आई. एएसई मान्य विश्वविद्यालय सरदार शहर
7. सिंह, रामपाल और शर्मा, ओ.पी. (2008), शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय, आगरा अग्रवाल पब्लिकेशन।
8. सुखिया, एस.पी. (1990) शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
9. श्रीवास्तव, डी.एन. और वर्मा, प्रीति (2007) शिक्षा अनुसंधान में सांख्यिकी विधियाँ आगराः विनोद पुस्तक मंदिर

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में शैक्षिक विचारधारा का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. सुमन रानी
आचार्या
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

कमलजीत कौर
पी.एच.डी. शोद्यार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

सारांश

तुलसीदास की शैक्षिक विचारधारा न केवल ऐतिहासिक महत्व रखती है, बल्कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए भी मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में स्वीकार्य है। उनके विचार शिक्षा को भारतीय संस्कृति की जड़ों से जोड़ते हैं, नैतिक मूल्यों को पुनःजीवित करते हैं और शिक्षा को जीवन के वास्तविक उद्देश्यों की ओर उन्मुख करते हैं। यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी शैक्षिक उपयोगिता है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थायी प्रेरणास्रोत बनी रहेगी। अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि तुलसीदास का शैक्षिक दर्शन आज भी शिक्षा-व्यवस्था के मानवीय, भावनात्मक, सांस्.तिक एवं नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा प्रदान करता है।

संकेत शब्द - गोस्वामी तुलसीदास, साहित्य में शैक्षिक विचारधारा, समालोचनात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना

आधुनिक भारत में शिक्षा के विकसित और सर्वाधिक समाजोपयोगी स्वरूप के प्रस्तुतीकरण के लिए हमारे शिक्षाशास्त्री सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों के नेतृत्व में आयोगों का गठन हुआ है तथा उनके सुझाव भी आए हैं। इस संदर्भ में स्वतंत्र भारत में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) तथा कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) का विशेष महत्व है, क्योंकि इनके शिक्षा सम्बन्धी सुझाव भारतीय समाज की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के अधिक निकट रहे हैं। इन सभी आयोगों ने रोजगारोन्मुख शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्म, चरित्र और नैतिक मूल्यों के पक्ष में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं। 'कोठारी आयोग' ने 'शिक्षा व राष्ट्रीय लक्ष्य' शीर्षक के अंतर्गत पंचमुखी कार्यक्रमों के लिए कहा है—

"सब प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।"इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा समय-समय पर घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों 1968-69 तथा 1986 में भी शिक्षा के उद्देश्यों के अंतर्गत चरित्र एवं नैतिक मूल्यों पर अत्यधिक बल दिया गया है, क्योंकि जब तक भारत में चरित्र के विकास एवं नैतिक मूल्यों के उत्थान पर अधिक बल नहीं दिया जाएगा, तब तक न तो व्यक्ति का विकास संभव है और न भारत का।

आज भारत में न तो प्रतिभाओं की कमी है, न कृषि योग्य भूमि की, न प्राकृतिक संसाधनों की, न जन-संसाधनों की

और न ही धन की। यदि कमी है तो समय की, सद्भाव की, चारित्रिक दृढ़ता की, स्वाभिमान की और नैतिकता की। इसीलिए यद्यपि आज भारत में नगरों का आकार बढ़ता जा रहा है, वैज्ञानिक यंत्रों और सुविधाओं का आश्चर्यजनक विकास हो गया है, लोग अधिक सुखी और सम्पन्न दिखाई देते हैं, तो भी समाज में निराशा, छुआछूत, आडम्बर, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद, दहेज-हत्या, भोगवाद और नारी उत्पीड़न आदि की घटनाएँ क्यों बढ़ रही हैं? कुछ वर्ग देश को तोड़ने के लिए, बाँटने के लिए और निरंतर कठिनाइयों में डालने के लिए क्यों घृणित कार्य कर रहे हैं? और सरकार मूकदर्शक क्यों बनी बैठी है? कोई भी अनुचित कार्य करने पर हमारी अंतरात्मा हमें क्यों नहीं धिक्कारती? ये सारे प्रश्न कोई आध्यात्मिक प्रश्न नहीं हैं, जिनका समाधान कुछ संतों और महात्माओं की गोष्ठियों में होना चाहिए। ये राष्ट्रीय प्रश्न हैं और कदाचित विश्व के प्रश्न भी। जब तक इनका समाधान नहीं होगा, तब तक न तो भारत का पूर्ण विकास संभव है और न परम वैभव।

शिक्षा का कार्य सही मार्ग दिखाना और उस पर चलने के लिए प्रेरित करना है। सही मार्ग पर न चलने वाले व्यक्ति या समाज को दण्ड देना सरकार का कार्य है। किन्तु यदि सरकार ही भ्रष्ट हो जाए तब, पूरा शासनतंत्र ही भ्रष्टाचार में डूबा हुआ हो तब कौन करेगा इन दुष्टों पर नियंत्रण? इसलिए हमें ऐसा विकल्प तलाश करना है, जो न केवल विद्यालयों में नैतिकता का विकास करे, अपितु घर और समाज में समस्त स्त्री-पुरुषों का सही मार्गदर्शन करे, साथ ही नेताओं और कर्मचारियों का भी पथ-प्रदर्शन करे। किन्तु यह सब कोरे उपदेशों से संभव नहीं है। हमें ऐसे नैतिक चरित्र की आवश्यकता है, जो यथार्थ हो और जिसका इस पृथ्वी पर उपस्थित हो पाना संभव हो।

भारत के महान कवियों ने श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे महान नायकों के चरित्र पर आधारित अनेक महाकाव्य प्रस्तुत किए हैं। इन चरित्रों के अध्ययन और प्रचार से आज भी भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग को नैतिकता की प्रेरणा मिल सकती है। इनमें वाल्मीकि रामायण तथा वेदव्यास कृत महाभारत और पुराण प्रमुख हैं। यहाँ यह प्रश्न भी उठ सकता है कि ये तो कवि हैं, अतः इनका अध्ययन साहित्य के अंतर्गत किया जाना चाहिए। किन्तु यथार्थ सत्य यह है कि समाज को शिक्षित करने की दिशा में साहित्यकार का योगदान सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसलिए ऐसे साहित्यकारों के विचारों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। यद्यपि कवियों के शैक्षिक विचारों का उल्लेख प्रायः प्रसंगवश ही किया जाता है, किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है, अभी तक भारत के किसी गरिमामय कवि के शैक्षिक विचारों का स्वतंत्र अध्ययन प्रकाश में नहीं आया है।

इस संदर्भ में हमें भारतीय साहित्य के महान गरिमामय कवि तुलसीदास का सहज स्मरण हो आता है। उन्होंने अपने सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान को लोक के गहन अनुभव से समन्वित किया था और समाज के सामने नैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा मानव जीवन के लगभग समस्त पहलुओं से समन्वित 'रामचरितमानस' जैसे अमर काव्य की रचना की थी, जो न केवल तत्कालीन परिस्थितियों में समाज का उचित मार्गदर्शन करने में समर्थ हुआ, अपितु आज भी समर्थ है और भविष्य में भी रहेगा। जीवन की विषम परिस्थितियों में आज भी लोग तुलसी की पंक्तियों को सहज ही स्मरण कर लेते हैं और उनके बताए हुए आदर्श मार्ग से अपने गंतव्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

यह निर्विवाद है कि जो संतोष 'मानस' की पंक्तियों को पढ़कर हमें प्राप्त हो जाता है, वह ज्ञान-विज्ञान की बड़ी-बड़ी पुस्तकों के अवगाहन से नहीं मिलता। इसलिए आज के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन-विश्लेषण अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। प्रस्तुत शोध-कार्य करने का निर्णय इसी विचारधारा के क्रम में एक विनम्र प्रयास है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी एक महान समाज-सुधारक, लोकनायक, भविष्यद्रष्टा, कवि तथा सभ्यता एवं संस्कृति के कर्णधार थे। तुलसीदास जी अपनी जीवित अवस्था में ही कालपुरुष मानकर उभर गए थे। राम-नाम तथा लोकभाषा में राम का चरित्र कहने वाला यह सेवक 'मैं' से 'हम' तक की अवस्था में सहज नहीं पहुँचा, बल्कि वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाता है और राम को गुणता है। तुलसीदास जीवन भर घूमते रहे, परन्तु मुख्य रूप से वे चित्रकूट, अयोध्या और काशी में निरंतर रहे। तुलसी को इन तीनों ही स्थानों से विशेष लगाव था। काशी तुलसी को विशेष रूप से प्रिय थी।

गोस्वामी तुलसीदास केवल हिन्दी के श्रेष्ठतम कवि ही नहीं हैं, बल्कि भारतीय साहित्य के ऐसे अन्यतम कवि हैं, जिनकी व्याप्ति शताब्दियों से है। कविता का सौष्ठव हो या जीवन और संसार के अनुभव की अद्वितीयताकृतुलसीदास की तुलना किसी भी अन्य कवि से संभव नहीं। जीवन, समाज-आदर्श और मानवीय करुणा का रूप हमें उनके काव्य में मिलता है, जो उन्हें ऐसे विशिष्ट कवि के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है, जहाँ किसी से तुलना नहीं की जा सकती। उनकी सृजनात्मकता जितनी अप्रतिम है, उतना ही अप्रतिम उनका काव्य-दर्शन भी है। अपने मूल रूप में वे भक्ति-आन्दोलन से निकले कवि हैं, पर यह भक्ति जीवन की अनास्था या विरक्ति नहीं है, बल्कि उसकी एक स्पष्ट और अभिव्यक्त सामाजिकता है। यही कारण है कि अनेक प्रबुद्ध आलोचकों ने भक्ति-आन्दोलन को महत्व देते हुए उनके काव्य की सामाजिक महत्ता स्वीकार की है।

समस्या कथनः

"गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में शैक्षिक विचारधारा का समालोचनात्मक अध्ययन"

शोध अध्ययन का उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में शिक्षा दर्शन का अध्ययन करना है साथ ही साथ इस का भी अवलोकन करना है कि उनका शैक्षिक विचार वर्तमान शिक्षा पद्धति में कहां तक प्रसांगिक है आज की विषम परिस्थितियों में यह भी जानना आवश्यक है कि उनके विचार कहां तक प्रभावी रहे हैं। अतः इन सभी बिदुन्ओं को दृष्टिगत रखते हुए शोध अध्ययन के उद्देश्य माने गए हैं-

1 तुलसी-साहित्य में उपलब्ध शैक्षिक विचारधारा का अन्वेषण करना।

2 वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता की जाँच करना।

3 प्रासंगिक शैक्षिक विचारों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में लागू करने हेतु ठोस सुझाव प्रस्तुत करना।

4 वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों का अध्ययन करना।

5 वर्तमान की शिक्षा व्यवस्था व्याप्त विसंगतियों के निवारण हेतु सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों का अध्ययन करना।

6 वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था में आने वाली सम्पूर्ण चुनौतियों के समाधान में तुलसीदास के शैक्षिक विचारों की उपादेयता का समालोचनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन का विषय-क्षेत्र

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य गोस्वामी तुलसीदास के शिक्षा दर्शन का समालोचनात्मक अध्ययन करना तथा यह देखना कि उनके विचार वर्तमान में कहां तक एवं किस प्रकार योगदान कर सकते हैं अतः शोध का क्षेत्र केवल यही तक सीमित है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास के प्रति अध्ययन क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।

1. प्रस्तुत शोध में तुलसीदास की लगभग समस्त काव्य रचनाओं में सन्निहित शैक्षणिक विचारों की खोज की गयी है।

2. तुलसी-साहित्य में उल्लिखित शिक्षा सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त उन तत्वों को भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सम्मिलित किया गया है, जिनके शैक्षिक निहितार्थ बनते हैं।

3. तुलसी द्वारा समर्थित शैक्षिक विचारधारा का शिक्षा के सभी अंगों गुरु, शिष्य, पाठयक्रम, विद्यालय, शिक्षण विधि हेतु अभिप्रायों का विवेचन किया गया है।

4. अध्ययन के अन्तर्गत तुलसी साहित्य में वर्णित राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, युद्ध, संस्कार, विभिन्न प्रदेशों की भौगोलिक जानकारियाँ, मानव की विविध प्रवृत्तियों एवं चरित्रों का ज्ञान, तथा तत्कालीन वैज्ञानिक अन्वेषणों, जिनका प्रयोग ऊर्जा के जागरण आदि में किया जाता था, का ज्ञान आदि सभी विषयों एवं उनकी शिक्षण प्रणालियों का विवेचन किया गया है।

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा के वास्तविक स्वरूप की आवश्यकता

आज सम्पूर्ण विश्व में वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रगति का डंका बज रहा है। मानव ने कम्प्यूटर द्वारा प्रत्येक विकास प्रक्रिया

को तीव्रगति प्रदान कर दी है। उपभोग के संसाधनों के विकास और विज्ञापनों की उत्तेजना ने मानव में अदम्य भोगलिप्सा जागृत कर दी हैं। भारत, जो अपनी नैतिकता और आध्यात्मिक दृष्टि के लिए जगद्गुरु कहलाता था, भी भोगवाद की इसी अंधी दौड़ में सम्मिलित है। इसीलिए आज यद्यपि भारत ने पर्याप्त वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रगति की है, तो भी भ्रष्टाचार, अनैतिकता, असमानता, फैशन परस्ती, भोगवाद आदि दुर्गुणों के कारण इसकी नैतिक एवं सांस्धतिक पहचान पर प्रश्न चिन्ह लगता ही जा रहा है।

अस्तु, आज पुनः 'सा विद्या या विमुक्तये', 'विद्या ददाति विनयम्' 'आरोह तमसोज्योतिः' तथा 'अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति' जैसे आप्त वाक्यों का मूल्य बढ़ गया है। आज से शिक्षा के ऐसे स्वरूप की आवश्यकता बढ़ गयी है, जो हममें त्याग, दया, क्षमा, विनम्रता, सदाचार, साहस और सद्विवेक का जागरण कर सके। बिना इन गुणों के जागृत हुए कानूनविद, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यिक, चिकित्सक आदि बन जाने से ही देश का वास्तविक विकास संभव नहीं है। आज हमें शिक्षा के उस स्वरूप को अंगीकार करना होगा, जो हमें निरनतर जागृत करता रहे, पाठयक्रम तक ही सीमित न रह जाए, जिसके आदर्श हमारी समस्त धारणा में श्र(ा और पूज्यभाव का विकास करें।

आधुनिक युग में तुलसी के विचारों की प्रासंगिकता

आज के परिप्रेक्ष्य में इससे क्या नवीन सन्देश प्राप्त होता है? अस्तु, तुलसी के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता पर भी प्रश्न उठ जाता है। यह पहले ही अध्ययन किया जा चुका है कि आधुनिक परिवेश में मानव जहाँ भौतिक दृष्टि से अत्यन्त समुन्नत हुआ है, वहीं आध्यात्मिकता और नैतिकता का बहुत बड़ा ह्यास हो गया है। फिर तो सम्पूर्ण मानव की कल्पना सम्भव हो ही नहीं सकती। कथित प्रगति की अंधी दौड़ में हम इतना आगे पहुँच गए हैं, जहाँ नित्य नूतन होने वाले घोटालों, भ्रष्टाचारों, आतंकवादों, व्यभिचार की खबरों तथा राष्ट्रद्रोही गतिविधियों के प्रति हम लगभग संवेदनहीन हो गए हैं। तो क्या यह स्थिति कम चिन्ताजनक है? आज का विद्यार्थी विद्यालयों का राजनीतिक पार्टियों के कार्यालयों के रूप में इस्तेमाल करने लगा है, समाज के वातावरण को दूषित करने लगा है, सरकारी सम्पत्तियों को फूंकने लगा है। इसलिए आज निरन्तर ऐसे आदर्शों को उसके सम्मुख प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, जो बराबर उसे सही मार्ग दिखा सकें। अस्तु गोस्वामी जी द्वारा निरूपित श्रीराम का व्यक्तित्व आदर्श प्रेरणा स्रोत के रूप में उत्तरता है और उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्श मानव और समाज की कल्पना उसे बारम्बार इस बात के लिए प्रेरित करती है कि उसे सचेत होते रहना चाहिए। हमें विदेशी ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति को अवश्य समझना चाहिए, किन्तु सबसे पहले अपनी संस्कृति को समझकर उसके प्रति श्रद्धा और आस्था रखनी चाहिए। अपने आदर्श पुरुषों के प्रति पूज्य भाव रखना चाहिए और तुलसीदास जी यही सब कुछ सिखाते हैं। उनके साहित्य में अनुशासित विद्यार्थी हैं, मर्यादित गुरु हैं, आदर्श माता-पिता हैं, आस्थावान् पुत्र-पुत्री हैं, स्नेही और त्यागी भाई-बन्धु हैं, समर्पित मित्रगण हैं, निरालसी सेवक हैं, तो वात्सल्यपूर्ण स्वामी भी। ऐसा कौन सा मानव-सम्बन्ध है, ऐसी कौन सी आदर्श सामाजिक व्यवस्था है, शिक्षा का ऐसा कौन सा आदर्श आयाम है, जो तुलसी-साहित्य में स्वस्थ सुसंतुलित और भव्यतम रूप में प्रकट नहीं हुआ? इस प्रकार जब आधुनिक संदभों में शिक्षा में निरन्तर सुधार का प्रश्न उठता है और इस बात पर चिन्तन किया जाता है कि शैक्षिक व्यवस्था में कौन से आदर्श रखे जाएं, कि निरन्तर होने वाली राष्ट्र विरोधी गतिविधियों, अनैतिकताओं, भ्रष्टाचारों, स्व संस्कृति से पराङ्मुखता तथा विदेशी सभ्यता के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति को रोका जाए? तो जिन आदर्श चिन्तकों और साहित्यकारों का ध्यान हमारे सम्मुख आता है, गोस्वामी जी उनमें प्रमुखतम हैं। इसलिए नवीनतम शैक्षिक व्यवस्था में इनके विचारों एवं आदशों का जितना अधिक उपयोग किया जाएगा, उतना ही अधिक अपेक्षित लाभ भी होगा।

शैक्षिक उपयोगिता

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अमर गायक और शिक्षण-चिंतन के अप्रतिम प्रवक्ता थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय जीवन-दर्शन, नैतिकता, धर्म और आचरण को जिस सजीव रूप में प्रस्तुत किया, वह

आज भी समाज और शिक्षा दोनों के लिए दिशा-सूचक है। उनका काव्य केवल भक्ति की पराकाष्ठा नहीं, बल्कि मानव जीवन के प्रत्येक आयाम को शिक्षित करने वाला एक जीवंत दस्तावेज है। प्रस्तुत अध्ययन में गोस्वामी तुलसीदास की शैक्षिक विचारधारा का समालोचनात्मक विवेचन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि उनका साहित्य आधुनिक शिक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी, प्रेरणादायी और मूल्यपरक दिशा प्रदान करने वाला है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तुलसीदास कवितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, स. 2021
2. तुलसीदास : कृष्ण गीतावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2039.
3. तुलसीदास गीतावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, संघ 2023
4. तुलसीदास जानकी मंगल, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० 2042.
5. तुलसीदास : दोहावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2038
6. तुलसीदास पार्वती मंगल, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2037
7. तुलसीदास रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2052.
8. तुलसीदास राम लला महणू, 'तुलसी के चारदल' में संकलित
9. गुप्त, माता प्रसाद : तुलसीदास, हिन्दी-परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, 1972
10. गुप्त, लक्ष्मीनारायण एवं शिक्षा दर्शन, कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद,

स्वातन्त्र्योतर काव्य चिन्तन में युवा कविता : कुछ विचारणीय प्रश्न

डॉ पूजा धामीजा
शोध निर्देशिका-हिन्दी विभाग
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान

सुभाष चन्द्र वर्मा
शोधार्थी-हिन्दी विभाग
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान

युवा कविता : विचारणीय मुद्दे

साठोत्तरी कविता को स्थापित करने के पक्ष में जहाँ कई तर्क दिए जाते हैं, वहीं उसकी परिपक्वता और शक्ति पर भी अनेक प्रश्न उठाए जाते हैं। इन विरोधी प्रश्नों का मूल आधार सर्जनात्मक अनुभूति की विशिष्टता और पुरानी व्यवस्था के प्रति निषेध का भाव है। पीढ़ियों के बीच यह संघर्ष हर युग में कम या अधिक रहा है, और यह कोई नई बात नहीं है। सुकरात ने भी बहुत पहले अपने समय की युवा पीढ़ी की अप्रिय प्रवृत्तियों की ओर इशारा किया था। हर परिवर्तनशील बिंदु पर पीढ़ी संघर्ष से वही शिकायतें सामने आती हैं, जो अब अनुशासनहीनता और अनास्था के रूप में लोग करते हैं।

हालांकि, सिर्फ निषेध मात्र से तुरंत वांछित परिणाम या सिद्धि नहीं मिलती, खासकर काव्य के क्षेत्र में। कवि समीक्षक अजित कुमार का मत है कि ''जगत-गति और साहित्य-गति में थोड़ा-सा अन्तर यह अवश्य हो सकता है कि जहाँ संसार में बहुत कुछ पुराना मिट जाता है और नया जन्म लेता है, वहाँ साहित्य में पुराना मिटता नहीं, बल्कि नये-नये रूपों में अपने को उद्‌घाटित करता है।''[1] इसलिए काव्य का सृजन या आस्वाद पूर्णतः अतीत से निरपेक्ष नहीं हो सकता। ऐसे में यह विचारणीय है कि जिन ''नए बरातला' (नए माध्यमों) की तलाश में युवा कवि गर्व कर रहे हैं, कहीं वे केवल उलझन भरे और प्रबुद्ध दिखने वाले पद्य बनाने का नाटक तो नहीं हैं।''[2]

निषेध की तीव्रता और बौद्धिकता का विरोध

आज के युवा कवि में निषेध की तीव्रता इतनी अधिक है कि वह पूर्व के सारे इतिहास को दरकिनार कर देना चाहता है और अपनी सभी संभावनाओं को वर्तमान परिवेश में ही देखता है। ''ऐतिहासिक विवेक को छोड़ने के ख्परिणाम, रचनात्मक और आलोचनात्मक स्तरों पर भयानक रूप में हुए हैं।'' इससे इतिहास के भार से मुक्ति उतनी नहीं मिली है, जितनी एक बेमानी-सी स्वतंत्रता।''[3]

इसी प्रकार की शंकाएँ बौद्धिकता के विरोध को लेकर भी उठाई जाती हैं। बौद्धिकता कोई दुर्गुण नहीं है; जीवन-मूल्यों का विचार और विश्लेषण बुद्धि के बिना संभव नहीं है। ''मूल्यों का निर्धारण मनुष्य के बौद्धिक ज्ञान से होता है, जो मूलतः परिस्थितिजन्य होता है''[4] और परिवेश में व्याप्त वस्तुनिष्ठ दृष्टि से भी संबंधित होता है। ग्राह्य-अग्राह्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए संतुलित बुद्धि और विवेक आवश्यक है। युवा पीढ़ी द्वारा बौद्धिकता को अस्वीकार करने का परिणाम उनकी रचनाओं पर भी पड़ रहा है। अशोक वाजपेयी के अनुसार, ''इधर युवा कवियों में जो भोलापन या अबोधपन और अबौद्धिकता की मुद्राएं

हैं, वे उनके काव्य-संसार को सीमित और उथला करती हैं, क्योंकि उसे विचारों से सुरक्षित रखा गया है।"[5]

रचनात्मक अपूर्णता और सपाटबयानी

इसका तात्पर्य यह है कि युवा कवियों में अपनी अनुभूति को यथावत व्यक्त करने का संकल्प तो प्रबल है, लेकिन वैचारिक परीक्षण का साहस उनमें नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी सर्जनात्मकता पूर्णता के अभाव में आंशिक रूप में ही व्यक्त हो पाती है। इसी वैचारिक विपन्नता के कारण इस पीढ़ी के कवियों में अपेक्षित रचनात्मक विकास नहीं हो पाता। कलागत मूल्यों के निषेध के कारण आज का युवा कवि 'सपाटबयानी' का नारा बुलंद करता है, जिसका उद्देश्य ''सामान्य जनता तक अपनी अनुभूतियों को पहुँचाना है, जिसके लिए वह समस्त कलात्मक उपादानों और व्यंजना-प्रणालियों का निषेध करता है।"[6]

किन्तु, यह सपाटबयानी जल्दी ही सतही और यांत्रिक बखान का पर्याय बन गई है, जिससे समकालीन यथार्थ का बड़ा अबोध (अज्ञान) होता रहा है। आशंका है कि ष्व्यवस्था के प्रति एक काम चलाऊ रुख भरा है और इस बात ख्समझ, को और पीछे ढकेलकर भाषा के अनियंत्रित और मनमाने उद्रेक को कवि कर्म मानने की निहायत रूमानी धारणा का युवा प्रतिभा शिकार हो रही है।" यह सपाटबयानी किसी आशामय भविष्य का संकेत नहीं करती। यदि यह मान लिया जाए कि सर्जनात्मक अनुभूति अपने अनुकूल अभिव्यंजक उपकरणों के साथ जन्म लेती है''[7], तो इस सपाटबयानी के मूल में व्याप्त सर्जनात्मक अनुभूति की सपाटता या सतहीपन का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

समाज निरपेक्षता और व्यक्तिवादी अहम्

युवा पीढ़ी की समाज निरपेक्षता या समाज को केवल 'भीड़' मानकर स्वयं को समाज निरपेक्ष इकाई समझना भी कई साहित्य चिंतकों को अनुकूल और प्रासंगिक नहीं लगता। जिस समाज के साथ हमारा दैनंदिन संबंध है और जिसके सुख-दुःख में हम सहभागी हैं, उसे श्अजनबी भीड़श की संज्ञा देना विवेकपूर्ण नहीं है। डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी ने युवा पीढ़ी की इसी व्यक्तिवादी स्थिति पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि, भले ही ष्यह नयी पीढ़ी उसकी विक्षिप्त स्थिति को भर ही एक आध्यात्मिक स्वतन्त्रताः यह आदर्शवादियों की मुक्तावस्था नहीं है, का अभिधान दे और उस घोर व्यक्तिवाद को इसी प्रकार की कुछ नवशिल्पित शब्दावली से महिमान्वित करे, किन्तु यह सत्य है कि व्यक्ति से समाज का ऐसा निस्संग और विछिन्न रूप आत्म स्वातंय के नाम पर भी कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।"[8]

युवा कवि का यही व्यक्तिवादी अहं एक मसीहाई स्थिति तक पहुँचने लगा है। वह एक ओर तो मसीहा की भूमिका में उपदेशक बनकर जनसामान्य को संबोधित करने लगता है और दूसरी ओर शहीदों के अंदाज़ में अपने कल्पित बलिदान की व्याख्या करने लगता है। उसमें यथार्थ के स्थान पर 'रूमानी अतिरंजना और बड़-बोलपन' दिखाई पड़ने लगा है, क्योंकि वास्तविकता के स्थान पर उसमें प्रदर्शन और उत्सवधर्मिता ही अधिक दिखायी पड़ती है। डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार, ''युवा पीढ़ी का एक तेजस्वी अंश जाने-अनजाने शहादत के भ्रम में इसी आत्मघाती मनोवृत्ति को पाल रहा है।"[9]

पश्चिमी विचारधारा का अधूरा ज्ञान और स्त्री संबंधी चर्चा

बहुत से युवा कवि पश्चिमी विचारधारा के अधूरे ज्ञान के कारण अपनी अबोधता में ही प्रभावित हैं। काफ्का, सात्र, कामू, लोर्का आदि नाम उन्हें आलोक-स्तंभ जैसे प्रतीत होते हैं। किन्तु उनकी कृतियों के व्यवस्थित अध्ययन के अभाव में उनकी जीवन दृष्टि का ज्ञान उन्हें नहीं है। इसका खतरनाक परिणाम यह हो रहा है कि वे अपने श्रुत या अनुमानित ज्ञान के आधार पर कुंठाओं एवं यौन वर्जनाओं को तो ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु व्यापक जीवन दृष्टि को नहीं पकड़ पाते। फलतः नई पीढ़ी में अनेक श्आत्मघाती विसंगतियां जन्म लेती जा रही हैं।''

स्त्री संबंधी अपेक्षाकृत अधिक चर्चा युवा पीढ़ी की किसी मानसिक ग्रंथि की ओर संकेत करती है। युवा पीढ़ी स्त्री जाति

से आक्रांत, अपनी प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील प्रतीत होती है। इस संबंध में अशोक वाजपेयी का मत है कि इस पीढ़ी के कवि आत्मदर्शन की प्रक्रिया में अपने पुरुषत्व की इमेज बनाने में अधिक सक्रिय हैं। ''उनका उद्देश्य स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर कुछ महत्वपूर्ण खोजना, रचना, उतना नहीं है, जितना कि अपना गुरुत्व साबित करना।''[10]

विसंगतियों से विमुखता और दिशाहीनता

युवा कविता की एक कमजोरी यह है कि वह 'भीड़' और श्स्त्रीश को अपनी अनुभूति के केंद्र में रखकर बार-बार उसी का पुनराख्यान करती है। जिस जटिल जीवन की वास्तविकताओं से साक्षात्कार करने के लिए वह स्वयं को संकल्पित बताती है, उसका दर्शन कम ही हो पाता है। जिस जीवनव्यापी जटिलता एवं विसंगति के प्रति विद्रोह एवं संघर्ष को वह अपना रचनात्मक संदर्भ मानती है, उन्हीं के साक्षात्कार से वह विमुख भी प्रतीत होती है।

किसी जड़ रूढ़ व्यवस्था या विसंगतियों से भरी परंपरा का विरोध स्वाभाविक है और ऐसा विद्रोह या आंदोलन अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। किन्तु किसी परंपरा या व्यवस्था के प्रति विद्रोह में किसी वांछित व्यवस्था को प्रतिष्ठित करने की वैचारिक दृष्टि भी होनी चाहिए। एक जीवन-दृष्टि को ध्वस्त करने की प्रक्रिया के पीछे विकल्प स्वरूप दूसरी जीवन-दृष्टि की प्रेरणा निहित रहती है। इससे दृष्टि को क्रमिक विकास एवं परिष्कार मिलता है। इस प्रकार का विद्रोह संगत ही नहीं, अपेक्षित भी है। किन्तु दृष्टि मात्र का विद्रोह तो एक वैचारिक रिक्तता और दिशाहीनता का ही प्रतीक है। जीवन के प्रति इसी वैचारिक अस्थिरता के कारण ही आज की कविता में वयस्कता का बोध नहीं होता। इसीलिए यह काव्यधारा स्वयं के स्वास्थ्य पर भी विश्वास नहीं कर पाती और अपने अनेक बोधों के साथ श्मृत्यु बोधश भी करने लगी है।

समीक्षण की कमी और संतुलन की आवश्यकता

रचनात्मक स्तर पर जहाँ अनेक विसंगतियों और विरोधाभासों का मिश्रण (गड्डमड्ड) दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक चिंताजनक स्थिति उसके चिंतन और समीक्षण के क्षेत्र में है। चूंकि युवा पीढ़ी की कविता समीक्षा के समस्त मानदंडों और प्रतिमानों का निषेध करती है, इसलिए समीक्षण की संभावनाएं भी उसमें बहुत कम हैं। काव्य की रचनात्मक प्रक्रिया में जितनी संगति, व्यवस्था, दृष्टि संपन्नता, निर्वैयक्तिकता, सोद्देश्यता, चेतनासम्पन्नता, संश्लिष्टता, प्रभावोत्पादकता आदि का समायोजन होगा, समीक्षण के धरातल पर उसकी उतनी ही अधिक संभावनाएं विद्यमान रहेंगी।

उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आज की युवा कविता में अपेक्षाकृत अधिक संतुलन की आवश्यकता है। रचनात्मक धरातल पर वैयक्तिक प्रतिक्रिया के आवेशजन्य उद्गारों के स्थान पर गंभीर चिंतन और दृष्टि संपन्नता की आवश्यकता है। इस संबंध में डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का अभिमत उल्लेखनीय है। वे समझते हैं कि युवा लेखकों को सतह पर के उबाल से हटकर मनुष्य और उसकी भाषा जो उसके अस्तित्व की सबसे जानदार संज्ञा है, साक्ष्य है, के नये मूल्यवान सम्बन्धों को या गहरे लगावों को समझने की जरूरत है।

विघटन भी प्रकृति का नियम है और इसमें सृजन की संभावनाएं निहित रहती हैं, किन्तु विघटन प्राकृतिक नियमों द्वारा ही परिचालित एवं घटित होना चाहिए। यदि यह चेष्टित या आरोपित विघटन होगा, तो इसमें सृजन की संभावनाएं जाती रहेंगी। प्रकृति की यही सहज गति युवा पीढ़ी की सर्जनात्मक अनुभूति के लिए भी अपेक्षित है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर काव्य-चिंतन पर पश्चिमी विचारकों का व्यापक प्रभाव है। इस कालावधि में काव्य संबंधी अनेक नई मान्यताएं स्वीकृत हुई। यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अतिरिक्त आग्रह, भोगे हुए सत्य का उद्घाटन, भाषा संबंधी नवाविष्कृत प्रतिमान, जीवन की कुरूपताओं की काव्य-विषय के रूप में स्वीकृति, रूढ़ियों और विसंगतियों के प्रति आलोचक दृष्टि, जर्जर रूढ़ियों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया, पारम्परिक आस्थाओं के प्रति अविश्वास आदि स्वातंत्र्योत्तर काव्य के स्वरूप निर्धारण के प्रमुख लक्षण हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अजितकुमार—कविता का जीवित संसार पृ० 35,
2. रामदेव आचार्य—आलोचना—अप्रैल—जून 1966 पृ० 35,
3. अशोक वाजपेयी वही पू 77,
4. डॉ. कृष्णवल्लभ जोशी—निरन्तर—अक्तूबर—दिसम्बर 1972 पृ० 23,
5. अशोक वाजपेयी—आलोचना—अप्रैल—जून 66 पृ० 77,
6. वही पृ० 78,
7. डॉ. कृष्ण वल्लभ जोशी—निरन्तर—अक्तूबर—दिसम्बर 1972,
8. अशोक वाजपेयी—आलोचना—अप्रैल—जून 1967 10 76,
9. डॉ. शिवकुमार मिश्र कल्पना—अगस्त—सितम्बर 1966 पृ० 47,
10. अशोक वाजपेयी—आलोचना—अप्रैल—जून 66 पृ० 76।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

चयनित हिंदी फ़िल्मों के संवादों का भाषाई दृष्टि से अध्ययन (1950 से 80)

रोहन कौशिक
शोधार्थी, हिंदी अध्ययन विभाग, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय
कुंढेला, वडोदरा, गुजरात – 391107
ई-मेल: rohankaushik554@gmail.com

किसी भी साहित्यकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है अपने साहित्य का जनता तक संप्रेषण और जनता का उसके साथ तादात्म्य। तादात्म्य होने से पहले संप्रेषण होना आवश्यक है। ऐसे में साहित्यकार की भाषा और संरचना महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यदि वह उपन्यासकार है तो उसकी भाषा, वाक्य और कथा संरचना; यदि वह कवि है तो भाषा और वाक्य संरचना महत्वपूर्ण हो जाती है। कई कवि ऐसे होते हैं, जिनकी भाषा तो बहुत सरल होती है; परंतु वाक्य संरचना इतनी जटिल होती है कि हर शब्द समझ आने के बाद भी कविता समझना दूभर हो जाता है। इस कारण साहित्य का जनता तक न संप्रेषण हो पाता है, न जनता उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर पाती है। वह साहित्य एक विशेष वर्ग तक ही सीमित रह जाता है।

"कालिदास : मेरा आक्रोश है रचना की इस प्रकृति पर...कि यह अपने आप में संपूर्ण नहीं है।...यह संप्रेषण और तादात्म्य चाहती है।"[1]

सुरेंद्र वर्मा अपने नाटक 'आठवाँ सर्ग' में साहित्यकार की इसी पीड़ा को उठाते हैं। यह पीड़ा या तो साहित्यकार झेले या जनता झेलेगी। जनता तो क्यूँ ही झेलेगी? सुरेंद्र वर्मा द्वारा ग़ालिब के जीवन पर रचित नाटक 'क़ैद-ए-हयात' में भी इसपर ठीक-ठाक विचार किया गया है। यहाँ इस प्रसंग को उठाने का मात्र इतना उद्देश्य है कि संस्कृत और उर्दू के सबसे प्रसिद्ध कवियों ने भी इस समस्या का सामना किया। क्या यह समस्या बाद के लेखकों के साथ नहीं रही होगी? क्या सिनेमा जैसे लोकप्रिय माध्यम के साथ यह समस्या नहीं रही होगी? यही कारण है कि मिर्ज़ा ग़ालिब के जीवन पर लिखे नाटक 'क़ैद-ए-हयात' और उनके जीवन पर बनी फ़िल्म व धारावाहिक की भाषा में ज़मीन आसमान का अंतर है।

"मिर्ज़ा : पुराने अफ़सानों में एक किरदार होता है न, जो महज़ जुदा करवाने के लिए अपना फ़र्ज़े-पाक अंजाम देता है—जैसे कोई जिन, खूँख़ार वज़ीर, दोनों में से किसी एक के वालिद या रक़ीब...अहदे-हाज़िर में उसकी जगह एक और हज़रत ने ले ली है। यह कभी रू-ब-रू तशरीफ़ नहीं लाते, बज़ाते-खुद पर्दे के पीछे रहते हैं, लेकिन बज़रिए हालात क़दमों में ऐसी जंज़ीर और गर्दन में ऐसा तौक़ डाल देते हैं कि आप बेकसो-लाचार खिंचे चले जाते हैं—जहाँ वो चाहे, वहाँ। (मुड़कर) जानती हो, यह साहब कौन हैं?

कातिबा हल्की मुस्कान से इंकार में सर हिलाती है,

: मीकाईल...फ़रिश्ताए-रोज़ी। (निगाहें मिलने पर दोनों मुस्कुराते हैं –) और लगता है कि यह हज़रत शायरों से कुछ ज़्यादा ही नाराज़ हैं।"[2]

नाटक में सुरेंद्र वर्मा मिर्ज़ा ग़ालिब के समय की भाषा तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। वर्तमान में संप्रेषण में कितनी समस्याएँ होंगी, इस पर उनका ध्यान उतना नहीं है। लेकिन जब फ़िल्म बनाई जाती है तो ग़ालिब के समय की भाषा को प्रयोग करने की जगह वर्तमान समय की बोलचाल की भाषा में थोड़ा बहुत अरबी-फ़ारसी का बाहुल्य ही देखा जाता है।

"मिर्ज़ा : उस वक़्त अपनी ग़ज़ल तुम्हारी ज़बानी सुनी। यूँ मालूम हुआ जैसे खोई हुई मंज़िल मिल गई।

चौधवी बेगम : मिर्ज़ा साहब!

मिर्ज़ा : और आज; आज फिर वही आलम है। मैं घर का सताया, दोस्तों का ठुकराया यहाँ आया हूँ। मैं खो गया हूँ, तुम एक बार फिर मुझे मेरा पता बता दो।"[3]

मुश्किल शब्दों से बचने की भरपूर कोशिश है। क्योंकि केंद्र में कला से कहीं अधिक जनता है। दूसरे अर्थों में व्यवसाय भी कह सकते हैं। सुरेंद्र वर्मा ने जैसी भाषा का इस्तेमाल अपने नाटक 'क़ैद-ए-हयात' में किया है, वैसी भाषा तो उससे दो सौ साल पहले के समय पर बनी फ़िल्म 'मुग़ल-ए-आज़म' में भी इस्तेमाल नहीं की गई है।

'मुग़ल-ए-आज़म' की भाषा को कठिन माना जाता है। आम जनता के दृष्टिकोण से वह कठिन है भी। परंतु वह इतनी कठिन नहीं रखी गई है कि जो थोड़ी बहुत उर्दू की समझ रखता है वह उसे न समझ सके। भाषा की दृष्टि से मुग़ल-ए-आज़म की भाषा बहुत सुंदर भाषा है। यदि कोई व्यक्ति थोड़ी बहुत उर्दू की समझ रखता है तो वह फ़िल्म भाषा के स्तर पर आनंद देती है। मुग़ल-ए-आज़म की भाषा की समझ के साथ वही समस्या है जो हर भाषा की समझ के साथ होती है। अगर दर्शक वह भाषा जानता है तो उसका आनंद ले सकता है। लेकिन वह आनंद भी तभी ले सकता है जब अच्छी भाषा का प्रयोग हो।

मुग़ल-ए-आज़म को भाषा के स्तर पर 'मास्टरपीस' कहा जा सकता है। यहाँ भाषा से आशय उसके अंदाज़-ए-बयाँ से भी है। अनारकली को एक दिन के लिए क़ैद रखने के बाद अकबर और अनारकली का संवाद भाषा की उदात्तता को दर्शाता है। भाषा की खूबसूरती विचार में नहीं कहन में होती है। क्या कहा गया है के स्थान पर कैसे कहा गया है में भाषा का असली सौंदर्य दिखाई देता है।

"अकबर : हमें यक़ीन है, क़ैदख़ाने के ख़ौफ़नाक अँधेरों ने तेरी आरज़ूओं में वो चमक बाक़ी न रक्खी होगी, जो कभी थी।

अनारकली : क़ैदख़ाने के अँधेरे कनीज़ की आरज़ूओं की रोशनी से कम थे।

अकबर : अँधेरे और बढ़ा दिए जाएँगे।

अनारकली : आरज़ूएँ और बढ़ जाएगी।

अकबर : और बढ़ती हुई आरज़ूओं को कुचल दिया जाएगा।

अनारकली : और जिल्ले इलाही का इंसाफ़।"[4]

कहने भर को तो बात यही है कि क़ैदख़ाने ने तुम्हारी हिम्मत तोड़ दी होगी। परंतु जैसे कहा गया है, उसमें कितना सौंदर्य है।

मुग़ल-ए-आज़म के अधिकतर पात्र उस परिवेश से आते हैं जहाँ की भाषा में अरबी-फ़ारसी का बाहुल्य है। परंतु रानी जोधाबाई की भाषा में कुछ संस्कृतनिष्ठ शब्द भी बराबर सुनने को मिलते हैं।

"अकबर : हमें ये मालूम नहीं था कि महारानी जोधा एक कमज़ोर माँ के हाथों इतनी मजबूर हो सकती हैं? अपने निकाह को भूल सकती हैं?

जोधाबाई : उफ़्फ़ महाबलि! ये मुग़लों की कैसी राजनीति है। जो उस माँ को तड़पने भी नहीं देती, रोने भी नहीं देती; जिसके बेटे का लहू इस बेदर्दी से लुटाया जा रहा है।"[5]

मुग़ल-ए-आज़म के संवादों की भाषा कहीं तक कठिन कही जा सकती है, परंतु उसकी कठिनाई और जटिलता ही उसमें सौंदर्य की सृष्ठि भी करते हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता।

"सलीम : तक़दीर बदल जाती है, ज़माना बदल जाता है, मुल्कों की तारीख़ बदल जाती है, शहंशाह बदल जाते हैं। पर इस बदलती हुई दुनिया में मुहब्बत जिस इंसान का दामन थाम लेती है, वो इंसान नहीं बदलता।"[6]

ऐतिहासिक परिवेश पर बनी फ़िल्मों की बात की जाए तो 'शतरंज का खिलाड़ी' का नाम भी इसी संबंध में आता है। शतरंज के खिलाड़ी कथा लखनऊ पर आधारित है। वहाँ के नवाब और सामंतों की भाषा और वहाँ के आम जन की भाषा में एक अंतर भी इस फ़िल्म में दिखाया गया है। परंतु सामंतों और नवाब की भाषा लगभग वैसी ही है जैसी मुग़ल-ए-आज़म में प्रयोग हुई है। एक जैसी कहने का आश्य भाषा में अरबी-फ़ारसी के बाहुल्य से है। परंतु मुग़ल-ए-आज़म के मुक़ाबले थोड़ी बोल-चाल की तरफ़ अधिक झुकी हुई है। वह फ़िल्म की कथा के समय और निर्माण के समय पर जनता की भाषा की पकड़ के सापेक्ष भी हो सकती है।

"मिर्ज़ा : मीर साहब याद रखिए शतरंज का एक अहम उसूल है, जो कभी तोड़ा नहीं जाता।

मीर : कौन सा उसूल?

मिर्ज़ा : जिस मोहरे को हाथ लगा दिया उसी का चलना लाज़मी है।

मीर : अमाँ हद हो गई, हम तो हमेशा...

मिर्ज़ा : हमेशा आप एक मोहरा उठाते हैं, पल भर सोचते हैं, और दूसरा मोहरा चलते हैं। यही करते हैं आप। पिछली बाज़ी में आपने उठाया घोड़ा और चला प्यादा...

मीर : अमाँ जाने दीजिए ग़लती हो गई, आइंदा से ख़याल रखेंगे। आप ख़फ़ा क्यों होते हैं?

मिर्ज़ा : चलिए, चाल चलिए।"[7]

वहीं आम जनता की भाषा का अधिक परिचय तो फ़िल्म में नहीं मिलता। परंतु सामंतों के यहाँ काम करने वाले नौकरों की भाषा अवधी ही है।

"नौकरानी : सरकार दुल्हन बेगम बुलाइन हैं आपको।"[8]

ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि स्वयं प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में अपने चरित्रों की भाषा का निर्माण नहीं किया है। इस दृष्टि से भी इस फ़िल्म की भाषा साहित्य पर बनने वाली फ़िल्मों को एक रास्ता दिखाती नज़र आती है।

इन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं पर बनी फ़िल्मों की सूची में विभाजन से हुई त्रासदी एक महत्वपूर्ण घटना है। इसी घटना पर बनी फ़िल्म 'गरम हवा' (1974) की भाषा भी समझने योग्य है। इस फ़िल्म का परिवेश 1947 के आगरा का परिवेश है। फ़िल्म में भाषा के कुछ रूप ही देखने को मिलते हैं। मुस्लिम परिवार के लोगों की भाषा या आम जन की भाषा, ताँगे चलाने वालों की भाषा, अलग क्षेत्र से आए हुए लोगों की भाषा आदि। मुस्लिम परिवार कहने का आश्य उनकी शिक्षा से है।

फ़िल्म के मुख्य किरदार सलीम मिर्ज़ा और ताँगे वाले के बीच एक संवाद है। एक शिक्षित व्यक्ति की भाषा, एक क्षेत्रीय भाषा।

"ताँगेवाला : अबे! अबे! कहाँ जा रिया है?

पूछ तो लेन दे। (घोड़े से)

हाँ, मियाँ?

कहाँ कू चलूँ?

हवेली या... (मिर्ज़ा से)

मिर्ज़ा : कारख़ाने।

ताँगेवाला : आज किसको छोड़ आए मियाँ?

मिर्ज़ा : बड़ी बहन को; बहनोई साब तो पहले ही कराची जा चुके थे, आज उनके बाल-बच्चे भी चले गए। कैसे हरे-भरे दरख़्त कट रहे हैं सबा में।

ताँगेवाला : बड़ी गर्म हवा है मियाँ, बड़ी गरम। जो उखड़ा नहीं सूख जावेगा मियाँ। फिर एक शायर ने कहा है न मियाँ।

वफाओं के बदले जफ़ा कर रिया है

मैं क्या कर रिया हूँ, तू क्या कर रिया है''[9]

(वफ़ाओं के बदले जफ़ा कर रहे हैं।

मैं क्या कर रहा हूँ वो क्या कर रहे हैं। — बहज़ाद लखनवी)[10]

ताँगे वाले की भाषा की ख़ूबसूरती ये है कि उसने एक शेर को भी अपनी भाषा के हिसाब से ढाल लिया है। यह आगरा के एक क्षेत्र का कहन है। उसके सिवा फ़िल्म में राजस्थानी सेठ और पारसी सेठ की भाषा को भी स्वाभाविक रखने का प्रयास किया गया है। राजस्थानी सेठ से एक संवाद —

"फ़ख़रुद्दीन : पूनम सिंह जी आप मेरे मुतल्लिक़ सोचते हैं कि मैं...

पूनम सिंह : अजी केवल तुम्हारी बात नइ, इब तो म्हारो बाप भी मुसलमान होवै तो दूर से ही हाथ जोड़ लूँगो। यो पोथी देखो ना, कितने मियाँ भाई सूद ले-लेके भाग गए।

फ़ख़रुद्दीन : आप चिंता न करें, क़यामत के दिन उन्हें एक-एक पाई का हिसाब देना पड़ेगा।

पूनम सिंह : मियाँ जी, म्हारो कारोबार बहुत छोटो है, फकत तीन महीना को लेन-देन कर सकूँ हूँ। यो क़यामत वाली हुंडी हमारे बस की नहीं।"[11]

ऐतिहासिक घटनाओं पर बनी फ़िल्मों के बाद बात आती है तात्कालिक परिस्थितियों पर बनी फ़िल्मों की। 1951 में बनी फ़िल्म 'आवारा' अपने समय की कुछ समस्याओं को रेखांकित करती है। इस फ़िल्म की भाषा बोल-चाल की भाषा है। परिस्थितियों के हिसाब से भाषा में बदलाव हैं; जैसे अदालत में प्रयोग होने वाली भाषा अलग है, बस्ती के एक लड़के की भाषा अलग है, विदेश की बात करते हुए व्यक्ति की भाषा अलग है।

अदालत की भाषा का एक नमूना इस प्रकार है—

"रीता : जज साहब, आप मेरे बुज़ुर्ग हैं। अगर ज़िरह में मुझसे आपकी शान में कोई गुस्ताख़ी हो जाए तो माफ़ कीजिएगा। ये एक इंसान की जान का सवाल है और आप ही ने सिखाया है कि इंसाफ़ करते वक़्त हर दूसरे रिश्ते को भूल जाना पड़ता है।"[12]

भाषा सादा है, कुछ औपचारिक शब्दों के सिवा बोल-चाल से अधिक भाषा में किसी भी बनावट से बचा गया है। वहीं मुंबई की एक बस्ती के लड़के की भाषा में एक पीड़ा है जो अब दूसरा ही रूप ले चुकी है।

"बस्ती का लड़का : जमादार साहब, स्कूल में मास्टर फीस माँगता है, और मेरे बाप के पास इतने पैसे कहाँ हैं जो स्कूल भेजे।"[13]

वहीं भाषा में एक बनावट और व्यंग्य तब आता है जब मुख्य पात्र राज अपने काम का बखान करता है, जो वह नहीं करता है। इसलिए उसमें बनावट भी है और कुछ तात्कालिक भारतीय व्यापार की स्थिति पर तंज़।

"माँ : राज बेटा मेरी तो आँखें तरस गईं तुझे देखने को, पता है पूरे एक बरस बाद आया है। आख़िर यह तेरा सेठ तुझे कहाँ-कहाँ लिए फिरता है।

राज : बस पूछो मत। अब के तुम्हारा बेटा विलायत तक हो आया है।

हमारा सेठ इन्पोर्ट-एक्सपोर्ट करता है ना!

माँ : ये क्या होता है रे?

राज : तुम इन्पोर्ट-एक्सपोर्ट नहीं जानती! वाह! तुम तो बड़ी सीधी हो। तुम्हारा बेटा इतना बड़ा बिजनेसमैन होने वाला है और तुम्हें इतना नहीं पता—इन्पोर्ट-एक्सपोर्ट किसे कहते हैं। सुन माँ...इन्पोर्ट-एक्सपोर्ट का मतलब है इधर का माल उधर, उधर का माल इधर; ज़ूयादातर तो उधर का माल ही इधर होता है।"[14]

व्यंग्य भाषा को अधिक धारदार बना देता है, इसी कारण तात्कालिक परिस्थितियों पर बनी फ़िल्मों में इसकी अहमियत

बढ़ जाती है।

इसके बाद की कुछ फ़िल्मों की भाषा का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि अधिकतर फ़िल्मों की भाषा आम बोल-चाल की भाषा ही है। भाषा में जो बदलाव आता है, वह आता है अहिंदी भाषा क्षेत्र के लोगों की भाषा से। उनकी भाषा में क्षेत्रीय स्पर्श आता है। जैसे फ़िल्म 'गर्म हवा' में पारसी सेठ के किरदार की भाषा या लहजा थोड़ा सा अलग है। वैसे ही फ़िल्म अनाड़ी (1959) में भी एक ईसाई स्त्री की भाषा थोड़ी अलग है। उसकी स्वाभाविकता पर सवाल हो सकता है। फ़िल्म में उसका पुराना परिवेश नहीं बताया गया है तो कहा नहीं जा सकता कि किस क्षेत्र का प्रभाव उसपर रहा।

"मिसेज डीसा : इधर आओ, लाओ भाड़ा। अभी तो तुमको नौकरी मिल गया!

राज : नइं नइं मिसेज डीसा, नौकरी मिला भी और छूट भी गया।

मिसेज डीसा : हम मालूम, तुम ज़रूर कोई बेईमानी किया होगा।

राज : बेईमानी नहीं मिसेज डीसा ईमानदारी किया। बेईमानी करता तो नौकरी भी मिल जाता और तुम्हारा भाड़ा भी दे देता।

मिसेज डीसा : भाड़ा तुम क्या मट्टी देगा! हम तो रोता है उस दिन को, जो दिन हम तुमको देखा...हमको रहम आ गया।"[15]

राज की भाषा फ़िल्म में सादा है, परंतु मिसेज डीसा से बात करते वक़्त उसी की तरह बात करने की कोशिश करता है। बाक़ी सभी किरदारों की भाषा में थोड़े बहुत व्यक्तिगत भाषा के अंतर है। बाक़ी सब बोल-चाल की भाषा है।

भाषा में क्षेत्रीय स्पर्श की बात की जाए तो फ़िल्म 'श्री 420' मुंबई शहर पर आधारित है। ऐसे में फ़िल्म में कुछ मराठी और गुजराती पात्रों का आना स्वाभाविक है। फ़िल्म में मुख्य पात्र इलाहाबाद का है, पर उसकी भाषा में भोजपुरी का स्पर्श नहीं दिखाई देता। हिंदी की क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव इस दौर की फ़िल्मों में तब तक दिखाई नहीं देता जब तक कोई ठेठ भाषा का किरदार नहीं आ जाता (जिसके नमूने 'गरम हवा' में हैं)। कुछ किरदारों की व्यक्तिगत भाषा, उनका तकिया कलाम, उनका तरीक़ा भाषा के स्तर पर कहीं-कहीं कुछ अंतर अवश्य पैदा करता है। श्री 420 के मुख्य पात्र और भिखारी के बीच का यह संवाद –

"भिखारी : सामने से हटके खड़े हो मेरे भाई, धंधे का टाइम है।

राज : धंधा यानी कि काम ना! काम ही की तलाश में तो इलाहाबाद से यहाँ चल कर आया हूँ। क्यों भाई, तुम्हारे शहर में पेट भरने के लिए क्या करना चाहिए।

भिखारी : जो मैं करता हूँ; भीख माँगनी चाहिए।

राज : नहीं! कोई काम बताओ, मुझे काम बताओ।

भिखारी : सोचना पड़ेगा, पढ़ा लिखा है?

राज : बीए पास हूँ। सच कहता हूँ, ये देखो मेरी डिग्री...साथ-साथ लिए फिरता हूँ। ये देखो, यह देखो...

भिखारी : ईमानदार हो?

राज : सच्चाई और ईमानदारी का सबसे पहला ईनाम मुझे मिला है, सोने का मेडल...यह देखो

भिखारी : जवान हो? मेहनत कर सकते हो?

राज : डबल जवान हूँ, चौबीस घंटे दिन में काम कर सकता हूँ। कोई कराके तो देखे...

भिखारी : फिर तुम्हें काम नहीं मिल सकता।

राज : काम नहीं मिल सकता? पढ़े लिखे मेहनती जवान को काम नहीं मिल सकता? क्यों नहीं?

भिखारी : इसलिए कि ये बंबई है मेरे भाई बंबई; बड़ा शहर। यहाँ सच बोलकर पेट भरने का रास्ता ढूँढ़ने से नहीं मिलता, और झूठ बोलकर पैसे कमाने के रास्ते हैं 420।

राज : थैंक यू बॉस...थैंक यू। आज मैंने तुमसे बहुत कुछ सीखा है...बहुत कुछ सीखा है।"[16]

भिखारी की भाषा में 'मेरे भाई' तकिया कलाम के रूप में आता है। ऐसे ही व्यक्तिगत भाषा के अंतर ही अधिक देखने को मिलते हैं। इसके इतर अन्य पात्रों की भाषा में बहुत अंतर दृष्टिगोचर नहीं है।

50 के दशक की एक महत्वपूर्ण फ़िल्म है प्यासा। जिसकी कहानी का केंद्रीय पात्र एक शायर है। शायर की नज़्मों से लेकर ग़ज़लों तक की भाषा आसान है। कुछ-कुछ नजूमों में भाषा थोड़ी सी मुश्किल कही जा सकती है, परंतु ऐसी नहीं है कि आम जनता से दूर जाती हो। उसी के साथ फ़िल्म में शायर और बाक़ी लोगों की भाषा भी लगभग आसान भाषा ही है। फ़िल्म में जैसे शायर की कोशिश जनता की बात अपनी ग़ज़ल और नजूमों में करने की होती है, जैसी आसान भाषा में वह कविता लिखने का पक्षधर होता है, वैसी ही भाषा फ़िल्म की भी है। फ़िल्म बड़ी बात को आसानी से लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बनती है।

फ़िल्म का वह संवाद जिसमें पूरी फ़िल्म का सार है, उसकी भाषा देखिए —

"विजय : मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं, मुझे किसी इंसान से कोई शिकायत नहीं। मुझे शिकायत है समाज के उस ढाँचे से जो इंसान से उसकी इंसानियत छीन लेता है। मतलब के लिए अपने भाई को बेगाना बनाता है, दोस्त को दुश्मन बनाता है। मुझे शिकायत है उस तहज़ीब से, उस संस्कृति से, जहाँ मुर्दों को पूजा जाता है और ज़िंदा इंसान को पैरों तले रौंदा जाता है। जहाँ किसी के दुख-दर्द पर दो आँसू बहाना बुज़दिली समझी जाती है। छिपके मिलना एक कमज़ोरी समझा जाता है। ऐसे माहौल में मुझे कभी शांति नहीं मिलेगी मीना, शांति नहीं मिलेगी। इसलिए मैं दूर जा रहा हूँ...दूर!"[17]

जब भी विचार में स्पष्टता होती है, भाषा आसान लगने लगती है। भले ही उसमें कुछ शब्द मुश्किल हों, लेकिन उन मुश्किल शब्दों के बावजूद वह भाषा आसान महसूस होती है क्योंकि श्रोता/दर्शक विचार तक पहुँच जाता है।

जिन फ़िल्मों की अब तक बात हुई, उनमें से अधिकतर फ़िल्में मुस्लिम परिवेश या शहरी परिवेश पर आधारित थीं। मुस्लिम परिवेश की फ़िल्मों में अरबी-फ़ारसी के शब्द कुछ ज़्यादा, शहरी परिवेश में कुछ कम; परंतु मौजूदगी बराबर थी। अब बात करते हैं एक ऐसी फ़िल्म की जो ग्रामीण परिवेश पर आधारित थी। 1957 में आई फ़िल्म 'मदर इंडिया'।

मदर इंडिया की भाषा इन सब फ़िल्मों की भाषा से अलग है। उस भाषा में न अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य है, न ही संस्कृतनिष्ठ शब्दों का ही। भाषा में अद्भुत प्रवाह है। फ़िल्म के साथ एक समस्या है कि फ़िल्म किस अंचल की है, उसका कोई अंदाज़ा नहीं लगता। न भाषा से, न बताया ही गया है। संवादों के उदाहरण से और बात स्पष्ट हो जाएगी।

"लाला : हाँ बोलो, हुकुम करो।

माँ : जवारी काटने में महीने-डेढ़ महीने की देर है। बस एक मन जवारी दे दो, खाने को बिल्कुल नहीं है।

लाला : चाची तुम लाला को खा जाओ, बस फ़ुरसत हो जाए। गंगा कसम! मैं तो तुम्हें उधार दे-देकर तंग आ गया। जो लिया है उसका तो नाम नहीं लेती और...

माँ : तीन हिस्से फसल के नहीं लेते हो लाला!

लाला : आय हाय चाची ऊ तो ब्याज में चली जाती है ना! असल तो वहीं का वहीं धरा हुआ है।

माँ : क्या बच्चे भूखे मरेंगे?

लाला : अच्छा बाबा, बच्चे भूखे ना मरें। लाओ, क्या लाई हो रखाने को।

माँ : रखाने को? लाला! मेरा भरोसा नहीं है?

लाला : भरोसे की बात अलग है चाची।"[18]

भाषा का प्रवाह, शब्दों का बर्ताव सहज और सरल है। भाषा सिनेमा की सबसे अहम कड़ी है। यह कमज़ोर पड़ जाए तो पूरी फ़िल्म ही धड़ाम से गिर पड़े। इसी को ध्यान में रखते हुए संवाद लेखकों ने भाषा की सरलता का ध्यान रखा है। भाषा जहाँ कलिष्ठ भी है, वहाँ भी वह अपनी आसानी और सौंदर्य लिए हुए है।

संदर्भ सूची

1. सुरेंद्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, आठवाँ संस्करण, 2007, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 73
2. सुरेंद्र वर्मा, क़ैद-ए-हयात, दूसरा संस्करण, 2001, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 46
3. सोहराब मोदी, मिर्ज़ा ग़ालिब, 1954
4. के. आसिफ़, मुग़ल-ए-आज़म, 1960
5. के. आसिफ़, मुग़ल-ए-आज़म, 1960
6. के. आसिफ़, मुग़ल-ए-आज़म, 1960
7. सत्यजीत रे, शतरंज के खिलाड़ी, 1977
8. सत्यजीत रे, शतरंज के खिलाड़ी, 1977
9. एम. एस. सथ्यू, गरम हवा, 1974
10. https://www.rekhta.org/couplets/vafaaon-ke-badle-jafaa-kar-rahe-hain-hafeez-jalandhari-couplets?lang=hi
11. एम. एस. सथ्यू, गरम हवा, 1974
12. राज कपूर, आवारा, 1951
13. राज कपूर, आवारा, 1951
14. राज कपूर, आवारा, 1951
15. ऋषिकेश मुखर्जी, अनाड़ी, 1959
16. राज कपूर, श्री 420, 1955
17. गुरु दत्त, प्यासा, 1957
18. महबूब खान, मदर इंडिया, 1957

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Study Of Properties And Characteristic Behavior Of Analytic Functions

Rajender Kumar
Shri Khushal Das University, Hanumangarh

Dr. Arvinder Kumar Bhardwaj
Assistant Professor
Department Of Mathemetrics
Shri Khushal Das University, Hanumangarh

ABSTRACT

Analytic functions constitute one of the most fundamental and significant topics in complex analysis due to their well-defined structure and remarkable mathematical properties. A complex function being analytic implies not only differentiability but also infinite differentiability within a domain, along with the ability to be represented as a power series. This inherent rigidity distinguishes analytic functions from general differentiable functions and provides powerful tools for mathematical analysis.

The present study offers a systematic and comprehensive examination of the essential properties of analytic functions, including the Cauchy–Riemann equations, harmonic nature of real and imaginary parts, and power series representation. Furthermore, the characteristic behavior of analytic functions is explored through key theorems such as the Identity Theorem, Maximum Modulus Principle, Open Mapping Theorem, and conformal mapping properties. The study also highlights the importance and applications of analytic functions in various fields of science and engineering, thereby emphasizing their central role in both theoretical and applied mathematics.

KEYWORDS: Analytic Functions; Complex Differentiability; Cauchy–Riemann Equations; Power Series Representation; Harmonic Functions; Conformal Mapping; Maximum Modulus Principle; Zeros and Singularities; Complex Analysis.

1.INTRODUCTION

Complex analysis is an important branch of mathematics in which analytic functions occupy a central and fundamental position. Analytic functions are complex-valued functions that are differentiable in a domain, and they exhibit highly regular and well-structured behavior. In contrast to real analysis, differentiability in the complex sense is a much stronger condition, as it imposes strict constraints on the function. Once a function is shown to be analytic, several powerful theorems automatically govern its behavior throughout the domain.

The study of analytic functions reveals that their behavior is not merely local but strongly influences their global structure. Properties such as infinite differentiability, representation in the form of power

series, and preservation of angles distinguish analytic functions from general differentiable functions. Owing to these remarkable characteristics, analytic functions play a vital role not only in pure mathematics but also in various applied fields including physics, engineering, fluid dynamics, and electrostatics.

The objective of this paper is to present a systematic study of the properties and characteristic behavior of analytic functions, thereby enhancing both the theoretical understanding and practical significance of the subject.

2. DEFINITION OF ANALYTIC FUNCTIONS

A complex-valued function f(z) is said to be analytic at a point z_0 if it is complex-differentiable at every point in some neighborhood of In other words, a function is analytic at a point if its derivative exists not only at that point but throughout an open region containing it.

If a function f(z) is analytic at every point of a domain , then it is said to be analytic in the domain D . Analyticity is a stronger condition than mere differentiability at a single point, as it ensures a high degree of smoothness and structural regularity of the function.

In complex analysis, analyticity plays a crucial role because it leads to several important consequences, such as the validity of the Cauchy–Riemann equations, infinite differentiability, and representation of the function as a power series. Due to these properties, analytic functions form the backbone of complex function theory.

3.PROPERTIES OF ANALYTIC FUNCTIONS

Analytic functions occupy a central position in complex analysis due to their exceptional structural regularity and strong theoretical consequences. Unlike functions that are merely differentiable in the real sense, analytic functions exhibit a high degree of rigidity, which governs both their local and global behavior within a domain. The principal properties of analytic functions are discussed below.

3.1 Role of the Cauchy–Riemann Equations

Let $f(z) = u(x,y) + iv(x,y)$

If the function f(z) is analytic at a point, then the partial derivatives of and exist and satisfy the Cauchy–Riemann equations:

$$\frac{\partial u}{\partial x} = \frac{\partial v}{\partial y} \qquad \frac{\partial u}{\partial y} = -\frac{\partial v}{\partial x}$$

Under appropriate continuity conditions, these equations constitute a necessary and sufficient criterion for analyticity. They establish a fundamental link between the real and imaginary components of an analytic function and serve as a cornerstone of complex function theory.

3.2 Infinite Differentiability and Regularity

A defining characteristic of analytic functions is their infinite differentiability. If a function is analytic in a domain, then derivatives of all orders exist at every point within that domain.

This property sharply contrasts with real analysis, where differentiability at a point does not necessarily imply higher-order smoothness. In complex analysis, analyticity imposes strong regularity conditions,

making analytic functions exceptionally well-behaved and amenable to deep theoretical investigation.

3.3 Representation by Power Series

One of the most profound properties of analytic functions is their local representability by convergent power series. If f(z) is analytic at a point , then there exists a positive radius R such that

This representation allows analytic functions to be studied using algebraic, geometric, and analytical methods and underlies many fundamental results in complex analysis.

3.4 Harmonic Nature of Analytic Functions

$$\text{If} \quad f(z) = u(x,y) + iv(x,y)$$

$$\nabla^2 u = 0 \ \nabla^2 v = 0$$

This intrinsic connection between analytic and harmonic functions forms a crucial bridge between complex analysis and potential theory, with significant applications in physics and engineering.

3.5 Structural Rigidity and Uniqueness

Analytic functions are characterized by a high degree of structural rigidity. Knowledge of the function on a small subset of a connected domain uniquely determines the function throughout the entire domain.

This rigidity is a direct consequence of fundamental results such as the Identity Theorem, the Maximum Modulus Principle, and the Open Mapping Theorem, which collectively govern the global behavior of analytic functions.

$$f(z) = \sum_{n=0}^{00} (z - z_0)^n a^n$$

4. CHARACTERISTIC BEHAVIOR OF ANALYTIC FUNCTIONS

Analytic functions exhibit several distinctive behaviors that sharply differentiate them from general complex-valued functions. These behaviors arise from the strong constraints imposed by analyticity and reflect the inherent rigidity and global determinacy of analytic functions. Some of the most significant characteristic features are discussed below.

4.1 Identity Theorem

One of the most striking properties of analytic functions is expressed by the Identity Theorem. If two analytic functions coincide on a set that has a limit point within a connected domain, then the two functions are identical throughout the entire domain.

This result highlights the fact that analytic functions are completely determined by their values on an arbitrarily small subset of a domain. Consequently, even local information about an analytic function can dictate its global behavior.

4.2 Maximum Modulus Principle

The Maximum Modulus Principle states that if a function is analytic and non-constant in a bounded domain, then its modulus cannot attain a maximum value at any interior point of the domain. Instead, the maximum modulus must occur on the boundary of the domain.

This principle plays a fundamental role in complex analysis and has far-reaching consequences, including the derivation of Liouville's Theorem and various uniqueness results. It also emphasizes the restrictive nature of analyticity.

4.3 Open Mapping Theorem

According to the Open Mapping Theorem, every non-constant analytic function maps open sets onto open sets. This theorem ensures that analytic mappings preserve the topological openness of regions in the complex plane.

The Open Mapping Theorem has important implications in the study of conformal mappings and demonstrates that analytic functions exhibit strong geometric regularity.

4.4 Conformal Mapping and Angle Preservation

Analytic functions with non-zero derivatives are locally conformal, meaning they preserve angles and the orientation of figures. Such functions maintain the local shape of infinitesimally small structures, although they may alter their size.

Conformal mappings are of great importance in both theoretical and applied mathematics, particularly in solving boundary value problems in physics and engineering.

4.5 Growth and Global Control of Analytic Functions

The behavior of analytic functions is subject to strong global constraints. The growth of an analytic function within a domain is closely regulated by its boundary values, as illustrated by principles such as the Maximum Modulus Principle and results like Liouville's Theorem.

These constraints ensure that analytic functions cannot behave arbitrarily, reinforcing the idea that analyticity imposes a high degree of order and predictability on complex functions.

4.6 Consequences of Rigidity

The characteristic behaviors discussed above collectively demonstrate the rigid nature of analytic functions. Once an analytic function is defined in a small region, its extension to the entire connected domain is uniquely determined.

This rigidity distinguishes complex analysis from real analysis and provides analytic functions with their exceptional theoretical power.

5. ZEROS AND SINGULARITIES OF ANALYTIC FUNCTIONS

In complex analysis, the study of zeros and singularities of analytic functions is fundamental for understanding their local structure and global behavior. These concepts play a crucial role in the development of many major theorems and have significant implications in both theoretical and applied contexts.

5.1 Zeros of Analytic Functions

A point is called a zero of an analytic function f if

$f(z_0) = 0$

Zeros of analytic functions are generally isolated, unless the function is identically zero throughout a connected domain. If a sequence of zeros of an analytic function has a limit point

within the domain, then the function must vanish identically in that domain. This result follows directly from the Identity Theorem and illustrates the rigidity of analytic functions.

5.2 Order of a Zero

Let z_0 be a zero of an analytic function f. If f can be expressed in the form

$$f(z) = (z-z_0)^n g(z)$$

The order of a zero provides detailed information about the local behavior of the function near that point and is an important concept in the qualitative analysis of analytic functions.

5.3 Concept of Singularities

A point is called a singularity of a function if the function ffails to be analytic at but is analytic in some punctured neighborhood of that point.

The classification of singularities is based on the behavior of the function in the vicinity of the singular point.

5.4 Classification of Singularities

Singularities of analytic functions are commonly classified into the following three types:

(i) Removable Singularities

A singularity z_0 is called removable if the function can be redefined at in such a way that it becomes analytic at that point. In such cases, the apparent singularity does not affect the analytic nature of the function.

(ii) Poles

A singularit z_0 is called a pole of order n if the function tends to infinity as $z \to z_0$, and $(z-z_0)^n f(z)$ f remains finite and non-zero at z_0.

Poles represent controlled types of singular behavior and are central to the theory of residues.

(iii) Essential Singularities

A singularity that is neither removable nor a pole is called an essential singularity. Near an essential singularity, the behavior of an analytic function is highly irregular and unpredictable.

Such singularities exhibit extreme sensitivity to small changes in the input, reflecting the complexity inherent in analytic functions.

5.5 Influence on Global Behavior

The nature of singularities significantly influences the global behavior of analytic functions. In particular, the presence of essential singularities can lead to dramatic variations in function values within arbitrarily small neighborhoods.

This sensitivity highlights the deep interplay between local singular behavior and global analytic structure.

5.6 Importance in Complex Analysis

The study of zeros and singularities underpins many fundamental results in complex analysis, including the Residue Theorem, Liouville's Theorem, and Picard's Theorems. Moreover, these concepts have widespread applications in mathematical physics, engineering, and applied mathematics.

6. APPLICATIONS OF ANALYTIC FUNCTIONS

Analytic functions are not only of fundamental theoretical importance in complex analysis but also play a crucial role in a wide range of applications across mathematics, physics, and engineering. Their strong structural properties, such as infinite differentiability and conformality, make them powerful tools for modeling and solving complex problems.

6.1 Applications in Potential Theory

One of the most significant applications of analytic functions arises from the harmonic nature of their real and imaginary parts. Since harmonic functions satisfy Laplace's equation, analytic functions are extensively used in potential theory.

Problems related to gravitational fields, electrostatic potentials, and fluid flow can often be reduced to finding suitable analytic functions whose real or imaginary parts represent potential functions.

6.2 Fluid Dynamics and Hydrodynamics

In two-dimensional incompressible and irrotational fluid flow, analytic functions are used to describe complex potentials. The real part of the complex potential represents the velocity potential, while the imaginary part corresponds to the stream function.

Conformal mappings generated by analytic functions allow complicated flow regions to be transformed into simpler domains, enabling exact solutions of otherwise intractable fluid flow problems.

6.3 Electrostatics and Electromagnetic Theory

Analytic functions play a key role in solving boundary value problems in electrostatics and electromagnetic theory. Conformal mappings are used to transform complex electrode geometries into simpler configurations, making it possible to compute electric fields and potential distributions accurately.

Such methods are particularly useful in the design of capacitors, transmission lines, and waveguides.

6.4 Heat Conduction and Diffusion Problems

In steady-state heat conduction problems, temperature distributions satisfy Laplace's equation. Consequently, analytic functions provide natural solutions to two-dimensional heat flow and diffusion problems.

The use of analytic techniques enables precise modeling of temperature fields in materials and engineering structures.

6.5 Signal Processing and Control Theory

In applied mathematics and engineering, analytic functions appear in signal processing, especially in the analysis of complex frequency responses and stability of systems. Poles and zeros of analytic functions play a central role in determining system behavior in control theory.

The location of poles and zeros directly influences system stability, resonance, and transient response.

6.6 Quantum Mechanics and Mathematical Physics

Analytic functions are deeply embedded in quantum mechanics and other areas of mathematical physics. Complex analytic techniques are used in the study of wave functions, scattering theory, and complex potentials.

Methods involving analytic continuation and residue calculus are particularly effective in evaluating integrals arising in quantum field theory and statistical mechanics.

6.7 Engineering and Conformal Mapping Techniques

Conformal mapping techniques based on analytic functions are widely used in civil, mechanical, and electrical engineering. These techniques simplify complex geometrical domains into manageable shapes without altering essential physical properties such as angles.

Applications include stress analysis, aerodynamics, and the design of mechanical components.

6.8 Broader Mathematical Applications

Beyond applied sciences, analytic functions are central to several advanced areas of pure mathematics, including complex dynamics, functional analysis, and number theory. Their study has led to profound theoretical developments and continues to influence modern mathematical research.

7. CONCLUSION

The present study provides a comprehensive and systematic examination of analytic functions, focusing on their fundamental properties, characteristic behavior, zeros, singularities, and wide-ranging applications. The discussion clearly demonstrates that analytic functions form the core of complex analysis and serve as powerful tools in both theoretical and applied mathematics.

The stringent conditions of analyticity—such as the satisfaction of the Cauchy–Riemann equations, infinite differentiability, and representation by convergent power series—impose strong structural regularity on analytic functions. Fundamental results including the Identity Theorem, the Maximum Modulus Principle, and the Open Mapping Theorem highlight the inherent rigidity of analytic functions and emphasize how local behavior uniquely determines global properties.

The analysis of zeros and singularities further reveals how local irregularities influence the global structure of analytic functions. The classification of singularities into removable singularities, poles, and essential singularities provides deep insight into the qualitative behavior of analytic functions and underpins major results such as the Residue Theorem and Picard's Theorems.

Moreover, the extensive applications of analytic functions in potential theory, fluid dynamics, electrostatics, heat conduction, signal processing, quantum mechanics, and engineering illustrate their relevance beyond pure mathematics. These applications demonstrate the effectiveness of analytic techniques in modeling and solving complex real-world problems.

In conclusion, the theory of analytic functions represents a unifying framework that connects rigorous mathematical theory with practical applications. Continued research in this area is expected to yield further theoretical advancements and contribute significantly to modern developments in science and engineering.

8. REFERENCES

1. Ahlfors, L. V. (1979). Complex Analysis (3rd ed.). McGraw-Hill, New York.
2. Churchill, R. V., & Brown, J. W. (2009). Complex Variables and Applications (8th ed.). McGraw-Hill, New York.

3. Conway, J. B. (1978). Functions of One Complex Variable I. Springer-Verlag, New York.
4. Needham, T. (1997). Visual Complex Analysis. Oxford University Press, Oxford.
5. Stein, E. M., & Shakarchi, R. (2003). Complex Analysis. Princeton University Press, Princeton.
6. Markushevich, A. I. (1985). Theory of Functions of a Complex Variable, Vol. I. Chelsea Publishing Company, New York.
7. Lang, S. (1999). Complex Analysis (4th ed.). Springer-Verlag, New York.
8. Rudin, W. (1987). Real and Complex Analysis (3rd ed.). McGraw-Hill, New York.
9. Cartan, H. (1995). Elementary Theory of Analytic Functions of One or Several Complex Variables. Dover Publications, New York.
10. Whittaker, E. T., & Watson, G. N. (1996). A Course of Modern Analysis. Cambridge University Press, Cambridge.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

A Study of Mediaeval South India : Rani Umayamma and Mangammal

Dr. Shama Anjum
Department of History
Kolhan University, Chaibasa, Jharkhand.

Abstract

This Articl "A Study of Mediaeval South India: Rani Umayamma and Mangammal" Highlights Women Who Ruled in South India. Women rulers have been few and far between to Indian history, as also in world history-but that still leaves hundreds of women who have ruled, and whose stories can be told.

I have selected but a few among them with respect to south India to write about. There are women queen Umayamma of Atingal and queen Mangammal of Madurai. These women have all ruled independently, either as regents or titled rulers. History is replete with tales of women who influenced their husbands or sons, and have been immensely powerful, but I have included only women who ruled directly, and not through agency, with the sole.

Research Methodology: I have used as many disparate source as possible: contemporary texts, accounts of foreign travellers as well as secondary sources, I have also used legends and folk tales, which, while difficult to verify, offer nuggets of information and help flesh out the person.it has been quite a task to separate the wheat from the chaff.

These portraits are painted 'warts and all'. They are not hagiographies – because these women were not saints. they often made wrong decision and took on wrong advisors, and sometimes lied and cheated in their quest for power. But they were invariably courageous and intelligent.Above all, they were leaders. We will not hold women leaders up to impossible standards,different from the measures we use for men.

The Sources of Queen Mangammal are R. Sathyanatha Aiyar, History of the Nayaks of Madura. Velcheru Narayana Rao, David Dean Shulman and Sanjay Subrahmanyam, *Symbols of Substance: Court and State in Nayaka Period Tmilnadu.*etc. and The Sources of Queen Umayyamma are Menu S.Pillai, *The Ivary Throne: Chronicles of the House of T ravancore,* P.Shagoonny Menon, History of Travancore from the Earliest Times.T.K.Velue Pillai, *The Travancore State Manual.*etc

Key Points: South India, Queens, Mangammal, Umayyamma, Political achivements.

Rani Mangammal (1689 AD-1706 AD): The period of Rani Mangalmal was the time when Apart from a few small kingdoms of indomitable heroes in the southern tip of our country, India was

completely under the control of the Mughals under Aurangzeb. These small kingdoms, including Mysore, Madurai, and Tanjore, were deeply tense. Besides the Marathas and the Mughals, they were also engaged in conflicts among themselves. Among them was Queen Mangalammal of Madurai. She fought with her neighbors and sometimes made friends with them, thus protecting her kingdom for 18 years.

At the time of the death of Queen Mangammal's son, Ranga Krishna Muthu Virappan, her daughter-in-law Muttammal was pregnant and was ready to commit sati after losing her husband. After giving birth to her son, she committed suicide despite Mangammal's strong opposition. Thus, the three-month-old Ranga Chokkanai was crowned king, and Grandmother Mangammal became regent.[1]

After the death of Mangammal's husband, she did not commit sati because she was a politically minded woman for whom the affairs of the state were more important.[2]

Satyanatha Iyer, in his book 'History of the Nayakas of Madura', states, "Mangammal's reign is notable for her careful management of the affairs of the state. Although she had to go to war on several occasions, she was an advocate of peace. Her success was largely due to her political submission to Mughal supremacy." [3]

Mangammal's rule differed from that of her husband, Chokkanatha. Chokkanatha engaged in futile, impractical, and costly wars, draining the kingdom's resources. However, Mangammal, for the benefit of her kingdom, often entered into treaties with former enemies, establishing peace and focusing more on the welfare of her kingdom.

According to the historian Ferishta, "Around 1693 AD, a Mughal general named Zulfiqar Khan, who was besieging Gingee, sent an army south and the same policy was adopted with Madurai for collecting taxes from Trichinopoly and Tanjore".[4]

Just as Shahaji of Tanjore did not attempt to resist the imperial invasion and instead became an ally of the Great Mughal, Mangalammal followed a prudent policy by not violating imperial authority. She tried to derive maximum benefit from her relationship with the Mughal Empire.

Satyanath Iyer notes, "When Zulfikar Khan again came to the south in 1697 AD, Mangammal sent him costly gifts and, with his assistance, regained some of the territories of her kingdom that had been captured by the Tanjore ruler".[5]

Manucci's account also confirms Mangammal's attitude towards the Mughal emperor. "On April 20, 1702, Daud Khan received a letter from the Queen of Trichinopoly, a Mughal ally, compelling him to wage war against the prince of Udaiyarpalayam, who had captured some of her towns. She also sent Daud Khan some fine gifts, including many valuable jewels and precious stones, to send to Aurangzeb".[6] Mangammal possessed shrewd political skills and an unwavering ability to make timely decisions in the kingdom's interest. She was also a shrewd negotiator in military matters. In 1686 and 1687, Bijapur and Golconda fell to Aurangzeb, respectively. However, she continued to strive to save her kingdom.

As with other women rulers, they were considered weak and oppressed. As soon as Mangammal ascended the throne, neighbouring kingdoms began to attack her. Some other states stopped giving donations to the state. The donation,or taxes,werea form of tribute paid the honourble stete by tributary state.

The Travancore king Ranga Krishna Muthu virappa Nyaka became Tinnevelli with many rich

presents to pay tribute to Virappa Nayaka.[7]The chronicles also remark, “While Mangammal was administering the kingdom, the Malyalam or Shyankore kingdom did not pay the usual tribute,so Mangammal had declare war against them”.[8]

Jesuit account also confirm this war in the Mangammal kingdomof Travancore.An inscription from Vadasri dated1697 AD.documents the Nayak invasion resulting in thirteen years of taxes for the people of Nanjinad.[9]

Mangammal held back Chikkadeva of Maysore when his troops attacked her kingdom. At the same time, Maratha fears began to loom over Mysore,forcing the army to retreat.

When the Tanjore Marathas,led by Shahji Bhosle,continued to raid Madurai, Mangammal finally declared war against them in 1700. Mangammal was well aware that her army would be unable to stop the Maratha superior cavalry and, acting wisely,advisedhercommander.Dalvay Narsepayya, to act strategically against the Tanjore expedition. As Satyapati Iyyar accounts in his book, Narsapyya secretly and safely ceossed the river and attacked andharassedthe Tanjore army. The Tanjore army began crossing the river, but the flooding disrupted the army. Taking advantage of the situation, the Madurai army defeated Tanjore.”[10]

Mangalammal was of a liberal nature. When pressured by other kingdoms to persecute Christians, the queen showed leniency. Mangalammal’s liberal attitude towards Christianity was evident. This is confirmed by Manucci’s account, “Even for the sake of her throne, she did not expel the Christians, and at any rate did not interfere with the practice of that religion. To other Christian opponents, she replied that just as some were permitted to eat rice and meat, so too was it lawful for every person to follow a religion according to his own interests.” [11]

Mangammal was equally generous towards other religions. She extended the same vision to her Muslim subjects. A copper plate inscription dated 1692 AD mentions a grant for the maintenance of a mosque in the name of her grandson. In 1701 AD, she granted some villages near Trichinopoly for a Muslim dargah. [12]Her donations to Hindus are innumerable. Despite being a pious woman, her respect for other religious sentiments reflects Mangammal’s concern for the interests of her subjects, an essential element for a successful ruler.

Sthyapati states,”Mangammal’s name became famous for her generosity. Inscriptions record her donations to temples and public charities.” [13] She also became famous as a road builder and designed some artistic public buildings. He also built a summer palace in Madurai known as the Tamukkam Palace, which is now a museum.[14]

Special attention to providing roads, linns, and clean water. She is particularly known as a road builder, having constructed numerous inns, wells, and tree-lined roads. The highway from Kanyakumari to Madurai was named after her, and even today, the road is called “Mangammal Salai.” An inscription from 1701 AD mentions a grant of land for a dining establishment.[15] She made numerous grants to agraharas. It appears that she devoted much of her attention to irrigation, as evidenced by the discovery of her inscriptions on the banks of the Uyyankodan River.[16] Her greatness is reflected in popular tradition. Thus, William Taylor’s book “Oriental Historical Manuscripts,” Notes, “Mangammal presents a strikingly contrasting picture of the miserly king Chikkadevaraya of Mysore.”[17]

Thus, Mangammal was full of feminine qualities like strength, compassion, kindness, etc. She possessed all the qualities needed to run the kingdom.

Regarding Mangarumal's death, Nelson, in his book 'The Madurai Country: A Manual', states, "Mangammal died under tragic circumstances.[18] It is said that the queen became unpopular during the last years of her life due to her scandalous relationship with her minister Ayaya and her reluctance to hand over the reins of government to her grandson when he came of age. Consequently, she imprisoned him and starved him like Tantalus until he died."

Taylor states that, "All these facts are an oral tradition."[19] While Nelson believes that, "Prima facie, there is nothing impossible in this fact and there is some evidence to confirm it." In 1957, Mangalammal was 55 years old at this time. Therefore, this does not seem to be an appropriate time for a love affair. The Jesuit priests who described Mangalammal have no evidence regarding her unnatural death.

According to the Annals of the Governors of Karnataka, the Supplement Manuscript, and the Mackenzie Manuscript, Mangalammal's reign lasted 18 years.[20] During these years, she displayed political acumen, military achievements, efficient administration, religious tolerance, and an interest in welfare work. These qualities distinguish her from and strengthen her contemporaries. It would not be wrong to say that this historical queen embodied all the elements of feminist concepts.

Queen Umayamma (1678-1684 AD): The kings of Travancore maintained independence for 400 years.They ruled their territory of Attingal as regents. The mothers of these kings were queens of Attingal. Among these mothers, Queen Umayamma was encountered by European travelers and included in their travelogues, providing us with a historical study of Queen Umayamma.

According to Shagun Menon, a semi-official 19th-century history of Travancore, "Aditya Varma was of a very calm and gentle disposition and lived a retired religious life. He had little control over his chieftains. He was trying to reform the administration of the Payanabhaswamy temple, which was not liked by other nobles… so he was poisoned to death." [21]

The reign now passed to Umayamma Rani, who had six sons. They lived in the Puthenkotta palace and swore allegiance and support, but a conspiracy Heidelberg Historic As Manen notes, "On a certain moonlit night, Sanghadutta's boys, who were of the same age as the five princes, while playing, took them out of the palace, and some people came under the pretense of bathing and caught hold of the princes and suffocated them to death in water." [22]

However, this theory is disputed by contemporary historians, who say that Aditya Varma died a natural death and Umayamma Rani had no children.

T. K. Velu Pillai, in 'The Travancore State Manual', states that "according to the statements recorded by Colonel Munro in 1986 regarding the practice of adoption in the royal family, prominent citizens have admittedly stated that Umayamma Nari had no children. None of their statements or any other documents preserved in the state archives give the remotest indication of the untimely death of any of her children."[23]

Rani Umayamma, the junior or second queen of Attingal in 1677 AD, was the niece of Aditya Varma[24], the king of Venad. Ravi Varma was the younger son of the senior queen of Attingal. [25] After Aditya Varma's death in 1677 AD, Ravi Varma became a minor and the senior queen became the guardian barony and ruled the kingdom. Pillai notes, "She was a woman of remarkable courage and determination. From her youth, she had played a prominent role in the administrative affairs of Attingal and had been an effective support to her elder sister."[26]

Umayamma Rani punished some officials for their improper conduct, leading to a revolt against the prominent members. Kerala Varma of Porakatthavali claimed ownership and demanded the adoption of his brother. Kerala Varma was summoned to Trivandrum and a family council was held, where Aditya Varma, the senior queen of Appilyam Thesnal Attingal, the junior queen, and Uyamma Rani discussed the issue.[27]

Taking advantage of the chaos thus created among the chieftains, a minor Mughal adventurer, Mugilan, with a few cavalry, took over Travancore.[28] Umayamma received no support from the chieftains. The queen invited Kerala Varma, an exile from the Kottayam royal family, to become the commander of her army.[29] He was a poet, scholar, and a talented military commander. He raised an army of archers and slingers and attacked the invaders.[30]

According to local legend, "A sling struck a wasp nest hanging over the Mughal chief's head. The horseman fell, stung and surrounded by a swarm of wasps, and was immediately killed by a hail of arrows".[31] The remaining troops fled, and Kerala Varma captured 300 horses and some elephants.

Thus, Umayamma Rani ruled with sound judgment and administrative talent and handed over the reins of government to 16-year-old Ravi Varma by crowning him.[32] In 1688, Umayamma, known as Rani Ashour in British documents, wrote to Sir John Gayer in 1695, "When I assured him that I intended to do good to his country and maintain friendship, So the queen granted him the fort of Unjego in 1694 and also established customs duties. He was required to pay an annual tribute, plus 50 percent of any booty recovered from damaged ships.[33]

The image of the queen that emerges from Europeans is that of a woman of unwavering determination and authority. In 1677, Hendrik van Reede, an administrator of the Dutch East India Company, wrote of her, "So noble and manly in conduct that everyone fears and respects her…. She rules not only Attingal but also Travancore."[34]

The queen died In July 1698, the junior queen, who is referred to in historical records only by the title Purusha Thirunal of Kolathunadu. European travelers wrote about the queen because of her connections with the Dutch and the British. As early as 1644, the English Company obtained permission from the King of Thirupapuram to open a factory in William.[35]

In 1678, the Queen of Attingal invited the Company to establish an industry in her territory. The Queen invited the Company to trade with Attingal. The following year, a Company member, Varadaman Beka, was sent to her with a letter to obtain Attingal's resources for the supply of spices.[36]

J. Sterne Philip mentions that, "in 1687, Captains John Shaxton and Richard Clifton were sent to negotiate with the Queen and the government about the fortification".[37]

The company sent Captain John Bereburn to establish a factory in William. These two small industries operated until the Queen cancelled the lease.[38] In cancelling the lease, the Queen wrote, "They were causing trouble to my people, so I ordered them to leave and not enter into any further contracts on the land".[39]

In 1693, the Company's negotiations with Umayyam resumed through Acworth and Braeburn. On July 29, 1694, Umayyam and Braeburn obtained permission from the British to establish a settlement and a fort.[40]

Describing Umayamma's personality, John Niehoff, in Voyages and Travels to the East Indies, writes, "I was introduced to Her Majesty's presence. She was surrounded by a guard of over seven

hundred Nair soldiers, all dressed in Malabari attire. The queen's robe consisted of no more than a piece of cornico wrapped around her middle. Her ears were long, her arms and neck were adorned with precious stones, gold rings and bracelets. She was past her middle age, brown in complexion, with black hair tied back. She was of a regal disposition, and displayed excellent conduct in her administration".[41]

Umayamma Rani should be seen as a role model in the current context of women's empowerment. For the advancement of society, it is essential for women to seek role models from historical sources of South Indian women.

Conclusion: In our study we find that Rani Abbakka of Ullal, near Chota Manglore, earned the distinction of being the first female freedom fighter against foreing countries leading by a campaign against the Portuguese.

In the study of Mdurai's Queen Mangammal fased opposition from the Mughal Emperor Aurangzeb. Mangammal was renowed for her generosity. She also became famous as a road builder and commissioned some artistic public work, Thus, Mangammal embodied feminine qualities Such as strength, compassion,and kindness.

Rani Mangammal is also was legend Queen. Mangammal first celebrated the Unjal festival in Meenakshi temple during the Tamil month of Ani. During the festivities, all the royal families visit the temple and pay tribute to Meenakshi Amman, Even today we can see her contemporary portrait in the Ujal Mandapam.

A study of Queen Umayamma of Atingal also reveals her mastery of state governance. John Niehoff described her as having a regal nature and displaying excellent conduct in her administration.

Endnotes

1 Kailas Mishra, op. cit.

2 Achana, op. cit., p.146.

3 R. Sathyanath Aiyar, *History of the Nayaks of Madura*, Deccan Press Madras, 1924, p.204; O.H, Taylor,*Economic and Political Idias*, Havard University Press,1948,. Ass. II p.216-7; Vide Appdneix A, catter No. 12, Oxford University Press.

4 R. Sathyanath Aiyar, op.cit., p.204.

5 Scott's Farishta, *Tarikh-i-Farishta*. Tr. Alexander Dow under the title of The *History of Hindustan* (3 Vols.). Today and Tomorrow's Printers and Publishers, New Delhi, 1973.

Vol. II p.81 ; Mark Wilks, *Historical Sketches of the South of India : History of Mysore,* Asian Educational Services, New Delhi, 1989, Vol I, p.59.

6 R. Sthyanath Aiyar, op.cit., p.206

7 Niccolao Manucci, Storiya The Mogor or Mogul India(1633-1708), Munshiram Manoharlal Publishers,1981,Vol.ll., p.411.

8 Tayior, O.H. MSS. II, P-215 ; R. Sthyanath Aiyar, op. cit., p.208.

9 John Lockman, *Travels of the Jesuits*, Into Variour Part of the Printed for T. Piety, England, 1762, Vol. I,pp.367-70.

10 Lockman, op. cit., pp.367-70, Vide Appdneix D. Vol. 202.

11 Sthyapati op.cit., p.218

12 Mnuccl op. cit., Vol.I, pp.832-33
13 Tamil, S.S. 1655 ; Trichinopoly : Grant of Lands to a Mosquie; Telgu S.S. 1614, Angirasa, Tinevelly:grant to musalman for maintainance of a mosque, during the choknathan , the son of Ranga Krishna muthu virappa S.C. P no.53
14 Telugu, S.S. 1623, Vishu ; Mangammal the Queen of Chokkanath Nayaka, Gift of Some Villeges near Trichinopoly to The 'Dargah' of Babanatta, (19 of Appendix A, 1911, Mysore Archeological Report, 1911, pp.89-90
15 Sthyapati. op.cit., p.220
16 Archana, op.cit., p.147
17 Telugu ; S. S. 1623, Vishu ; Madura ; Mangammal, the Queen of Vishvanatha Nayakn-Chokknnatha Nayakn ; gift of land for a feeding institante (annadana) to a certain subbayyn bhagavata, When, Virapratapa, Vira-Venkatadeva-Mahuraya was ruling at Ghanagiri' (Penukonda) with the imperial titles, Maharajadhiraja and paramesvara (3 of Appendix A, 1911, M.E.R. 1911, pp.89-90
18 Telugu; S.S. 1626 current, Tarana, Marutti-vakkudi (Papanasan Tanjore), on a stone near Set up on the bank of the Uyyakkondan Channel near the Surplus ; Mangammagaru, the Queen of Visvanathanajini-Chokkanath Yinivaru : The Construction of the Sluice (Kalingulu) by a Brahmana. (394 of 1907) ; Tamil ; S.S.,1608 expired Uyyakkondan Channel near Vettuvayttalai (Trichinopoly) ; a record of Mangammal on a pillar at the head sluice of the Channel, (71 of 1890 ; M.E.R., 1891, p.4 and 8)
19 Taylor,op cit, Vol II pp.224-226
20 J. H. Nelson*, the Madura Country a Manual*, complleted by order of the Madras Government, p.216
21 Ibid;Ibid
22 John Tryor*, A New Account of East India and Persia in 8 Letters Being Years Travels,* Begun 1672 and Finished 1621, Heidelberg Historic Literature Digitized, London, 1698 pp.91-144.
23 M. G. Agarwal, *Freedom Fighters of India* (in four Volumes) Isha Books, Delhi, 2008, p.192.
24 P. Shungoonny Menon*, A History of Travancore*, from the Earliest times, Higginbotham and Co. Madras, 1878, pp.93-94
25 Ibid, p.95
26 T. K. Velu Pillai, *The Travancore State Manual*, Published by the Government of Travancore, 1940, Vol. II p.22).
27 P. S. Menon, op. cit., pp.93-94
28 T. K. Pillai, op. cit., p.226
29 K. V. Krishna Ayyar, *A Short History of Kerala,* Pai and Company, Cochin, 1966, p.120; Lakshmi Raghunandan, *The Life and Times of Maharani Setu Lakshmi Bayi*: *The Last Queen of Travancore*,Maharani ; Setu Lakshmi MemorialCharitable Trust, Bangalore, 1995 pp.449-452.
30 Keral Society Papers, Vol. I, p.117
31 K.V. Krishna Ayyar, op.cit., p.121
32 T.K. Pillai, op.cit., p.228
33 Shungoonny Menon, op. cit., p.101
34 T. K. Pillai, op.cit., p.229
35 Ibid. p.230
36 Ibid p.331
37 J. Stern, Philip, A Polotic of Civil and Milolitary Power : Political Thought and the Late Seventeenth Century Foundations of the East India Company, *State,Journal of British studies, Vol. 47, n, 2*,2008, pp.253-283

38 P.K. Leena, Rani of Attingal and the Engash in Travancore*, Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 46,* 1985, pp.364-372.

39 P. K. Leena, Rani of Attingal and the English in Travancore, *Proceedings of the India History Congress. Vol. 46,* 1985, pp.364-372.

40 P. K. Leena,op.cit., p.364-372; T. Stern Phillip, *A Politic of Civil and Military Power: Political Thought and the Late Seventeenth Century Foundations of the East India Company State*, Journal of British Studies, Vol. 47, No. 2, 2008, pp.253-283.

41 J. Stern Phillip,op.cit., p.257.

.

.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

कबीरदास के काव्य में निहित मानवतावाद और उसके शैक्षिक निहितार्थ : एक गहन विश्लेषण

डॉ. सतीश चन्द मंगल
निर्देशक व उप-प्राचार्य श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सीटीई, केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर, (राजस्थान)
Contact No- : 8005508625
Email: satishmangal009@gmail.com
राम खिलाड़ी गुर्जर
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
Contact No- :7426936372
Email: rkg09051986@gmail.com

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध-पत्र मध्यकालीन भारत के महान संत, कवि और विचारक कबीरदास के काव्य का विश्लेषण 'मानवतावादी शिक्षा' के परिप्रेक्ष्य में करता है। कबीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब भारतीय समाज धार्मिक संकीर्णता, जातिवाद और बाह्य आडंबरों के जाल में उलझा हुआ था। कबीर ने अपनी साखियों और पदों के माध्यम से समाज को 'मानवता' का पाठ पढ़ाया। उनके शैक्षिक विचार किताबी ज्ञान से ऊपर उठकर अनुभवजन्य सत्य (Experiential Truth) पर आधारित हैं। यह शोध-पत्र कबीर के मानवतावाद के विभिन्न आयामों जैसे सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, गुरु का महत्व और नैतिक आचरण का आधुनिक शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में मूल्यांकन करता है।

शब्दावली (Keywords) : मानवतावाद, शैक्षिक विचार, अनुभवजन्य ज्ञान, सामाजिक समरसता, आत्म-बोध, मूल्य-आधारित शिक्षा, पाखंड-खंडन, गुरु-महिमा।

प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा केवल साक्षरता या उपाधि प्राप्त करना नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर छिपे 'मनुष्यत्व' को जगाने की प्रक्रिया है। कबीरदास जी औपचारिक रूप से शिक्षित नहीं थे– 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ'। परंतु, उनके पास जीवन का वह सघन अनुभव था जो बड़े-बड़े पंडितों के पास भी दुर्लभ था।

कबीर का मानवतावाद (Humanism) ईश्चर की खोज से अधिक मनुष्य की खोज पर आधारित है। उनका मानना था कि यदि मनुष्य स्वयं को पहचान ले और दूसरे मनुष्य के प्रति करुणा का भाव रखे, तो यही सबसे बड़ी शिक्षा है। वर्तमान २१वीं सदी की भौतिकवादी शिक्षा प्रणाली में, जहाँ मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है, कबीर के विचार एक प्रकाश स्तंभ की

भांति कार्य करते हैं।

कबीर के काव्य में मानवतावाद के विविध आयाम

जाति और वर्ण-भेद का उन्मूलन

कबीर की शिक्षा का प्रथम पाठ 'समानता' है। उन्होंने तत्कालीन समाज की सबसे बड़ी बुराई 'जाति प्रथा' पर सीधा प्रहार किया। कबीर का मानवतावाद यह घोषित करता है कि मनुष्य का जन्म उसके संस्कारों और कर्मों से बड़ा नहीं होता।

जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया, तो आन बाट काहे नहीं आया?
जो तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतर खतना क्यों न कराया?[1]

कबीर का यह तर्क वैज्ञानिक मानवतावाद (Scientific Humanism) का प्रारंभिक रूप है। वे शरीर रचना के आधार पर सबको समान सिद्ध करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में यह विचार 'लोकतांत्रिक शिक्षा' की नींव रखता है, जहाँ जन्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव न हो।

धार्मिक सहिष्णुता और वैश्विक नागरिकता

कबीर ने धर्म के बाह्य आवरण को हटाकर उसके 'मानवीय कोर' को पकड़ा। उनके अनुसार, मंदिर और मस्जिद की दीवारों ने मनुष्य को विभाजित कर दिया है।

अल्लाहु अलख न काहू कहिया, राम रहीम न जाना।
खोजत-खोजत घट में पाया, तब यह पद पहचाना॥[2]

कबीर की यह शिक्षा आज के 'ग्लोबल सिटीजनशिप' (Global Citizenship) के विचार को पुष्ट करती है। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ धर्म जोड़ने का माध्यम हो, तोड़ने का नहीं।

कबीर के शैक्षिक विचाररू एक नया परिप्रेक्ष्य

अनुभवजन्य ज्ञान (Practical vs Bookish Knowledge)

आज की शिक्षा प्रणाली अक्सर 'रटंत विद्या' पर आधारित होती है। कबीर इसके धुर विरोधी थे। उन्होंने 'कागद की लेखी' (लिखित शास्त्र) के स्थान पर 'आँखन देखी' (प्रत्यक्ष अनुभव) को प्राथमिकता दी।

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे॥ [3]

शैक्षिक दृष्टिकोण से, यह 'लर्निंग बाय डूइंग' (Learning by Doing) और 'कंस्ट्रक्टिविज्म' (Constructivism) का आधार है। कबीर चाहते थे कि विद्यार्थी सत्य की खोज स्वयं करे, न कि केवल दूसरों के कहे हुए को सत्य मान ले।

नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षा (Moral Education)

कबीर के अनुसार, वह व्यक्ति शिक्षित ही नहीं है जिसके आचरण में सुधार न हो। उन्होंने वाणी की मधुरता, विनम्रता और परोपकार को अनिवार्य शैक्षिक गुण माना।

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोये।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होये॥ [4]

वर्तमान में जिसे 'इमोशनल इंटेलिजेंस' (Emotional Intelligence) कहा जाता है, कबीर उसे ५०० साल पहले 'मन का आपा खोना' (अहंकार का त्याग) कह रहे थे।

शिक्षक (गुरु) की संकल्पना

कबीर के मानवतावादी शिक्षा दर्शन में गुरु का स्थान ईश्चर से भी ऊपर है, क्योंकि गुरु ही वह माध्यम है जो मनुष्य को अज्ञान के अंधकार से निकालकर मानवता के प्रकाश में ले जाता है।

कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥ [5]

यहाँ गुरु केवल सूचना देने वाला व्यक्ति नहीं है, बल्कि वह एक 'कुम्हार' की तरह है जो शिष्य रूपी कच्चे घड़े को गढ़ता है। वह बाहर से कठोर अनुशासन रखता है लेकिन भीतर से प्रेम का सहारा देता है।

मानवतावादी शिक्षा के सामाजिक सरोकार

श्रम की महत्ता (Vocational Education)

कबीर स्वयं जुलाहे का कार्य करते थे। उन्होंने सिद्ध किया कि हाथ से श्रम करना और ईश्चर का नाम लेना (मानवता की सेवा) एक ही है। यह विचार आज की 'व्यावसायिक शिक्षा' (Vocational Training) को गरिमा प्रदान करता है।

अहिंसा और करुणा का पाठ

शिक्षा का अंत हिंसा की समाप्ति में होना चाहिए। कबीर की मानवतावादी शिक्षा जीव मात्र के प्रति संवेदनशीलता सिखाती है।

कबिरा तेई पीर हैं, जे जानै पर पीर।
जे पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥ [6]

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कबीर की प्रासंगिकता

आज के दौर में कबीर के विचार निम्नलिखित कारणों से आवश्यक हैं :

मानसिक तनाव की मुक्ति : कबीर का 'संतोष' और 'साहस' योग विद्यार्थियों को प्रतिस्पर्धा के तनाव से बचाता है।

पर्यावरण शिक्षा : कबीर ने प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाकर जीने की प्रेरणा दी।

लोकतांत्रिक मूल्य : कबीर की निभीकता विद्यार्थियों में प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति (Inquiry-based learning) विकसित करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

कबीरदास जी के काव्य में निहित मानवतावाद किसी विशिष्ट कालखंड के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए है। उनके शैक्षिक विचार मनुष्य को रूढ़ियों से मुक्त कर विवेकवान बनाने का संदेश देते हैं।

कबीर की शिक्षा

सहज : वह स्वाभाविक अवस्था जहाँ मनुष्य छल-कपट से मुक्त हो जाता है। का सार श्प्रेमश है। यदि शिक्षा मनुष्य के भीतर प्रेम और करुणा का बीज नहीं बो सकती, तो वह केवल बौद्धिक कसरत है। कबीर का श्मानवश वह है जो स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ को अपनाता है। अंततः, कबीर एक ऐसे समाज के शिक्षक हैं जहाँ श्राम और रहीमश के भेद के बिना हर व्यक्ति एक-दूसरे का सम्मान करे।

शब्दावली एवं व्याख्या (Glossary)

घट-घट राम : प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्चरीय तत्व (मानवीय गुण) का वास।

मसि-कागद : स्याही और कागज (पुस्तकीय ज्ञान का प्रतीक)।
आपा : अहंकार या 'ईगो' (Ego)।
साखी : साक्षी या प्रमाण (अनुभव पर आधारित सत्य)।

पाद टिप्पणी (footnotes)

1. बीजक, सं. शुकदेव सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, रमैनी ७, पृष्ठ ८५।
2. कबीर ग्रंथावली, संपादक : बाबू श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 'अथ पद खंड', पद संख्या १८२, पृष्ठ संख्या २३५।
3. कबीर, लेखक : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 'अनुभव का मार्ग' अध्याय, पृष्ठ संख्या १६५।
4. कबीर साखी संग्रह, संपादक : युगेश्चर, सुलभ प्रकाशन, वाराणसी, 'वाणी को अंग', साखी संख्या ७, पृष्ठ संख्या ४२।
5. कबीर ग्रंथावली, संपादक : बाबू श्यामसुंदर दास, 'गुरुदेव को अंग', साखी संख्या ४२, पृष्ठ संख्या ६।
6. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, 'सलोक भगंत कबीर जी के', सलोक संख्या १५५, पृष्ठ संख्या १३७२।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
- सिंह, नामवर, कबीर के कुछ और पहलू, राजकमल प्रकाशन।
- चतुर्वेदी, परशुराम, कबीर साहित्य की परख, भारती भंडार।
- शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।
- बीजक, सं. शुकदेव सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- कबीर ग्रंथावली, संपादक : बाबू श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- कबीर, लेखक : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- कबीर साखी संग्रह, संपादक : युगेश्चर, सुलभ प्रकाशन, वाराणसी।
- कबीर ग्रंथावली, संपादक : बाबू श्यामसुंदर दास।
- श्री गुरु ग्रंथ साहिब, सलोक भगंत कबीर जी के।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नंदकिशोर नवल की आलोचनात्मक-दृष्टि और मैथिलीशरण गुप्त

सुशांत कुमार
शोधार्थी - हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना
मो. न. 8873975622, ईमेल- shant-7870@gmail.com

डॉ. शिप्रा प्रभा
शोध-निर्देशिका, सहायक प्राध्यापिका एवं विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग, मगध महिला कॉलेज पटना विश्वविद्यालय, पटना

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिंदी काव्य के महान कवि हैं। इन्होंने खड़ी बोली हिंदी कविता की परंपरा को अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित किया। उनके काव्य के प्रकाश में आने के बाद खड़ी बोली में छिपी काव्य सृजन की संभावनाओं पर मंडराते अविश्वास के बादल छिन्न-भिन्न हो गए। अपने समकालीन खड़ी बोली कवियों के लिए मैथिलीशरण एक नजीर बन गए। इनकी लोकप्रियता का आधार खड़ी बोली का प्रचारक होना नहीं बल्कि इनके काव्य का कवित्व है। इस लेख में मैथिलीशरण गुप्त के काव्य-संसार को नंदकिशोर नवल की आलोचनात्मक-दृष्टि से समझने की कोशिश की गई है। किसी आलोचक की नजर से किसी कवि को समझने में स्वयं उस आलोचक और कवि दोनों के दृष्टिकोण की परीक्षा होती है। नवलजी का जब हिंदी आलोचना में प्रवेश हुआ, तब वे मार्क्सवाद के प्रभाव में थे। उनके आलोचनात्मक लेखन में एक ऐसा दौर आया था, जब वे मार्क्सवादी और नक्सलबाड़ी जैसे आन्दोलनों के संकीर्णतावादी नजरिए के प्रभाव में आए थे। इस प्रभाव के कारण उनकी आलोचनात्मक दृष्टि चयनात्मक हो गई थी। नवलजी स्वयं अपनी आलोचनात्मक लेखन यात्रा का आत्मावलोकन करते हुए कहते हैं- "यह सच्चाई है कि मार्क्सवाद ने मेरी एक आंख को खोलकर दूसरी आंख को बंद कर दिया था, सो दूसरी तरफ का दृश्य मुझे अपनी भव्यता में दिखाई नहीं पड़ता था।"[1]

नवलजी की इस आत्मस्वीकृति में एक ईमानदारी है। वे खुलकर यह स्वीकार करते हैं कि उनके आलोचनात्मक लेखन में एक ऐसा पड़ाव भी है, जहाँ पर वे साहित्य को मार्क्सवाद और गैर-मार्क्सवाद के नाम पर विभाजित करने वाली शक्तियों के प्रभाव में चले गए थे। उनकी 'हिन्दी आलोचना का विकास' नामक समीक्षा पुस्तक पर मार्क्सवाद की संकीर्णताओं के प्रभाव को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। उस पुस्तक में नवलजी ने केवल मार्क्सवादी आलोचना के विकास को रेखांकित किया है। उन्होंने उसमें नंददुलारे वाजपेयी और नगेंद्र जैसे जैसे गैर मार्क्सवादी आलोचकों को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया है। नवलजी की आलोचना मार्क्सवाद के खांचे को तोड़कर विकसित हुई। मार्क्सवाद अपनी तमाम उपलब्धियों के बाद भी हिंदी साहित्य के प्रति एक विभाजनकारी मानसिकता रखता है। उस खेमे के बड़े-बड़े आलोचक भी इस दोष मुक्त नहीं हैं। निर्मल वर्मा और अज्ञेय जैसे लेखकों पर लिखी गई मार्क्सवादी आलोचना मानो उनके साहित्य का अवमूल्यन करने के लिए ही लिखी गई है। मैथिलीशरण गुप्त भी ऐसे ही लेखक हैं, जिनकी कविताओं के संबंध में मार्क्सवादी आलोचकों ने अनेक तरह की भ्रांतियां फैलाई है। उन्हें पुनरुत्थानवादी, हिंदूवादी तथा अभिधावादी कवि कहकर उनकी कवि प्रतिभा पर पर्दा डालने का प्रयास किया गया। उन्हें खड़ीबोली हिंदी के प्रचारक बताकर उनकी कवि प्रतिभा की उपेक्षा की गई है। नवलजी की आलोचना में मैथिलीशरण गुप्त की कविता के अप्रकट पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। नवलजी अपने आलोचना-कर्म के प्रति अत्यंत

ईमानदार थे। उन्होंने अपने भीतर के अतिवाद को पहचाना और और खुलकर उसे अपनी कमजोरी के रूप में स्वीकार किया। अपनी न्यूनता की स्वीकृति के साहस के कारण ही उनकी आलोचना-दृष्टि में एक नई धार पैदा हुई। यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि नवलजी कितनी सरलता से अपनी आलोचना के दोष स्वीकार करते हैं -"इस दौर में मैंने 'हिंदी आलोचना का विकास' नामक पुस्तक लिखी,जो सरलीकृत मार्क्सवादी आलोचना-दृष्टि का सबसे बढ़िया उदाहरण है।"[2]

नवलजी आलोचना को अतीव गंभीर कार्य मानते थे। वे अपनी रुचि के हिसाब से नहीं तथ्यों के आधार पर अपनी बात कहते हैं। उन्होंने अपनी आलोचना-दृष्टि को फ्लैक्सिबल बनाकर वैचारिक पूर्वाग्रहों से मुक्ति पाई। अब नवलजी ये बात पूरी तरह से समझ चुके थे कि घेराबंदी में कैद होकर लिखी जाने वाली आलोचना की विश्वसनीयता कमजोर होती है। आज प्रेमचंद दलित आलोचना के लिए इस लिए अग्राह्य हैं क्योंकि वो दलित जाति से नहीं हैं। दलित आलोचना के शूरवीर आलोचकों ने प्रेमचंद को चेतना के स्तर पर नहीं, जाति के आधार पर परखकर उन्हें दलित विरोधी लेखक साबित कर दिया। बहरहाल मैं इस प्रसंग का जिक्र महज इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि एकांगी आलोचनात्मक धारणा पर अडिग रहने के कारण आलोचना की दिशा कितनी विकृत हो जाती है। रामविलास जी का मुक्तिबोध से संबंधित आलोचना एकांगी दृष्टिकोण का अच्छा उदाहरण है। उन्होंने मुक्तिबोध को मनोवांछित धारणा के आधार पर परखने की कोशिश की थी, इसलिए मुक्तिबोध उनकी पकड़ में नहीं आ सके। आलोचक के पास एक तटस्थ दृष्टिकोण होना जरूरी है। यहाँ तटस्थ कहने का तात्पर्य यह है कि विविध दृष्टिकोणों के बीच, समुचित दृष्टिकोण की पहचान करके, उसके आलोक में आलोचनात्मक निष्कर्ष तैयार करना। नंदकिशोर नवल की यह टिप्पणी उनकी तटस्थ आलोचना-दृष्टि को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है-"कविता को ग्रहण करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके पास खाली दिमाग लेकर जाया जाए।"[3]

नवलजी की यह टिप्पणी इस बात का संकेत करती है कि कविता या साहित्य को समझने के लिए आलोचक को तमाम वैचारिक आग्रहों से मुक्त होना होगा। मैथिलीशरण गुप्त मार्क्सवादी आलोचकों द्वारा इसीलिए उपेक्षित होते रहे क्योंकि उन्होंने मार्क्सवाद की तयशुदा मानकों पर अपना कवि कर्म नहीं किया। उन्होंने राष्ट्रीयता, स्त्री समस्या तथा मानवतावाद को अपने काव्य में फलिभूत किया। मार्क्सवादी आलोचना इन सभी प्रवृत्तियों को बुर्जवा वर्ग से जोड़कर उसकी आलोचना करती है। नंदकिशोर नवल पाठ केंद्रित आलोचना का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मैथिलीशरण गुप्त पर 'मैथिलीशरण' नाम से एक शानदार पुस्तक लिखकर गुप्तजी संबंधित अनेक नाकारात्मक धारणाओं को तथ्यों और तर्कों के द्वारा ध्वस्त कर दिया। नवलजी हिंदी साहित्य में मैथिलीशरण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं- "वे हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद नवजागरण के सबसे बड़े दूत थे। इस नवजागरण का संबंध अतीत से भी था और भविष्य से भी, लेकिन उसका लक्ष्य वर्तमान था।"[4] नंदकिशोर नवल की दृष्टि में मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिंदी कविता के सबसे महान कवि हैं। गुप्तजी पर हिंदी आलोचना की मेहरबानी देखिए, उसने उन्हें खड़ीबोली प्रचारक का महान दर्जा दिया। यह बात बिलकुल साफ़ है कि हिंदी आलोचकों ने गुप्तजी को एक कवि रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं माना है। नवलजी गुप्तजी के संबंध में बिलकुल अलग राय रखते हैं। वे बहुत स्पष्टता से कहते हैं कि मैं मैथिलीशरण गुप्त को भारतेन्दु के बाद हिंदी नवजागरण का सबसे बड़ा अग्रदूत मानता हूँ। नवलजी ने अपनी स्थापनाओं और तर्कों यह साबित किया कि मैथिलीशरण हिंदी साहित्य के एक अत्यंत महान कवि हैं।

मैथिलीशरण गुप्त का नवजागरण भारतेन्दु युगीन नवजागरण का विकास है। भारतेन्दु ने समाज और साहित्य को एक दूसरे के करीब लाकर निश्चित ही महान कार्य किया पर साहित्य में आधुनिक मूल्यों की मुखर उपस्थित सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में ही दिखाई पड़ता है। गुप्तजी की स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए पुरुषों से तर्क करती हैं। जब 'साकेत' के लक्ष्मण राम का वनवास खत्म होने पर अयोध्या लौटते हैं, तो उर्मिला अत्यंत प्रसन्न होती है लेकिन फिर वह तुरंत यह सोचकर निराश हो जाती है कि इस वियोग की अवधि में क्या उसके यौवन का आवेग शांत नहीं पड़ गया? मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के पहले ऐसे कवि हैं, जिनकी स्त्रियां अपने प्रणय इच्छाओं को भरपूर महत्त्व देती हैं। उनकी स्त्रियां पति के वियोग में उठने वाली कामनाओं का उद्गार करती हैं। इसी प्रकार गुप्तजी ने गृहस्थ जीवन से पलायन करके

संन्यास मार्ग पर अग्रसर होने वाले महात्माओं की आलोचना करते हैं। 'पंचवटी' में लक्ष्मण जब सीता के समक्ष अपने को पुरुषार्थपक्षी बताते हैं, तो सीता लक्ष्मण कहती है-"तुम्हारा पुरुषार्थ क्या यही है कि पत्नी को भी अपने साथ नहीं ला सके?"[5] गुप्तजी का यह छोटा सा सवाल आधुनिक युग की रूढ़ियों को हिला देता है। जिस समाज की स्त्रियों का जीवन घर की चारदीवारी की कैद में व्यतीत होता हो, उस समाज के एक पुरुष को एक स्त्री के द्वारा यह कहलवाना कि तुम अपनी स्त्री को तो अपने साथ घर से बाहर ला न सके और पुरुषार्थ की बात करते हो, निश्चित ही मैथिलीशरण गुप्त की प्रगतिशील सोच का प्रमाण है। हमारा समाज आज भी इस तरह की संकीर्णताओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है। वर्तमान समय में भी पुरुषवर्ग स्त्री अधिकारों का दमन करके अपने संकीर्ण पुरुषवादी अहंकार को सहला कर आनन्द पा रहा है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से मनुष्य समाज की रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया। उनकी की बहुलांश रचनाएं पौराणिक कथानकों पर आधारित है लेकिन वे पौराणिकता में आधुनिकता की एक विहंगम रोशनी भर देते है। 'साकेत', 'विष्णुप्रिया' और 'जयद्रथ-वध' जैसी रचनाएं मैथिलीशरण गुप्त की आधुनिक काव्य- चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इनके पात्र पुराने हैं लेकिन इन पात्रों का दृष्टिकोण आधुनिक है। नवलजी मैथिलीशरण गुप्त के संबंध में कहते हैं-"गुप्तजी के मन में नारी के प्रति गहन सहानुभूति थी।वह सहानुभूति गहराई में नारी की मुक्ति चेतना और अधिकार-चेतना से युक्त थी।"[6] नवलजी इस कथन की पुष्टि हेतु गुप्तजी की कविताओं की ये पंक्तियां महत्त्वपूर्ण हैं-"नर घर छोड़ निकल जाता है,नारी घुटती रहती है, लज्जा भय विषाद की मारी दुखियारी सब सहती।"[7]

गुप्तजी के काव्य में वर्णित स्त्रियों में केवल दुखियारी होकर सब कुछ सह लेने वाली वाली स्त्रियां ही नहीं हैं बल्कि द्रौपदी, शूर्पणखा और शची जैसी स्त्री पात्र भी हैं, जिनका चरित्र अत्यंत शक्तिशाली है। उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि गुप्तजी हमारे समाज को मध्यकालीन रूढ़ियों से बाहर निकालना चाहते हैं। जब 'पंचवटी' काव्य में लक्ष्मण और राम स्वयं को विवाहित बताकर शूर्पणखा की शादी के प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं तो वह क्रोधित होकर कहती है-"पर क्या पुरुष नहीं होते दो-दो दाराओं वाले? नर कृत शास्त्र के सब बंधन हैं नारी को लेकर, अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठ नर!"[8] गुप्तजी ने उपर्युक्त संदर्भ में शूर्पणखा के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ियों पर प्रहार किया है। पुरुष प्रधान समाज स्त्री को उतनी स्वतंत्रता नहीं देता, जितन पुरुषों को प्राप्त है। वह स्त्रियों को नियंत्रित करना चाहता है। मैथिलीशरण गुप्त की विशेषता यह है कि वे अपनी कविताओं में स्त्री-पुरुष दोनों की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए, उनके बीच प्रेम और सौहार्दपूर्ण साहचर्य स्थापित करना चाहते हैं। वे पारिवारिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक हैं। उनकी स्त्री मुक्ति चेतना उन नारीवादी लेखिकाओं से भिन्न है, जो पुरुषों के प्रति पूर्वाग्रह की भावना से भरी रहती हैं।गुप्तजी स्त्री और पुरुष के सौहार्दपूर्ण रिश्ते के समर्थक थे। उन्होंने अपनी कविताओं में स्त्रियों का पक्ष लिया है। वे पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए समाज में उपेक्षित होती स्त्री को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य करते हैं।

नंदकिशोर नवल अपनी तटस्थ आलोचना दृष्टि का परिचय देते हुए मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विसंगतियों पर भी खुलकर अपनी बात रखते हैं। हिंदी साहित्य में गुप्तजी के संबंध में अनेक तरह की भ्रांत धारणाएँ प्रचारित की गईं। मैं यह नहीं कह रहा कि उनके काव्य में अंतर्विरोध नहीं है, उनमें निश्चित ही विसंगतियां हैं,पर उन नगण्य विसंगतियों के आधार पर उन्हें हिंदू जाति का कवि मान लेना उचित नहीं है। उनकी 'भारत भारती' में जो उनका मुस्लिम विरोधी रूख उजागर हुआ है,उसे संदर्भ सहित समझने की जरूरत है। नवलजी गुप्तजी के संबंध में कहते हैं-"लेकिन कहीं-कहीं हम उस पर उपनिवेशवादी इतिहासकारों का प्रभाव भी देखते हैं, जिन्होंने भारत के भव्य इतिहास को ध्वस्त करने के लिए मुसलमानों को जवाबदेह ठहराया और इस तरह हिंदू- मुसलमानों में अपनी स्वार्थ -सिद्धि के लिए फूट का बीज बोया।"[9] नवलजी इस कथन के माध्यम से कहते हैं कि मुस्लिम विरोध गुप्तजी के प्रसिद्ध काव्य 'भारत-भारती' का मूल उद्देश्य नहीं है। वे समरसता और सौहार्द के कवि हैं लेकिन कहीं-कहीं वे समाज को आपस में लड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाली शक्तियों के प्रभाव में आकर मुस्लिम विरोधी बातें कह जाते हैं। नवलजी 'भारत-भारती' से गुप्तजी की काव्य पंक्तियों उद्धृत की है, ये पंक्तियां उन सारी धारणाओं को खंडित करती है जो 'भारत-भारती' को एक हिंदूवादी काव्य मानते हैं। गुप्तजी की ये काव्य पंक्तियां इस

प्रकार है-"कम कीर्ति अकबर की नहीं सत्शासकों की ख्याति में, शासक न उसके सम सभी होंगे किसी जाति में। हो हिंदूओं के अर्थ हिंदू, यवन यवनों के लिए, हठ पक्षपात तथा दुराग्रह दुराग्रह दूर उसने किए।।"[10]

नवलजी गुप्तजी की कविताओं से इस संदर्भ को उद्धृत करके यह साबित करते हैं कि 'भारत-भारती' कोई मुसलमान विरोधी काव्य नहीं है। अकबर एक मुसलमान शासक था, लेकिन गुप्तजी उसकी सद्भावनापूर्ण व्यवहार के कारण उसकी प्रशंसा करते हैं। अगर मुस्लिम जाति मात्र से उन्हें विद्वेष होता तो वे अकबर को अपनी कविताओं में इतना उँचा स्थान नहीं दे पाते। इसलिए गुप्तजी को किसी विशेष जाति का कवि सिद्ध करने की कोशिश करना एक कोरे भ्रम को हवा देने जैसा है। वे किसी जाति विशेष के नहीं बल्कि मानवता के कवि थे।गुप्तजी सनातन धर्म और संस्कृति में आस्था रखते हैं। जिसने भारत की सभ्यता संस्कृति को लांक्षित करना चाहा उसके प्रति गुप्तजी का स्वर अत्यंत कठोर हो जाता है। वे बर्बरता के दमन के लिये हिंसा को भी जायज मानते हैं। गुप्तजी को मुसलमान विरोधी कवि साबित करने के लिए, उनकी कविताओं से उन प्रसंगों को उठाया गया जहाँ वे मुसलमान अक्रांता का मुखर विरोध करते हुए दिखते हैं। मुझे अफ़सोस साथ कहना पड़ रहा है कि संदर्भ को स्पष्ट किए बगैर निर्मित की गई धारणाओं का एकमात्र उद्देश्य है पाठकों को भ्रमित कर देना। नवलजी स्वीकार करते हैं कि कहीं-कहीं गुप्तजी हिंदूत्व के रूढ़िवादी पक्ष के प्रभाव में चले जाते हैं, पर यह भटकाव इनकी कविता का मूल स्वर नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त मानवता को श्रेष्ठ मूल्य मानते हैं। वे सनातन धर्म के प्रति आस्था रखते हैं लेकिन वे उसे मानवता के परिप्रेक्ष्य में देखने के हिमायती हैं। उन्हें इस भौतिक जगत का परित्याग कर किसी अन्य लोक में बसने की मनोकामना नहीं है। वे इस जगत को ही स्वर्ग बना देना चाहते हैं। उनकी संपूर्ण धार्मिक आस्था मानवता के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित है। गुप्तजी के संबंध में यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मानवता का उत्थान उनके काव्य सबसे प्रमुख प्रयोजन है।

संदर्भ सूची

1. नंदकिशोर नवल, निकष, दानिश बुक्स, दिल्ली, पहला संस्करण : सितंबर, 2007, पृ०-106
2. वही, पृ०-105
3. नंदकिशोर नवल, हाशिया, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : सन् 2010, पृ०-13
4. नंदकिशोर नवल, पार्श्वच्छवि, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002, पृ०- 34
5. नंदकिशोर नवल, मैथिलीशरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2011, पृ०-152
6. वही, पृ०-220
7. वही, पृ०- 226
8. वही, पृ०-148
9. वही, पृ०-375
10. वही, पृ०-375

आत्मकथा के दृष्टिकोण से : परिवार का साथ और किन्नरों का विकास

डॉ. नेहा कुमारी
(नेट)
Email: neha-08022016@gmail.com
Mob. : 7982472202

शोध सार

वैसे तो किन्नर साहित्य ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी गहरी पैठ बना ली है, पर आत्मकथा के दृष्टिकोण से यह काफी सशक्त है। दो-तीन आत्मकथाओं ने अपने कथ्य को लेकर समाज और परिवार में किन्नरों को स्थापित करने और प्रभावपूर्ण बनाने में काफी मदद की है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' और मानोबी बंधोपाध्याय की आत्मकथा 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' इस दृष्टि से काफी विचारणीय है। इन दोनों आत्मकथाओं ने किन्नरों को समाज में प्रतिष्ठित किया है। उन्हें सशक्त बनाया है, ताकि उनसे प्रेरणा लेकर समाज के और भी किन्नर सामने आए और अपने लिंग और अधूरेपन से ऊपर उठकर समाज में शिक्षा और संस्कार की बदौलत एक नया आयाम स्थापित करें। खुद को परिवार और समाज से कटा हुआ न माने, बल्कि स्वयं को स्त्री और पुरुष दोनों का सम्मिश्रण मानकर खुद को और शक्तिशाली समझे और खुद को तथा अपने समाज और राष्ट्र को बुलंदी की ऊंचाई पर स्थापित करें। किन्नर खुद को तभी समाज के सामने प्रतिष्ठित कर सकते हैं, जब वो भी खुद को इस समाज का हिस्सा माने और अपने आप को परिवार के सामने मजबूती से पेश करें, क्योंकि जड़ से कट कर कोई भी इंसान चाहे किन्नर हो या कोई और तरक्की नहीं कर सकते।

बीज शब्द : उत्पीड़न , पीड़ा , दंश, परिवार, समाज, शिक्षा, समुदाय, हिजड़ा आदि।

प्रस्तावना

किन्नर समाज की नई पैदाइश नहीं है, बल्कि अनादिकाल से वह हमारे बीच हमारे अपने बनकर रहते रहे हैं। कभी उन्होंने भगवान राम की चौदह वर्ष प्रतीक्षा करके मंगलामुखी का आशीर्वाद लिया, तो कभी शिखंडी बनकर भीष्म पितामह के मौत का कारण बने। चाहे किन्नर समाज में रहे या साहित्य में, लेकिन इस समाज से उन्होंने खुद को कभी अलग नहीं किया। गलत तो लोगों ने उनके साथ किया। किन्नर जो पहले समाज में संपूजित होते थे, उन्हें ट्राइब्स एक्ट कानून(1871) लाकर समाज से तिरस्कृत कर दिया गया। जन्म लेते ही परिवार तो परिवार समाज से भी उन्हें दूर कर दिया गया, लेकिन उन्होंने इस अपमान का बदला हमारे अपमान से नहीं; बल्कि अपने कर्म से दिया। समाज के बहुत से ऐसे किन्नर जिनके पास बेहतर माहौल नहीं था, समाज में आगे बढ़ने के लिए आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी, लेकिन अपने मेहनत की बदौलत उन्होंने कई अच्छे-अच्छे पदों को प्राप्त किया। बात चाहे लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की की जाय, या मनोबी बांधोपाध्याय की। फिल्म अभिनेत्री

गौरी सावंत की बात की जाय, या बिहार की पहली ट्रांसजेंडर दरोगा मानवी कश्यप की। इन्होंने अपनी शिक्षा संस्कार और परिवार की बदौलत किन्नर समाज को एक नया आयाम प्रदान किया है।

परिवार, समाज और लक्ष्मी

किन्नरों के योगदान को अगर ध्यान से देखा जाए, तो परिवार के लोगों का योगदान अहम रहा। वैसे तो किन्नर जो समुदाय या किसी कम्युनिटी से जुड़े होते हैं, उनके लिए उनका समुदाय ही सब कुछ होता है। उन्हें अपने समुदाय से अलग हटकर कुछ भी करने की इजाजत नहीं होती है। न तो वह अपने समुदाय के विपरीत रह सकते हैं और नहीं अपने असली परिवार के संपर्क में। लक्ष्मी ने भी जब ग्लैमर को अपनाया और परदे पर आना शुरू किया, तो यह बात समुदाय के हिसाब से सही नहीं थी, जिसका विरोध उसकी गुरु लता ने भी किया। "उन्हें लगता था कि मुझे उनके साथ ही रहना चाहिए, माँ-पापा के साथ नहीं। वह मुझसे इतना प्यार करती थी कि मुझे उन्हीं के साथ रहना चाहिए, ऐसा उन्हें लगता था। शायद उन्हें, या कम्युनिटी का नियम था, इसलिए भी होगा शायद....असल में क्या कारण था, यह मुझे नहीं पता, पर मैं हिजड़ों में नहीं, अपने परिवार के साथ रहती थी, इसलिए वो मुझे बहुत बोलती थी। मुझे बहुत बार कहते थी "घर मत रहो, यहां हम हिजड़ों के साथ रहो। हमें जो बातें नहीं करनी चाहिए, वो बातें वहां घर में तुम्हें करनी पड़ती है। प्रमुख बात ये है कि हम सबको साथ रहना चाहिए। हम न स्त्री हैं और न पुरुष... स्त्री-पुरुषों के समाज के नहीं है हम। क्यों रहना है फिर उनके साथ?"1

वैसे तो कम ही किन्नरों को परिवार का साथ मिल पाता है, लेकिन जिन्हें मिलता भी है, उनके समुदाय के लिए वह सही नहीं होता है। किन्नर वैसे तो खुद को स्त्री के सन्निकट मानते हैं, लेकिन इस समाज से वह खुद को अलग-थलग अलग मानते हैं। इस बात में भी देखे तो उनका दोष कम और हमारा ही ज्यादा है, क्योंकि अधिकतर किन्नर तो परिवार और समाज से निष्कासित ही कर दिए जाते हैं, जो कुछ बचते हैं, उन्हें लगता है कि परिवार उन्हें अपनाने का बहाना करके उनके साथ छलावा न कर दे, लेकिन राजू के लिए परिवार को छोड़ना इतना आसान नहीं था, क्योंकि घर के बड़े बेटे होने के नाते उसकी भी कुछ पारिवारिक जिम्मेदारियां थी। लक्ष्मी कहती भी थी "पूरी दुनिया मुझे लक्ष्मी कहती है, पर घर वालों के लिए मैं उनका बड़ा लड़का राजू ही था, हूँ और रहूँगा।"[2] लक्ष्मी इस बात को स्वीकारती है कि "असल में परिवार से हिजड़ों को सहारा मिलना चाहिए। जैसा मुझे मिला, वैसे ही। वो जब तक नहीं मिलता है, तब तक क्षमता होने के बावजूद बहुत ऊंचाई तक जाना उनके लिए संभव नहीं है।"[3] लक्ष्मी के लिए भी अपने बचपन की यादें काफी तकलीफ देह थी, लेकिन उसे लोगों तक लाने के लिए बोलना जरूरी था। वैशाली भी तो इसी मानसिक थकन की बात करती है, लेकिन इन सबमें लक्ष्मी का योगदान सराहनीय रहा है, क्योंकि वह खुद को बदलना चाहती थी। वह अपने विचारों को विकसित करना चाहती थी। तभी तो लक्ष्मी ने खुलकर उस सत्य को स्वीकारा, जिसे आधे से अधिक किन्नर स्वीकार ही नहीं पाते हैं। लक्ष्मी के लिए भले बहन और माता-पिता को मनाना आसान नहीं रहा, लेकिन कभी भी उसने सच का साथ नहीं छोड़ा। लक्ष्मी का मानना था "हिजड़ों को बिना दिक्कत समाज के सामने आना चाहिए। उनसे हिल-मिल कर रहना चाहिए। स्वयं कोशिश करनी चाहिए।"[4]

जब तक कोई मनुष्य स्वयं कोशिश नहीं करता है, तब तक कोई भी अन्य मनुष्य उनके लिए कोशिश नहीं करते। स्वयं को साबित करने वालों के साथ ही परिवार और समाज रहते हैं। लक्ष्मी जैसे अपने परिवार को अपना मानती थी, उसी तरह उसके परिवार भी उसे अपना मानते थे। लक्ष्मी के पिता का कहना था "अपने ही बेटे को मैं घर से बाहर क्यों निकालूं? मैं बाप हूँ उसका, मुझ पर जिम्मेदारी है उसकी। और ऐसा किसी के भी घर में हो सकता है। ऐसे लड़कों को घर से बाहर निकाल कर क्या मिलेगा? उनके सामने तो हम फिर भीख माँगने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं छोड़ते। लक्ष्मी को घर से बाहर निकालने का सवाल ही नहीं पैदा होता।"[5] बचपन से ही लक्ष्मी उर्फ राजू काफी बीमार रहता था। बचपन में उसे अस्थमा की बीमारी थी। दुबला पतला राजू जब सात साल का हुआ, तब उसे टाइफाइड, मलेरिया और निमोनिया एक साथ हो गया, लेकिन न तो डॉक्टर ने उम्मीद छोड़ी और न हीं माता-पिता ने।

बचपन से ही राजू को अन्य किन्नर की तरह नृत्य और संगीत आकर्षित करते रहे, लेकिन इस व्यवसाय को आज

भी लिंग से जोड़कर देखे जाने की प्राचीन परंपरा रही है। आज भी समाज लिंग़ के जाल से बाहर नहीं निकल सका है। जिस समाज में लिंग को पूजन हेतु उपयुक्त समझा जाता हो, उसमें एक अर्ध विकसित लिंग की क्या विसात होगी, वह तो विधाता ही जाने। किन्नरों के अस्वीकार के पीछे की असल वजह लिंग का अविकसित होना ही है। दूसरी एक प्रमुख वजह यौन उत्पीड़न भी है। वैसे तो हम किन्नरों को लिंगविहीन मानते हैं, लेकिन जब बात उत्पीड़न की आती है, तो उसमें यह लोग सबसे पहले दुर्घटना के शिकार होते हैं, लेकिन कभी माता-पिता तो कभी समाज के डर से कुछ कह नहीं पाते। कहने पर भी कौन इनकी बातों पर भरोसा करेगा।

राजू भी जब सात साल का था, तो पहली बार यौन उत्पीड़न का शिकार हुआ। वह भी अपने एक रिश्तेदार के लड़के के कारण। किन्नरों के प्रति यौन उत्पीड़न एक असहनीय पीड़ा है। "बीमारी की वजह से सब कुछ सहन करने की मुझे आदत हो गई थी। उस पर ये धमकी। मैं किसी को कुछ न बताऊं, इसका सवाल ही पैदा नहीं होता। माँ को भी नहीं। उसके बाद उस शादी के घर में इस तरह की घटनाएं बार-बार घटी और सिर्फ वही लड़का नहीं और भी कई लड़के मेरा फायदा उठाते रहे। बहुत तकलीफ हो रही थी शारीरिक और मानसिक भी।"[6]

भले लक्ष्मी इन सब बातों से उत्पीड़ित होती रही, पर उसने उसे कभी खुद पर हावी नहीं होने दिया। उसने डटकर उसका मुकाबला किया। जो लड़के पहले मनमौजी करते थे, वह भी डरकर सावधान हो गए। लक्ष्मी ने जो भी किया पर अपनी पढ़ाई से समझौता कभी नहीं किया, क्योंकि उसे पता था कि अगर समाज में इज्जत के साथ जीना है, तो उसके लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। किन्नरों के साथ जो सबसे बड़ी समस्या है, उन्हें गलत नामों से बुलाया जाना। इनका बोझ राजू को भी उठाना पड़ा। उसे भी बचपन से ही सारी वो बातें सुनाई पड़ी, जो एक किन्नर होने के नाते सुनने पड़ते हैं।

वैशाली रोड़े जी ने जिस तरह से राजू की मानसिक और शारीरिक स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है, वह केवल एक राजू की ही कहानी नहीं है, बल्कि उसके जैसे सभी किन्नरों की कहानी है, जो किसी न किसी रूप में समाज के लोगों से उत्प्रेरित होते रहे हैं। परिवार के सबसे छोटे बेटे के रूप में राजू परिवार में सबका दुलारा था, लेकिन यह दुलार जैसे खत्म हो गया, जब उसने पहली बार सार्वजनिक तौर पर खुद को हिजड़ा कहा और हिजड़ों की जमात में शामिल हुआ। सब लोग पहले तो दुखी हुए और यह दुख पहली थी भी नहीं, क्योंकि राजू ने बहुत सारी गलतियाँ की थी। सब लोग तो जैसे-जैसे में जैसे तैसे मान गए, लेकिन उसके पिताजी यह कभी मानने को तैयार नहीं थे। उन्हें लगता था कि उन्होंने उसकी परवरिश में ऐसी कौन सी कमी छोड़ दी कि उन्हें यह दिन देखना पड़ा।

राजू जिसने एक किन्नर के रूप में अपने आप को समाज के सामने प्रतिष्ठित किया, उसके लिए यह सफर आसान नहीं रहा। उसने अपने परिवार के साथ-साथ अपने समाज का भी साथ निभाया, लेकिन अपनी पहचान से समझौता नहीं की। दाईं वेलफेयर सोसाइटी की स्थापना करके न सिर्फ दूसरों की सहायता की,बल्कि खुद और अपने कम्युनिटी की एड्स जैसे भयंकर बीमारी के खिलाफ जागरूक भी किया। बार बालाओं की जिंदगी को देखा और जिया ही नहीं, बल्कि एक शॉर्ट फिल्म बिटवीन द लाइंस में प्रमुख भूमिका भी निभाई। लक्ष्मी ने न सिर्फ भारत में अपनी पहचान बनाई, बल्कि 2006 में टोरंटो में आयोजित अंतरराष्ट्रीय एड्स कॉन्फ्रेंस में भारत की तरफ से प्रमुख भूमिका भी निभाई। सोनी टीवी पर आयोजित दस का दम और सच का सामना जैसे शो का हिस्सा भी रही। लक्ष्मी मानती थी कि "अगर लीक से हटकर चलना है, तो तकलीफ तो उठानी पड़ती है।"[7]

परिवार, प्रेम, समाज और मानोबी

मानोबी बंधोपाध्याय; जो की किन्नर होते हुए भी अपने और परिवार की बदौलत कॉलेज प्रिंसिपल के पद तक पहुँची हैं, वह भी काफी उल्लेखनीय है। मानोबी मानती भी है कि "जो लोग मेरा अभिनंदन करते हैं, उन्होंने मुझे उसी रूप में स्वीकार किया है, जो मैं हूँ, परंतु मैं उन खी-खी करते सुरों, तिरस्कारों और दबी हँसी को कैसे अनसुना कर सकती हूँ, जो छिपाने की कोशिश करने पर भी नहीं छिपती। उनके लिए मैं एक तमाशा भर हूँ और बिना पैसों का कोई तमाशा देखने को मिल रहा

हो, तो कौन नहीं देखना चाहेगा?[8]

ऐसा नहीं था कि मानोबी का बचपन कष्टमय नहीं रहा। उसे अपने सहपाठी और समाज से यह सुनने को नहीं मिला कि लड़का होते हुए भी इसके लक्षण लड़कियों की तरह क्यों है? मानोबी कहती है कि "आप उन विवाहित और बाल-बच्चेदार पुरुषों को क्या कहेंगे, जो छोटे बच्चों का यौन शोषण करते हैं? क्या संसार उन्हें भी समलैंगिक कहता है? अधिकतर तो ऐसा नहीं होता, तो ट्रांसजेंडर लोगों को झट से उन खांचों में क्यों डाल दिया जाता है, जो समाज को सुविधाजनक प्रतीत होते हैं? मुझे इन सवालों के जवाब कभी नहीं मिले, पर मैं जानती हूँ कि मैंने अपने प्रति सच्चाई बरतने में कभी कोई कसर नहीं रखी।"[9] मानोबी पढ़ाई में सबसे अच्छी थी और उसके पिता गर्व से कहा करते थे "उनका बेटा इतना जीनियस है, तभी तो सबसे थोड़ा अलग दिखता है।"[10]

मानोबी के लिए सब कुछ इतना आसान नहीं रहा। खुद को एक ट्रांसजेंडर के रूप में स्थापित करना और इसी पहचान के साथ जीवन में आगे बढ़ाना मानोबी के लिए बहुत तकलीफ देह था। दो पुत्री के बाद पुत्र के रूप में जन्म लेने पर परिवार के लोगों की उम्मीद सोमनाथ (मानोबी) से जुड़ी थी, लेकिन जब मानोबी ने अपनी बहनों की तरह कपड़े पहनने शुरू कर दिए, तो सारी महत्वाकांक्षा जैसे ढह सी गई। स्कूल में भी मानोबी लड़कों के साथ नहीं लड़कियों के साथ बैठती थी। पहले तो लड़कियों को लगा कि वह लड़की है, लेकिन जल्द ही सबको पता चल गया कि वह लड़की नहीं है। भले मानोबी को स्त्री रूप ज्यादा आकर्षित करते थे और उसे सजना-संवरना पसंद था, लेकिन इन सबके साथ उसे नृत्य में भी महारत हासिल थी। मानोबी ने नृत्य और पढ़ाई को एक साधना की तरह लिया। जो भी करती, लेकिन इन चीजों से समझता नहीं करती थी। उसे लगता था कि अगर उसे जीवन में आगे बढ़ाना है, तो पढ़ाई का उपयोग हथियार की तरह करना ही होगा। कई विरोध और अपमान के बावजूद मानोबी ने अपनी पढ़ाई को आगे जारी रखा। बारहवीं के बाद कला संकाय को लेकर आगे बढ़ी। अपनी माँ की तरह उसे भी साहित्य में गहरी रुची थी। जादवपुर यूनिवर्सिटी से मास्टर की डिग्री भी की। यूनिवर्सिटी तक आते-आते मानोबी को लगने लगा था कि वह पुरुष के शरीर में फंसी एक स्त्री है। अगर उसने लिंग बदलवाने की सर्जरी नहीं कराई, तो वह जी नहीं पाएगी।

मानोबी ने अपने इस आत्मकथा 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' में कई जगह स्वीकार भी किया है कि "मैं एक स्त्री की आत्मा थी, जिसे पुरुष की देह में कैद कर दिया गया था और मैं वक्ष और योनी पाने को तरस रही थी। मैं शारीरिक रूप से एक स्त्री बनना चाहती थी।"[11]

ऐसा नहीं था कि पुरुष शरीर पाकर उसे किसी पुरुष से प्रेम नहीं हुआ। प्रेम तो उसे हुआ एक नहीं कई पुरुषों से, लेकिन सब ने कोई न कोई बहाना बनाकर उससे दूरी बना ली। बाद में मानोबी को भी लगने लगा कि वह प्रेम नहीं; केवल आकर्षण था और कुछ नहीं। मानोबी को सच में अरिंदम नामक युवक से प्रेम हुआ। उसकी खातिर ही उसने आनन-फानन में सेक्स चेंज करने की सर्जरी करवाई, लेकिन अरिंदम तो सबसे घटिया निकला। उसने न सिर्फ मानोबी के प्रेम को ठुकराया, बल्कि उसे पूरे समाज में मुंह उठाने के काबिल नहीं छोड़ा। "जिस इंसान को मैंने अपने प्रेमी और भावी पति की तरह दुनिया के सामने पेश किया, वही मेरे खिलाफ हो गया था। मीडिया की रिपोर्ट थी कि मैं हमेशा से एक औरत की देह चाहती थी, परंतु अरिंदम से विवाह करने की इच्छा ने मेरे निर्णय को और भी मजबूती प्रदान की। तो फिर यह धोखा क्यों? परंतु मैं उन रिपोर्टर्स की हमेशा शुक्रगुजार रहूँगी, जिन्होंने जीवन के हर मोड़ पर मेरा साथ दिया। उसे सही तरह से लोगों के सामने रखा।"[12] अन्य किन्नर की तरह मानोबी ने भी अपने हिस्से का प्रेम तो किया, लेकिन खुद के हिस्से का प्रेम कभी पा न सकी। प्रेम में भले मानोबी असफल रही, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में उसने कई कृतियाँ स्थापित की। 'अबोमानोब' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया; जो पूरे देश में भारत की पहली ट्रांसजेंडर पत्रिका थी। ट्रांसजेंडर विषय पर शोध करके पीएच.डी करने वाली भारत की पहली ट्रांसजेंडर भी बनी, लेकिन यह सब तभी संभव हो सका, क्योंकि उसके परिवार के लोग उसके साथ थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किन्नर चाहे लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी के रूप में हो, या मानोबी बंदोपाध्याय में के रूप में, लेकिन किन्नर वही सफल हो पाए, जिन्होंने अपने परिवार के साथ-साथ अपना बचपन दिया। जिनके परिवार के लोगों

ने भार समझकर उनका अपमान नहीं किया, बल्कि एक इंसान और अपने बच्चे समझ कर उनकी उचित परवरिश की, अन्यथा वह किन्नर भी जो प्रतिष्ठा की ऊँची- ऊँची उड़ाने प्राप्त कर रहे हैं, वह भी किसी गुमनामी का शिकार होते।

सन्दर्भ

1. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2021, पृष्ठ संख्या 67
2. वही, पृष्ठ संख्या 68
3. वही, पृष्ठ संख्या 147
4. वही, पृष्ठ संख्या 103
5. वही, पृष्ठ संख्या 108
6. वही, पृष्ठ संख्या 28
7. वही, पृष्ठ संख्या 146
8. पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन, झिमली मुखर्जी पांडे, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ 6
9. वही, पृष्ठ संख्या 50
10. वही, पृष्ठ संख्या 17
11. वही, पृष्ठ संख्या 35
12. वही, पृष्ठ संख्या 124

नोट : यह मेरा मौलिक, अप्रकाशित और पूर्णतः स्वलिखित शोध आलेख है और इसमें लिए गए संदर्भ प्रमाणिक पुस्तक से संग्रहित है।

विलय-पूर्व अवध में गांव एवं तालुकदार में अंतर्संबंध

मो. नसरुल मुस्तफ़ा खान
शोधार्थी
एम.एल.के. पी.जी. कॉलेज, बलरामपुर
Khannasrul786@gmail.com

डॉ. तबस्सुम फरखी
शोध निर्देशक
प्रोफ़ेसर, इतिहास विभाग
एम.एल.के. पी.जी. कॉलेज, बलरामपुर

सार

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य अवध में गांव तथा ताल्लुकदारी व्यवस्था के अंतर-संबंधों को स्पष्ट करना है। अवध की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी और कृषि अर्थव्यवस्था का केन्द्र गांव था। राज्य के आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व था, जो गांवों के किसानों से वसूला जाता था। गांव की अपनी विशिष्ट संरचना और जीवन पद्धति थी। एक ब्रिटिश लेखक ने भारत के गांवों को 'छोटा गणतंत्र' कहा है। स्वतंत्र से पूर्व अधिकांश गांवों पर ज़मींदारों अथवा तालुकदारों का नियंत्रण होता था। तालुकदार गांवों में रहने वाला और गांव का भू-राजस्व सरकार को भुगतान करने वाल एक शक्तिशाली समूह था। इनकी शक्ति से भयभीत कंपनी सरकार उनसे गांव को जब्त करके उन्हें कमज़ोर करने के लिए मई 1856 में ही समरी बंदोबस्त लागू किया। भूराजस्व प्रशासन और तालुकदारी व्यवस्था पर बहुत लिखा गया लेकिन भू-राजस्व अदा करने वाले गांव के विषय में बहुत कम लिखा गया है। गांव और तालुकदार परस्पर निर्भर और एक दूसरे के पूरक थे। गांव का प्रशासन तंत्र होता था। अवध में ग्राम पुलिस को चौकीदार और ग्राम लेखाकार को पटवारी कहा जाता था। कानूनगो भी गांव का भू-राजस्व अधिकारी था।

की-वर्ड्स : तालुका, तालुकदार, बंदोबस्त, भू-राजस्व, मुक़द्दम, पटवारी।

परिचय : भारत में ऐतिहासिक काल से गांव को सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक इकाई माना जाता रहा था। मानव जब सामाजिक प्राणी के रूप में संगठित हुआ तो गांव का उदय हुआ। गांव को ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। उन्नीसवीं सदी में भारत की लगभग 85 प्रतिशत आबादी गांव में रहती थी और लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी।[1] मुग़ल में गांव भू-राजस्व प्रशासन की सबसे छोटी इकाई होता था। कई गांवों को मिलाकर परगना का गठन होता था। गांव का प्रमुख 'खुत' और 'मुक़द्दम' होता था। कानूनगो और पटवारी गांव स्तर का भू-राजस्व अधिकारी होता था जो भू-राजस्व मूल्यांकन, संग्रहण और रिकॉर्ड तैयार करने और सुरक्षित रखने हेतु उत्तरदायी होता था।

इलियट महोदय गांव के उदय के सन्दर्भ में लिखते हैं कि सभ्यता के आरंभिक चरण में सम्पति का स्वामित्व कबीले के मुखिया में निहित होती थी। आरंभ में यह सम्पति वहीं होती थी जहां कबीला बस्ता था। यह छोटा कबीला बढ़ा तो पट्टी में विभाजित हुआ और कई पट्टी से मिलकर एक गांव का निर्माण हुआ। प्रायः परिवार के लोग मूल गांव से अलग होकर नए गांव बसाते थे और अपना मुखिया मूल गांव के मुखिया को ही मानते थे।[2] गांव की व्याख्या मार्कंडेय पुराण में "एक ऐसा

स्थान जो कृषि योग्य भूमि से घिरा हो तथा जहाँ बड़ी संख्या में लोग रहते हों और उस भूमियों पर खेती करते हो" के रूप में की गई है। बी.डी.चट्टोपाध्याय ने गांव के अंतर्गत तीन घटक- वास्तु, क्षेत्र तथा गोचर बताया है। वास्तु से तात्पर्य आवासीय भूमि, क्षेत्र से तात्पर्य कृषि भूमि तथा गोचर से तात्पर्य चरागाह भूमि से है।

आधुनिक इतिहासकार इरफ़ान हबीब के अनुसार, 'गांव मूलतः किसानों की एक बस्ती होती है, जो बेहतर सुरक्षा, सहयोग तथा आपस में आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान की सुविधा के लिए बसायी जाती है।[3] मुग़ल काल में ग्राम को 'डीह' और 'गांव' कहा जाता था। डीह, फ़ारसी शब्द है जिसका प्रयोग गांव के लिए होता था।[4] औरंगजेब के शासन काल में मुग़ल साम्राज्य में कुल 4,01,567 गांव थे, जिसमें केवल सूबा अवध में 52,6,91 गांव थे।[5] 1869 ई० में अवध की पहली जनगणना हुई थी। इस जनगणना के अनुसार बहराइच जनपद में मात्र 4 प्रतिशत आबादी शहरी थी और शेष 96 प्रतिशत आबादी गांव में रहती थी।[6] 1869 में कुल आबाद गांवों की संख्या 1883 थी।[7] बहराइच में एक औसत आकार के गांव में 791 एकड़ भूमि तथा औसतन 557 व्यक्ति रहते थे।

इलियट के अनुसार, गांव "एक अलग नाम और निश्चित सीमा वाला भूभाग होता है।"[8] गांव एक परिवर्तनशील शब्द है और जनसंख्या वृद्धि तथा सरकार की इच्छा से गांवों का निर्माण एवं उनके आकार में परिवर्तन होता रहता है। गांव अंतर्गत वहां निवास करने वाली आबादी, कृषि भूमि, तालाब, नाला, कुआँ, जंगल और चारागाह शामिल होता था। अवध में एक गांव के अंतर्गत मुख्य रूप से तीन घटक- भौगोलिक क्षेत्र, आबादी और कृषि कार्य होते थे। रहने वाली आबादी के दृष्टि से दो प्रकार के गांव - सजातीय और विजातीय थे। सजातीय गांव, वह गांव थे जहाँ एक ही जाति के लोग रहते थे और उसी जाति विशेष वंश के मुखिया का गांव पर प्रभुत्व होता था। बहुजातीय गांव, में विभिन्न जाति और पंथ के लोग रहते था। विजातीय गांव पर किसी वंश के मुखिया के प्रभुत्व के बजाय "पंच या गांव पंचायत" मुखिया होती थी। पंचायत के निर्णय दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होते थे। मुग़ल काल में इन्हें क्रमशः जमींदारी/तालुकदारी गांव तथा रैयती गांव कहा जाता था।[9] जमींदारी गांव का मुखिया जमींदार या तालुकदार होता था। वह अपने गांव के सरकारी भूराजस्व के वसूली के लिए उत्तरदायी होता था। रैयती गांव के रैयत सीधे सरकार को कर देते थे और उन गांव पर 'पंचायत' मुखिया का कार्य करती थी।

तालुकदार : 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में देश भर में ज़मींदारी और जमींदार शब्द के स्थान पर 'तालुका' और 'तालुकदार' शब्द का प्रयोग होने लगा था।[10] ताअल्लुक़-दार का शाब्दिक अर्थ है 'तालुक़ा का धारक'। तालुका, ताअल्लुक शब्द से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'संबंध' होता है, लेकिन इसका प्रयोग उस भूमि या क्षेत्र के लिए किया जाता था जिस पर किसी भी प्रकार के अधिकार का दावा किया जाता था।[11] अवध में नाज़िमों और चकलेदारों के नीचे आंशिक रूप से स्वायत्त भू-स्वामी वर्ग विद्यमान था, जिसे तालुकदार कहा जाता था।[12] तालुकदारों में अधिकांश राजपूत जाति के थे। तालुकदारों का अपने तालुका के भीतर मजिस्ट्रेट और कलेक्टर की सभी शक्तियां प्राप्त थीं। उनके पास किले और छोटी सेना होती थी।

सी.ए.इलियट के अनुसार, मुस्लिम आक्रमण के परिणामस्वरूप पूरब की ओर पलायन करके आने वाले राजपूतों के एक के बाद एक कबीले विशेष क्षेत्रों में बस गए। इस प्रकार बसने वाले वंश में दीक्षित, जनवार, रायकवार, चौहान, अमेठिया और कन्हपुरिया आदि थे।[13] प्रोफेसर इरफान हबीब के अनुसार बाद में आने वाला कबीला पहले से बसे कबीले को आधीन या बेदखल कर देता था, यह प्रक्रिया तब तक चलती रही जब तक कि प्रत्येक प्रमुख कबीले ने, मुगल काल के आसपास, अपना प्रभुत्व क्षेत्र स्थापित नहीं कर लिया। दीर्घकालिक अवधि में जीतने वाले कबीले का दबदबा उस कबीले के लिए कुछ 'श्रेष्ठ अधिकारों' में बदल गया। मुगलकालीन सूबा अवध का श्बैसवाराश ज़िला इसका अच्छा उदाहरण है।'[14] बाद में तालुका बनाने की प्रक्रिया केवल राजपूत उपनिवेशीकरण तक सीमित नहीं रही। अन्य धर्म और जाति के लोगों ने शाही सेवा का लाभ उठाकर अपने तालुकों का गठन किया। रूद्रांशु मुखर्जी के अनुसार, अवध में तालुकदार एक साम्राज्य के भीतर छोटा साम्राज्य की तरह थे और नवाब को राजस्व देते थे।

तालुकदार एक विषमजातीय समुदाय था। इनको दो श्रेणी में बांटा जाता है। वंशानुगत तालुकदार और नीलामी तालुकदार। नीलामी तालुकदार को मशरूम तालुकदार भी कहा गया है। हैमलेट के अनुसार उनमें एक ही समानता थी कि

सभी 'जमीनी संपत्ति के धनी' थे।[15] तालुकेदार का पद वंशानुगत होता था। हरकोर्ट बटलर ने राजा और तालुकदार में सूक्ष्म अंतर इस आधार पर किया था कि उपाधि वंशानुगत थी या श्नीलामीश के माध्यम से प्राप्त की गई थी। तालुकेदार की एक विशेषता यह भी थी कि वह अपने गांवों के साथ-साथ दूसरे जमींदारों के गांवों के भू-राजस्व के संग्रह तथा भुगतान के लिए वचनबद्ध होता था। साथ ही गांवों के किसानों पर वे विभिन्न प्रकार के कर लगाते थे। जैसे मालिकाना, पुलाही, नौका शुल्क, अपने तालुके के बाज़ार में आने वाली गाड़ी पर 'खट्टी' कर। जंगल में लकड़ी काटने वाले दूसरे गांवों के लोगों पर 'तंगराही', सड़क का उपयोग करने पर खुंट, भेंट या नजराना जैसे कई अन्य कर भी थे। इसके अलावा, पुत्र के मुंडन पर कर और घोड़े की खरीद घुराही जैसे कई कर भी लगते थे। ये सब प्रथा का हिस्सा माना जाता था और भूमि के शांतिपूर्ण उपयोग और जीवन की सुरक्षा के लिए एक कीमत चुकाई जाती थी। परोपकार और शोषण के बीच झूलता यह प्रेम-घृणा का रिश्ता उन दिनों सामान्य बात थी और सदियों से चली आ रही थी।

जहां तक तालुकदारी व्यवस्था और गांवों के संबंधों की बात है तो यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तालुकदार की सामर्थ्य उनके अधीन गांवों से निर्धारित होती थी। गांव, कृषि अर्थव्यवस्था के केन्द्र और भूराजस्व प्रशासन की मूलभूत इकाई होते थे। कई गांव को मिलाकर 'परगना' बनता था जो राजस्व प्रशासन की मध्यवर्ती इकाई होता था। इतना ही नहीं तालुकदारों का तालुका भी गांवों का समूह होता था। 1856 में अवध के विलय समय तालुकदारों के तालुकों में 23,543 गांव थे।

विलय से पूर्व तालुकदारों के आधीन गांव[16] -

जिला	जिलेवार गांवों की कुल संख्या	तालुकदारों के अधीन गांवों की संख्या	तालुकदारों के आधीन गांवों का प्रतिशत
फैज़ाबाद	4215	3146	73.92
सुल्तानपुर	3351	2113	63.5
प्रतापगढ़	3633	3032	83.45
लखनऊ	1570	575	36.64
रायबरेली	1551	1052	67.82
उन्नाव	1236	368	29.77
हरदोई	1427	464	32.51
दरियाबाद	2506	1087	43.37
सीतापुर	4422	2692	60.87
गोंडा	4129	3483	84.35
बहराइच	3949	3761	95.23
मोहमदी	3130	1759	56.19
कुल	**35,119**	**23,502**	**66.92**

स्रोत : रूद्रांशु मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट 1857-1857 पृष्ठ 26

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है की विलय से पहले अवध के लगभग 67 प्रतिशत गांव तालुकदारों के नियंत्रण में थे। हालांकि तालुकदारी का नियंत्रण जिलेवार भिन्न-भिन्न था। कुछ ऐसे क्षेत्र थे जहां तालुकदारी का घनत्व अधिक था। लखनऊ के आसपास और दक्षिण की ओर कानपुर तक के क्षेत्र में तालुकदारों के अधीन गांवों की संख्या सबसे कम, लगभग 30 प्रतिशत गांव थे। तालुकदारों का घनत्व रायबरेली, सुल्तानपुर, फैजाबाद और प्रतापगढ़ में अधिक था, जहां लगभग 70 प्रतिशत गांव

तालुकदारों के अधीन थे। गोंडा-बहराइच, जहाँ नवाब का नियंत्रण प्रभावी रूप से नहीं था, इसलिए तालुकदारों के पास 85 प्रतिशत से अधिक गांव थे। ज़िला बहराइच में तो 95 प्रतिशत से अधिक गांव तालुकदारों के अधीन थे। रूद्रांशु मुखर्जी लिखते हैं कि रायबरेली और बहराइच के बीच स्थित अक्ष पर लगभग तालुकदारों का नियंत्रण था, जिससे किसान-तालुकदार परस्पर निर्भरता और सहयोग का प्रसार हुआ होगा। यह भिन्नता केवल जिलेवार ही नहीं थी, बल्कि तालुकेवार भी थी। कुछ तालुके बड़े थे, जिनके अधीन गांव की संख्या बहुत अधिक थी। बहुत से गांवों को तालुकदारों ने अपने सगे-सम्बन्धियों को रियायती दर पर भूमि देकर बसाया था। यह लोग तालुकदार के लिए सैनिक का कार्य करते थे। बैसवारा में ऐसे बहुत से गांव थे जो तीन चार पीढ़ी पहले के तालुकदारों ने बसाये थे।[17] बहराइच जनपद में तालुकों का विकास निम्नलिखित प्रकार से हुआ था

(1) जब सरकार द्वारा बंजर भूमि का एक टुकड़ा किसी सैनिक या दरबारी को, या पहले से स्थापित किसी घराने के किसी सदस्य को भूमि को खेती योग्य बनाने के लिए दिया जाता था। वह उस निर्जन स्थान पर गांव बसाता था। उसके द्वारा बसाए गए सभी कृषक दासता की अवस्था में होते थे। इनके पास स्वामी की इच्छा से प्रदत्त अधिकारों के अलावा कोई अन्य अधिकार नहीं होता था। इस प्रकार का बहराइच में मुख्य उदाहरण नानपारा तालुका और चर्दा तालुका था।

(2) जब सरकार किसी सैन्य अधिकारी को किसी अराजक और भूस्वामीविहीन क्षेत्र में कानून व्यवस्था बहाली के लिए और राज्य को देय राजस्व की वसूली के लिए नियुक्त करती थी। इन सेवाओं के लिए वेतन के रूप में, और उस क्षेत्र में शांति बहाली हेतु आवश्यक सैन्य बलों के खर्च के लिए, उसे उस क्षेत्र से एकत्र किए गए राजस्व का पूरा या आंशिक हिस्सा दे दिया जाता था। यदि वह अधिकारी उस क्षेत्र में लम्बे समय तक रहता था, तो वह अपने पत्नी, बच्चे और रिश्तेदारों को भी ले आता था। 'अस्थायी छावनी' के रुप स्थापित स्थान बाद में स्थायी गांव बन जाता था। इस प्रकार शक्ति के द्वारा अधीन किए गए उपद्रवी लोग कुछ समय बाद धीरे-धीरे उस अधिकारी को अपना स्वामी मानने लगते थे।[18] इकौना तालुका इस प्रकार निर्मित हुआ था।[19]

(3) इकौना इलाके में एक अनोखा तरीका यह था कि वंश के लोगों में से एक को पुश्तैनी तालुके की सीमा के बाहर के अपने इलाके में आने वाले सभी गाँवों के रेवेन्यू का एक निश्चित प्रतिशत हिस्सा दिया जाता था। तालुकदार ने स्पष्ट रूप से पर उस ज़मीन पर कभी कब्ज़ा नहीं किया था। लेकिन उसने अपने अधिकार का इस्तेमाल इस हद तक किया कि उसने अब तक बंजर पड़ी ज़मीन के हिस्सों को खेती के लायक बनाने के लिए अलग-अलग पार्टियों को बेच दिया द्य उन्हें उन इलाकों में वे सभी अधिकार दिए जो आम तौर पर ज़मीन के मालिक के अधिकार माने जाते थे। इस प्रक्रिया से बहुत से नए गांव आबाद हो गये। इस प्रकार का आधिपत्य रायकवार राजा बौण्डी को भी दी गई थी।[20]

(4) प्रायः चर्चा में रहने वाला एक तरीका, तालुकदार को ज़मींदार के ऊपर थोपना था।[21] इसके माध्यम से नवाबी शासन के पिछले चार दशकों में बहुत से स्वतंत्र गांव को धीरे-धीरे बड़े ताल्लुकदारों की जागीर में मिला लिया गया। जब गांव नाज़िमों और चकलादारों के अत्याचार से तंग हो जाते थे तो शांति और सुकून के लिए वे खुशी-खुशी अपने अधिकार सुरक्षा का आश्वासन देने वाले तालुकदार को सौंप देते थे। स्थानीय कहावत थी कि तालुकदार पहले किसी गाँव को 'जमानत' देता था और फिर उसे 'हड़प लेता' था।

नवाबी शासन काल में तालुकदारों को भू-राजस्व प्रशासन से जोड़ दिया गया था। तालुकदार को अपने तालुके तथा पड़ोस के ज़मींदारी गांवों के लगान का दायित्व दे दिया जाता था। तालुकदार गांवों के लोगों की स्थानीय भू-राजस्व अधिकारियों के उत्पीड़न से बचाता भी था। अवध के कृषि परिदृश्य में तालुकदारों के महत्व का अंदाजा विभिन्न जिलों में उनके द्वारा वहन किए गए कुल निर्धारित राजस्व के अनुपात से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, फैजाबाद में निर्धारित राजस्व का 90 प्रतिशत तालुकदारों के नाम पर था।[22] सलोन में यह अनुपात 89 प्रतिशत था, बहराइच में 97 प्रतिशत से अधिक, गोंडा में 85 प्रतिशत से अधिक और सीतापुर में 95 प्रतिशत से अधिक तालुकदारों के नाम था। यहां तक कि उन जिलों में भी जहां तालुकदारों के पास कुल गांवों की संख्या के 50 प्रतिशत से कम गांव थे, जैसे लखनऊ या उन्नाव में, निर्धारित राजस्व का 90 प्रतिशत उनके नाम पर था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अवध में अधिकांशतः तालुकदारों का ही सर्वोत्तम

भूमि पर नियंत्रण था।[23]

निष्कर्ष - उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गांव और तालुकदारों का संबंध शोषण और जातिगत प्रेम के संतुलन पर निर्भर करता था। यह संतुलन बिगड़ता था तो गाँव और तालुकदार दोनों प्रभावित होते थे। तालुकदार का अस्तित्व गांव से था और गांव की सुरक्षा तालुकदार से। शोषक इसलिए था क्योंकि तालुकदार खुद कुछ नहीं करता था बल्कि गांवों में रहने वाले सज़ातीय या बिजातीय किसानों की मेहनत पर उसका अस्तित्व था। लेकिन सभी ताल्लुकदार ऐसे नहीं थे, विशेषकर पुश्तैनी तालुकदार रैयत की महत्व को समझते थे और उनकी सहायता और सुरक्षा का दायित्व निभाते थे। वे आसामी के सुख-दुख में शामिल होते थे। नाज़िम और चकलादर के उत्पीड़न से रक्षा करते थे। लेकिन धन और प्रशासनिक सांठ-गांठ से उत्पन्न 'मशरूम तालुकदारों' का लक्ष्य उन गांव से अधिक से अधिक धन की उगाही करना था। लगभग 90 प्रतिशत जनता गांव वासी थी और उनमें से अधिकांश लोग निर्धन सरल और निरक्षर थे। वे सदियों पुरानी परम्पराओं से संचालित होते थे। गांव और तालुकदा का संबंध परस्पर-निर्भरता एवं सहयोग का था।

सन्दर्भ सूची

1 विपिन चंद्रा, द राइज एंड ग्रोथ ऑफ़ इकोनोमिक नेशनालिज्म इन इंडिया, पृ०196
2 सी.ए.इलियट, द क्रोनिकल्स ऑफ़ उन्नाव, पेज 148-149।
3 प्रो. इरफ़ान हबीब, द अग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया, पृष्ठ 162।
4 नोमान अहमद सिद्दीकी, मुगलकालीन भू-राजस्व प्रशासन, पृष्ठ 20-21।
5 इरफ़ान हबीब, द अग्ररियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया, पृ. 4
6 एच.आर. नेविल, बहराइच गजेटियर, 1877 पृ० 64
7 पूर्वोक्त पृ० 64
8 सी.ए.इलियट, द क्रोनिकल्स ऑफ़ उन्नाव, पेज 148
9 प्रो.इरफ़ान हबीब, द अग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया, पृ. 139- 140
10 पूर्वोक्त पृष्ठ 139। द्य
11 पूर्वोक्त पृष्ठ 171
12 रूद्रांशु मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट, 1857-58 पृष्ठ 1, फुटनोट।
13 सी.ए.इलियट 'द उन्नाव क्रानिकल्स', पृष्ठ
14 इरफ़ान हबीब, अग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया, पृष्ठ 161
15 एच.सी.इर्विन, द गार्डन ऑफ़ इंडिया, पृष्ठ 9
16 रूद्रांशु मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट 1857-1857 पृष्ठ 26
17 पूर्वोक्त पृष्ठ 27
18 गजटियार ऑफ द प्रोविंस ऑफ़ अवध, वॉल्यूम -1 पृष्ठ 178
19 पूर्वोक्त पृष्ठ 178
20 पूर्वोक्त पृष्ठ 178
21 पूर्वोक्त पृष्ठ 179-80
22 सलोन को 1858 में ब्रिटिश सरकार ने विभाजित करके रायबरेली और प्रतापगढ़ ज़िला बना दिया
23 रूद्रांशु मुखर्जी, अवध इन रिवोल्ट 1857-1858, पृष्ठ 27

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

नृत्य व पर्यावरण

श्रीमति प्रीति शर्मा
व्याख्याता, संस्कृत विभाग
श्री वर्धमान कन्या महाविद्यालय, ब्यावर

सुश्री मोनिका सोनी
व्याख्याता, हिंदी विभाग
श्री वर्धमान कन्या महाविद्यालय, ब्यावर

श्रीमति निधि पंवार
व्याख्याता, संगीत विभाग
श्री वर्धमान कन्या महाविद्यालय, ब्यावर

सारांश

नृत्य मानव सभ्यता की एक प्राचीन और सशक्त कला विधा है, जो भावों, संवेदनाओं तथा सामाजिक संदेशों को अभिव्यक्त करने का प्रभावी माध्यम रही है। पर्यावरण वर्तमान समय की एक ज्वलंत वैश्विक समस्या है, जिसके संरक्षण और संवर्धन के लिए जन-जागरूकता अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र में नृत्य और पर्यावरण के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण किया गया है तथा यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार नृत्य कला पर्यावरण संरक्षण के प्रति समाज में चेतना उत्पन्न करने का माध्यम बन सकती है।

भारतीय शास्त्रीय एवं लोक नृत्य परंपराओं में प्रकृति के तत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का गहरा समावेश देखने को मिलता है। नृत्य के माध्यम से वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पशु-पक्षियों तथा प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण कर मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य का संदेश दिया जाता है। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि नृत्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि पर्यावरणीय मूल्यों को प्रसारित करने का एक सशक्त माध्यम भी है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नृत्य के द्वारा पर्यावरण संरक्षण का संदेश प्रभावी ढंग से समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे सतत विकास और प्रकृति के संरक्षण की दिशा में सकारात्मक परिवर्तन संभव है।

नृत्य व पर्यावरण

हाल ही में समूचे विश्व में पृथ्वी दिवस का आयोजन किया गया। पृथ्वी जो कि सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है उस पृथ्वी के महत्त्व को पुनः पुनः पुनः स्मृति पटल पर क्यों लाया जा रहा है तो उत्तर केवल यही है कि हमने अपने निहित स्वार्थो के चलते पंचतत्व प्रधान प्रकृति के प्रमुख घटक पृथ्वी को क्षति पहुंचायी है। यह क्षति हमारे विनाश का कारण बनेगी यदि उम जागरुक नहीं हुए। हम भारतीय संस्कृति व जीवन शैली पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि उमारी तो दिनचर्या ही पृथ्वी को नमस्कार करते हुए ही प्रारम्भ होती है यथा—

समुद्रवसने देवि। पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।

(नित्यकर्म पूजा प्रकाशुगीता)

समुद्धरूप वस्त्रों वाली, पर्वतरूपस्तनों वाली विष्णु की पत्नी पृथ्वी देवी मैं आपको नमस्कार करता हूँ मेरे द्वारा किए गए इस पादन्यास को आप क्षमा करें। हम पूर्ण विश्वास रखतें हैं कि पृथ्वी जिसका एक नाम क्षमा भी है उमारे इस पादन्यास को अवश्य ही क्षमा करेगी क्योंकि मंत्रदृष्टा ऋषि का स्पष्ट घोष है–

'माता भूमिपुत्त्रोऽहं पृथ्व्याः।'

(अथर्ववेद पृथ्वी सूक्त 12/1/12)

माता अबोध पुत्र के अपराध को निश्चय ही क्षमा करती है किन्तु पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त पुत्र ही जब अपराध करे व प्रकृति के प्रमुख घटक कि क्रियाशीलता में विक्षेप करे तो क्या हमारे पर्यावरण की आधारशिला पर पृथ्वी उसे क्षमा करेगी जिससे ऋषि यह प्रार्थना करता है–

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रु कृष्णां रोहिणी विश्वरूपां ध्रुवां भूमि पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अश्तोध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥

अथर्ववेद 12/11/11

है पृथ्वी तुम्हारी पहाड़ियाँ, हिमाच्छादित पर्वत और तुम्हारे वन हमारे लिए सुखकर होवें। भूरी, काली, लाल अनेक रूपों वाली स्थिर और इन्द्र द्वारा रक्षित सुविस्तृत पृथ्वी पर मैं अजेय, अहिंसित, अक्षत होकर स्थित हो जाऊ ऋषि की यह प्रार्थना तब ही सफल होगी जब पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, तेज का संगठन हमारा यह पर्यावरण संतुलित, संरक्षित व स्वच्छ हो किन्तु अद्यतन युग में विज्ञान के विस्तार के कारण पर्यावरण के संतुलन मै हास हो रहा हैं जो भावी पीढ़ी के लिए अभिशाप सिद्ध होगा। अतः हमें पर्यावरण के संरक्षण के लिए सभी क्षेतों में चाहे वह शिक्षा जगत क्रीड़ाजगत, औद्योगिक जगत कलाजगत जैसा कोई भी क्षेत्र क्यों न हो एक जागरूकता लानी अति आवश्यक है। अन्य क्षेत्र जैसे क्रीड़ा शिक्षा आदि यदि पर्यावरण के प्रति सजग एवं जागरूक होते हैं तो उनके द्वारा किए जा रहे सभी प्रयास व कार्यो की सार्थकता सहज एवं मूर्त रूप में अनुभव व प्रत्यक्ष दोनों रूप में दृष्टिगोचर होती है. किन्तु कला जगत पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए क्या कर सकता है क्योंकि कलाकार को अपनी कला के प्रदर्शन के लिए आधार चाहिए और कला भावप्रधान होती है अतरू यह कैसे सम्भव है? कला के माध्यम से भावों का सम्प्रेषण चित्रण, गायन, वादन, लेखन एवं अभिनय से होता है। सर्वसाधारण के साथ तादात्म्य स्थापन व भाव सम्प्रेषण कला अथवा लोककला द्वारा सहज ही सम्भव है। भारतीय संस्कृति में प्रधान रूप से हमारे लोक जीवन में लोक नृत्य अपनी भाव प्रधानता एवं क्रियाशीलता के द्वारा सरल एवं सहज रूप से अपना संदेश व अपने भीतर समाहित ऊर्जा व उत्साह को संचारित करता है। यह लोकनृत्य अथवा नृत्य पर्यावरण के संरक्षण में किस प्रकार सहयोगी है इसे समासने या जानने से पूर्व उमें नृत्य को जानना होगा। यह नृत्य क्या है इसकी परिभाषा उमें धनञ्जयकृत दशकपक में प्राप्त होती हैं। नृत्य के लिए धनन्जय ने सूत्र दिया है–

अन्यद्भावाश्रयं नृत्यं। (12 प्रथम प्रकाश)

नृत्य में भावों की प्रधानता होती है तथा नृत्य में पदार्थो का अभिनय किया जाता है यह अभिनय आंगिक होता है चूंकी नृत्य शब्द नृत् धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है गात्त विक्षेप। नृत्य में श्रवणीय कुछ नहीं होता हैं किन्तु केवल दर्शनीय होता है। अस्तु सामान्य शब्दों में नृत्य वह कला है जिसमें एक निश्चित संगीत की धुन पर अथवा गीत पर अंग संचालन द्वारा नर्तक कथानक में निहित अपने भावों का प्रकटीकरण करता है, तथा अपने संदेश को सभी तक प्रेषित करता है। नृत्य में संगीत की तथा नर्तक की अंग संचालन प्रक्रिया से एक सुन्दर एवं सरस भाव प्रेषण आकार लेता हैं जो कि नर्तक के भीतर के आनन्द व उत्साह का संचार दर्शक के हृदय में भी सफलतापूर्वक कर देता है।

प्रकृति एवं पुरुष की संकल्पना पर आधारित सांख्य दर्शन में सांख्यकारिकाकार ईश्वर कृष्ण भी यही कहता है कि :

"प्रकृति-नर्तकी की भाँति है।" (सांख्यकारिका 59)

जब नर्तक का गायन वादन आदि सहायक तत्वों के साथ तारतम्य बाधित होता हैं तो अंग संचालन में अर्थात् नृत्य क्रिया में विक्षेप होता है तथा भाव सम्प्रेषण बाधित हो जाता है। अतः दर्शकों में संचारित हो रहे उत्साह, ऊर्जा एवं आनन्द की तरंग रुक जाती है। इसी प्रकार पर्यावरण (प्रकृति) का निर्माण करने वाले प्रमुख घटक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि जो कि वेदान्त के पंजीकरण के सिद्धान्त से विचलित होने पर असंतुघलित हो जाते है तो पर्यावरण भी असंतुलित हो जाता है क्योंकि यह पर्यावरण ही प्राणी जगत में जीवनी शक्ति का संचार करता है अतः सृष्टि में ऊर्जा उत्साह का ह्रास होने लगता है–

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति अपनी विभिन्न गतिविधियों से पुरुष को आकृष्ट कर आनन्दित करती हैं तथा नवजीवन का सूजन करती है अतएव पर्यावरण मैं एक संतुलन व प्रकृति नियमों का सातत्य ही पर्यावरण का संरक्षण करता है। संतुलित पर्यावरण से तात्पर्य यही है कि प्रकृति के नियमों में नैरन्तर्य रहे जैसे ग्रीष्मकाल के पश्चात वर्षा ऋतु सूर्य की गमी से शोधित पृथ्वी की उर्वरा की वर्द्धक है नदियों के बहते जल का नृत्य है तथा झरनों का संगीत हैं वहीं वसन्त ऋतु पतझड़ के बाद वृक्षों के शिखर पर कलियों की मुस्कुराहट है।

हम देखते हैं कि प्रकृति अपने शुद्धरूप में नैरन्तर्य के कारण जीवन का निर्माण करती और नृत्य प्रकृति में निरन्तरता का ही दूसरा रूप है। अतएव यह स्पष्ट ही है कि नृत्य के माध्यम से जब नर्तक अपने हर्दयगत आनन्द व ऊर्जा का विस्तार दर्शक के मानस पटल पर अंकित करता हैं तब रस की सृष्टि होती है। उपनिषद में "रसो वे ब्रह्म" अर्थात रस को ही ब्रह्म कहा है। नृत्य में अवरोध आ जाने पर प्रत्येक दर्शक की रसानुभूति नष्ट हो जाती हैं। यह रसानुभूति बनी रहे अतएव नर्तक पूर्ण प्रयास करता है। उसी प्रकार नर्तक का यह प्रयास पर्यावरण का नैरन्तर्य भी बना रहे यही सन्देश अपनी कला के माध्यम से सभी जन साधारण को प्रेषित करता है। रस सम्प्रेषण में उपस्थित बाधा को दूर कर पुनः रसोत्पति की जा सकती हैं किन्तु पर्यावरण में उत्पन्न असंतुलन जीवन ही नष्ट कर देगा अतः सार यहीं है कि हम अपने जीवन को प्राकृतिक नियमों पर पर आधारित बनाने के लिए पुनः भारतीय संस्कृति की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करें जहाँ ऋषि यह घोष करता है।

माता भूमि पुत्त्रोऽहम् पृथिवाः॥
पर्जन्यःपिता सउनःपिपर्तु।। 12/1/12 अथर्ववेद

प्रकृति का नियमबद्ध होना ही उसका नर्तन है अतः नृत्य कला पर्यावरण संरक्षण हेतु एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ सूची

शर्मा, डॉ. रमेश चंद्र, भारतीय नृत्य परंपरा और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
वर्मा, सुषमा, भारतीय शास्त्रीय नृत्य का इतिहास, साहित्य भवन, आगरा।
मिश्रा, डॉ. सुधा, लोक नृत्य और समाज, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
त्रिपाठी, डॉ. विनोद, पर्यावरण अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
सिंह, डॉ. आर.पी., कला और पर्यावरण चेतना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
शुक्ला, मनीषा, नृत्यः अभिव्यक्ति और संप्रेषण, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली।
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत में पर्यावरण संरक्षण, भारत सरकार प्रकाशन।
गुप्ता, डॉ. सीमा, भारतीय कला और प्रकृति, विद्या विहार प्रकाशन, जयपुर।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत-चीन सैन्य गतिशीलता को आकार देने में अन्य पक्षों की भूमिका

कैलाश नाथ द्विवेदी
शोध छात्र रक्षा अध्ययन विभाग
फ़ीरोज़ गांधी कॉलेज, रायबरेली

प्रो. ओ. पी. शुक्ला
रक्षा अध्ययन विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश

यह लेख उन तरीकों की जाँच करता है जिनसे राज्य, संगठन और गैर-राज्य संस्थाएँ चीन और भारत के बीच सैन्य गतिशीलता को प्रभावित करती हैं। यह अध्ययन उन प्रमुख तंत्रों की पहचान करता है जिनके माध्यम से तृतीय पक्ष निवारण, वृद्धि नियंत्रण, बल की स्थिति और संकट परिणामों को प्रभावित करते हैं, और यह हाल के मामलों (डोकलाम 2017, गलवान 2020, और 2020-2024 गतिरोध), हथियारों के हस्तांतरण और रक्षा साझेदारियों पर वास्तविक डेटा, और शक्ति-संतुलन और सीमित युद्ध पर स्थापित सिद्धांत के संयोजन का उपयोग करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका (क्वाड सहित), पाकिस्तान, रूस, और अंतर्राष्ट्रीय मंच एवं बाज़ार (हथियार आपूर्तिकर्ता, प्रौद्योगिकी प्रदाता) विश्लेषित प्रमुख तृतीय-पक्ष अभिकर्ताओं में शामिल हैं। अध्ययन यह तर्क देता है कि तृतीय-पक्ष गतिविधियों के दो प्रभाव पड़े हैं : उन्होंने चीन-भारत प्रतिद्वंद्विता को सीमित और जटिल बना दिया है, टकराव की लागत बढ़ा दी है और कभी-कभी गठबंधन संकेतों और प्रतिस्पधी हथियारों के प्रवाह के माध्यम से असुरक्षा को बढ़ा दिया है। लेख बीजिंग और नई दिल्ली के लिए संकट की स्थिरता पर तृतीय-पक्ष प्रभावों को सीमित करने और गलत व्याख्या को कम करने हेतु नीतिगत सिफारिशों के साथ समाप्त होता है।

मूल शब्द : भारत-चीन संबंध; तृतीय पक्ष; शस्त्र हस्तांतरण; क्वाड; स्थिरता संकट।

द्विपक्षीय ऐतिहासिक शिकायतों और भौगोलिक मुद्दों के अलावा, चीन और भारत के बीच संबंध तीसरे राष्ट्रों के प्रभाव से आकार लेते हैं जिनकी नीतियां और कार्य क्षेत्रीय सैन्य गणनाओं को बदलते हैं। 2017 में डोकलाम गतिरोध और 2020 में गलवान घाटी संघर्ष जैसी घटनाओं ने पिछले दस वर्षों के दौरान प्रदर्शित किया है कि कैसे बाहरी अभिकर्ता गठबंधनों, हथियारों के हस्तांतरण, राजनयिक संकेतों और आर्थिक संबंधों के माध्यम से बीजिंग और नई दिल्ली की क्षमताओं और प्रेरणाओं को बदलते हैं। विश्लेषणात्मक रूप से, तीसरे पक्ष संघर्ष की गतिशीलता के निम्नलिखित पहलुओं को प्रभावित करते हैं : (1) क्षेत्रीय सुरक्षा योजना; (2) संकेत और धारणा; (3) संकट प्रबंधन विकल्प; और (4) क्षमताओं का संतुलन। यह अध्ययन यह दिखाने के लिए कि तृतीय-पक्ष की गतिविधियों ने भारत-चीन सैन्य गतिशीलता को कैसे प्रभावित किया है और ऐसे परिणामों को नियंत्रित करने के लिए नीतिगत उपाय सुझाने के लिए, पिछली शोध और वर्तमान विकासों का संकलन करता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में द्विपक्षीय प्रतिस्पर्धा में तृतीय पक्षों को महत्वपूर्ण माना जाता है। जहाँ उदारवादी-संस्थावादी विद्वत्ता इस बात पर ज़ोर देती है कि कैसे वैश्विक संस्थाएँ और मानदंड संकट प्रबंधन और संयम के माध्यम प्रदान करते हैं, वहीं यथार्थवादी दृष्टिकोण इस बात पर ज़ोर देते हैं कि कैसे बाहरी महाशक्तियों के गठबंधन और शस्त्र हस्तांतरण शक्ति संतुलन

को बदलते हैं। भारत-चीन पर हाल ही में किए गए अनुप्रयुक्त शोध द्वारा पाकिस्तान और रूस जैसे क्षेत्रीय कारकों के साथ-साथ हिंद-प्रशांत क्षेत्र में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा (जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत के बीच सुरक्षा को मज़बूत करना) के महत्व को अल्पकालिक सैन्य परिस्थितियों और दीर्घकालिक रणनीतिक गणनाओं को बदलने में उजागर किया गया है (लालवानी, 2023)। तृतीय-पक्ष गतिविधियों में परमाणु-सशस्त्र समकक्ष चीन और भारत के बीच प्रतिद्वंद्विता को या तो स्थिर करने (संकट प्रबंधन स्थल प्रदान करके) या इसे अस्थिर करने (हथियारों की होड़ को प्रोत्साहित करके या तृतीय-पक्ष प्रतिबद्धताओं पर प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके) की क्षमता है।

तीसरे पक्ष के प्रभाव के तंत्र

प्रत्येक पक्ष की क्षमताएँ प्रौद्योगिकी सहयोग, सहकारी विकास और शस्त्र हस्तांतरण से सीधे प्रभावित होती हैं। जहाँ चीन के सैन्य आधुनिकीकरण और रक्षा निर्यात, विशेष रूप से पाकिस्तान को, ने दक्षिण एशियाई संतुलन को बदल दिया है, वहीं भारत के रक्षा खरीद और सह-उत्पादन समझौतों, जिनमें रूस और अमेरिका के साथ समझौते भी शामिल हैं, ने उसकी वायु, नौसेना और निगरानी क्षमताओं में सुधार किया है। अंतर्राष्ट्रीय शस्त्र हस्तांतरण के हालिया रुझानों के अनुसार, भारत 2020-2024 की अवधि में दुनिया के शीर्ष हथियार आयातकों में शुमार रहा, जो क्षेत्रीय सुरक्षा माँगों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया को दर्शाता है। विवादित सीमाओं पर सैन्य तैनाती इन प्रवाहों और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की दिशा से भौतिक रूप से प्रभावित होती है।

तीसरे पक्षों के साथ साझेदारी के संकेतात्मक निहितार्थ होते हैं जो विरोधियों की राय बदल देते हैं। बीजिंग यह जान गया है कि सुरक्षा संबंधों के संस्थागतकरण से भारत का रणनीतिक स्थान बढ़ रहा है, जैसे कि अमेरिका और भारत के बीच रक्षा सहयोग में वृद्धि, LEMOA/COMCAS। जैसे रसद समझौते। यह भारतीय प्रतिरोध को मजबूत कर सकता है, लेकिन चीन में रणनीतिक चिंता भी पैदा कर सकता है। अमेरिका और भारत के बीच संबंधों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वाशिंगटन का रुख और नई दिल्ली के साथ सहयोग, तनाव बढ़ने के जोखिमों और बाहरी हस्तक्षेप की संभावना के चीनी आकलन को प्रभावित करता है (ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूशन, 2024)।

परिस्थितियों को कम करने या मानदंडों को संहिताबद्ध करने के लिए, तृतीय-पक्ष राज्य और संस्थाएँ मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकती हैं या राजनयिक दबाव डाल सकती हैं। तृतीय-पक्ष राजनयिक दबाव (बयान, प्रतिबंध या समर्थन) अभी भी संकट और संकटोत्तर वार्ताओं के दौरान राजनीतिक प्रोत्साहनों को प्रभावित करता है, हालाँकि भारत-चीन संदर्भ में प्रत्यक्ष तृतीय-पक्ष मध्यस्थता असामान्य रही है। दोनों पक्ष द्विपक्षीय प्रबंधन के पक्षधर हैं। 2020-2024 के गतिरोध पर हाल के अध्ययनों द्वारा वार्ता के चरणों को प्रभावित करने में व्यक्तिगत और अंतर्राष्ट्रीय राजनयिक बातचीत के महत्व को उजागर किया गया है।

चीन और भारत के साथ या उनकी सीमा से सटे देशों, खासकर पाकिस्तान और भूटान, द्वारा शक्तिशाली भूमिकाएँ निभाई जाती हैं। पाकिस्तान के चीन के साथ घनिष्ठ सैन्य-रणनीतिक संबंधों के कारण, बीजिंग के पास भारत के पश्चिमी मोर्चे पर एक भरोसेमंद सहयोगी है, जो भारत के लिए खतरे का आकलन जटिल बनाता है और नई दिल्ली को दो संभावित मोर्चों के बीच ध्यान और संसाधन बाँटने के लिए मजबूर करता है (बर्थवाल, 2024)। इसी प्रकार, भारतीय सुरक्षा के लिए उनके भौगोलिक महत्व को देखते हुए, भूटान जैसे देशों (जैसे डोकलाम में) के कार्य सीधे भारतीय हस्तक्षेप का कारण बन सकते हैं। पाकिस्तान के साथ चीन का बढ़ता सैन्य सहयोग और भारत पर इसके परिणाम अकादमिक और नीतिगत मूल्यांकनों में दर्ज हैं।

व्यापार, निवेश और चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे जैसी बुनियादी ढाँचागत पहल आर्थिक संबंधों के ऐसे उदाहरण हैं जिनका उपयोग राजनीतिक व्यवहार और गठबंधनों को प्रभावित करने के लिए किया जा सकता है। आर्थिक निर्भरता या लाभ उठाने से सुरक्षा पर प्रभाव डालने वाले नीतिगत निर्णयों को सीमित किया जा सकता है, भले ही वे सैन्य प्रकृति के न

हों (उदाहरण के लिए, कड़े रुख अपनाने की राजनीतिक लागत को कम करना)। चीन और पाकिस्तान के बीच सैन्य और आर्थिक संबंधों पर हालिया शोध से पता चलता है कि आर्थिक पहल कैसे व्यापक रणनीतिक सहयोग से जुड़ी हैं।

उदाहरण के रूप में जब चीन ने भूटान के दावे वाले क्षेत्र में सड़क निर्माण शुरू किया, तो भारत ने सिलीगुड़ी कॉरिडोर की सुरक्षा की चिंता का हवाला देते हुए हस्तक्षेप किया, जिससे डोकलाम गतिरोध शुरू हो गया। भूटान की सीमित शक्तियों और भौगोलिक दावों के कारण भारत इस संघर्ष में सीधे तौर पर शामिल हो गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि किसी तीसरे देश के बीच का क्षेत्रीय विवाद कैसे बड़े पड़ोसियों के बीच द्विपक्षीय सैन्य संकट का कारण बन सकता है। डोकलाम में, बाहरी मध्यस्थता के बजाय सीधी द्विपक्षीय वार्ता और सैन्य वापसी ने समाधान निकाला। यह मामला दर्शाता है कि कैसे निकटस्थ तृतीय पक्ष रणनीतिक उलझनें पैदा कर सकते हैं जो निकटवती महाशक्तियों को सीधे संघर्ष में शामिल होने के लिए मजबूर कर देती हैं (जैकब, 2017)।

जून 2020 में गलवान में हुए खूनी संघर्ष ने चीन और भारत के बीच सैन्य संबंधों की प्रकृति में बदलाव का संकेत दिया। इसके बाद, भारत ने अपने हथियारों की खरीद का विस्तार किया, वास्तविक नियंत्रण रेखा (स।ब) पर बुनियादी ढाँचे के निर्माण में तेज़ी लाई, और सहयोगियों, खासकर संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ रक्षा संबंधों को बेहतर बनाया (बाजपेयी और चाको, 2021)। इसी समय, चीन और पाकिस्तान ने अपने सैन्य सहयोग को बढ़ाया। गलवान के बाद की अवधि के विश्लेषणों के आधार पर, बातचीत के उन चरणों का पता लगाया जा सकता है जहाँ बाहरी संकेतों जैसे सैन्य अभ्यास, उच्च-स्तरीय कूटनीति और तीसरे पक्षों द्वारा सार्वजनिक संदेश ने सौदेबाजी की संभावनाओं और सैनिकों की वापसी की दर को प्रभावित किया।

बीजिंग अब क्वाड (ऑस्ट्रेलिया, भारत, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका) को हिंद-प्रशांत क्षेत्र में संतुलन साधने के एक तंत्र के रूप में देखता है। क्वाड ऑपरेशन (समुद्री अभ्यास, चर्चाएँ, तकनीकी और सैन्य सहयोग) भारत की समुद्री स्थिति को प्रभावित करते हैं और क्षेत्रीय खतरों के बारे में चीन की धारणा को आकार देते हैं, जबकि ये कोई औपचारिक गठबंधन नहीं हैं। अमेरिका-भारत परिचालन अभिसरण के परिणामस्वरूप, समुद्री क्षेत्र में बलपूर्वक व्यवहार की लागत चीन के लिए बढ़ जाती है, जो कि किसी भी भारत-चीन संघर्ष में, जिसके समुद्री परिणाम हो सकते हैं, अप्रत्यक्ष रूप से, तीसरे पक्ष की संभावित भागीदारी का भी संकेत देता है, जैसा कि विद्वानों और नीति विश्लेषणों से पता चलता है।

प्रतिरोध, वृद्धि और हथियारों की प्रतिस्पर्धा पर प्रभाव

हथियारों की होड़ और तनाव बढ़ाने के तरीके, प्रतिरोध के अलावा, अन्य पक्षों से भी प्रभावित होते हैं। भारत और चीन एक-दूसरे के साथ कदमताल मिलाने और क्षेत्र में बड़ी शक्तियों, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस की उपस्थिति के कारण बदलते भू-राजनीतिक गठबंधनों के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए उन्नत क्षमताओं को हासिल करने के लिए प्रेरित हैं। भारत द्वारा राफेल विमान, अमेरिकी निगरानी प्रणाली, रूसी एस-400 वायु रक्षा प्रणाली और चीन की अपनी आधुनिकीकरण पहल की खरीद, सभी प्रतिस्पधी खरीद के उदाहरण हैं। ये घटनाक्रम एक पारंपरिक सुरक्षा पहेली का उदाहरण हैं जो तीसरे पक्ष की भागीदारी से और भी बदतर हो जाती है, जहाँ एक पक्ष की रक्षात्मक कार्रवाई दूसरे पक्ष को आक्रामक लगती है।ैप्ल्ट् के आंकड़ों के अनुसार, दक्षिण एशिया में हथियारों का प्रवाह अभी भी बढ़ रहा है, जिससे बढ़ती जटिल प्रणालियों के कारण अनजाने में तनाव बढ़ने की आशंकाएँ बढ़ जाती हैं (एसआईपीआरआई, 2024)।

तीसरे पक्ष भी संकट के संकेत को और कठिन बना देते हैं। भारत संकट के समय अधिक मुखर रुख अपना सकता है यदि उसे लगता है कि बाहरी सहायता—राजनीतिक, कूटनीतिक या तकनीकी—उसकी वार्ता स्थिति को बेहतर बनाएगी। चीन ऐसी कार्रवाइयों को उग्रता के रूप में देख सकता है क्योंकि उसका मानना है कि गठबंधनों से ये मज़बूत होती हैं। दूसरी ओर, पाकिस्तान के साथ चीन का गठबंधन भारत को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ने के जोखिम में डालकर बीजिंग को और अधिक आत्मविश्वास दे सकता है। ये जटिल अंतर्निर्भरताएँ संकट संचार में अस्पष्टता लाकर गलत अनुमान लगाने की

संभावना को बढ़ाती हैं। टेलिस एट अल. (2024) का तर्क है कि तीसरे पक्ष के कर्तव्यों की अधिक सटीक परिभाषाएँ और संचार के बेहतर मार्ग संकट के समय भ्रम को कम कर सकते हैं।

रूस के दोहरे प्रभाव पर भी ध्यान देना चाहिए। रूस, जो लंबे समय से भारत का प्रमुख रक्षा आपूर्तिकर्ता और रणनीतिक सहयोगी रहा है, ने चीन के साथ भी अपने संबंधों को गहरा किया है, खासकर 2022 के बाद से। इसके परिणामस्वरूप, रूस की क्षेत्रीय तटस्थता के बारे में भारत का दृष्टिकोण बदल गया है। मास्को त्रिपक्षीय वार्ताओं की मेजबानी और संयम को बढ़ावा देकर क्षेत्रीय कूटनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, लेकिन चीन के साथ उसका बढ़ता गठबंधन भारत की सुरक्षा रणनीति के लिए नई चुनौतियाँ पैदा करता है। आंशिक रूप से, इन बदलते गठबंधनों ने भारत को अपने हथियार आयात में विविधता लाने के लिए प्रेरित किया है, खासकर संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस के माध्यम से।

नीतिगत निहितार्थ और सिफारिशें

इन जटिल संबंधों के महत्वपूर्ण नीतिगत निहितार्थ हैं। पहला, संकट-संचार प्रणालियाँ, जो विशेष रूप से इस बात पर विचार करती हैं कि तृतीय पक्ष वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर होने वाली घटनाओं को कैसे देख सकते हैं या उन पर कैसे प्रतिक्रिया दे सकते हैं, चीन और भारत द्वारा संस्थागत रूप से स्थापित की जानी चाहिए। गठबंधन के इरादों की गलत व्याख्या करके, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका या पाकिस्तान के संबंध में, तनाव को अनुचित रूप से बढ़ाया जा सकता है। दूसरा, हथियारों के हस्तांतरण और सीमा पर तैनाती में विश्वास बढ़ाने के लिए कदम उठाना महत्वपूर्ण है। अंतर्राष्ट्रीय उदाहरणों के अनुसार, कुछ प्रकार के हथियारों, विशेष रूप से निगरानी और मिसाइल प्रणालियों के संबंध में पारदर्शिता, सीमावती क्षेत्रों में तनाव कम करने में मदद कर सकती है। तीसरा, ऐसी स्थितियों में भी जहाँ न तो चीन और न ही भारत औपचारिक तृतीय-पक्ष मध्यस्थता को स्वीकार करते हैं, बहुपक्षीय मंच तनाव कम करने के अप्रत्यक्ष रास्ते प्रदान कर सकते हैं। चौथा, चूँकि भूटान, पाकिस्तान और नेपाल में क्षेत्रीय परिवर्तन अक्सर चीन और भारत के बीच सैन्य प्रतिक्रियाओं का कारण बनते हैं, इसलिए इन निकटवती तृतीय-पक्ष देशों को क्षेत्रीय चर्चाओं में अधिक गहराई से शामिल किया जाना चाहिए। डोकलाम विवाद ने छोटे देशों को क्षेत्रीय सुरक्षा पर चर्चाओं से दूर रखने के खतरों के बारे में एक चेतावनी के रूप में कार्य किया।

अंत में, तीसरे पक्ष की भागीदारी के संबंध में, चीन और भारत दोनों को अपनी सीमा रेखाएँ और बैकअप योजनाएँ स्पष्ट करनी होंगी। कुछ स्थितियों में, बाहरी कारकों की रणनीतिक अस्पष्टता आक्रामकता को रोकने में मदद कर सकती है, लेकिन अत्यधिक अनिश्चितता भय, तनाव बढ़ाने या बाहरी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता का कारण भी बन सकती है। अधिक स्पष्टता से इस संभावना को कम किया जा सकेगा कि तीसरे पक्ष के कृत्य अनजाने में संघर्ष को बढ़ाएँ और दोनों पक्षों को बाहरी भागीदारी के बारे में यथार्थवादी निर्णय लेने में मदद मिलेगी।

निष्कर्षतः, यद्यपि उन्हें अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है, चीन और भारत के बीच सैन्य गतिशीलता को निर्धारित करने में तीसरे पक्ष महत्वपूर्ण हैं। बाहरी अभिकर्ता भारत और चीन की भौतिक क्षमताओं के साथ-साथ हथियारों के हस्तांतरण, गठबंधन संकेत, आर्थिक संबंधों, राजनयिक हस्तक्षेपों और क्षेत्रीय संरेखण के माध्यम से उनके सामरिक दृष्टिकोण पर प्रभाव डालते हैं। कुछ मायनों में, उनकी भागीदारी संघर्ष की लागत बढ़ाती है और प्रतिरोध को मजबूत करती है, लेकिन दूसरी ओर, यह जटिलता जोड़ती है जो संकट प्रबंधन को अस्थिर बना सकती है। यह सुनिश्चित करना कि उनकी गतिविधियाँ असुरक्षा बढ़ाने के बजाय कम करें, चीन, भारत और अन्य पक्षों के लिए एक चुनौती है। तीसरे पक्ष के प्रभाव को नियंत्रित करने की क्षमता संघर्ष को टालने और दीर्घकालिक क्षेत्रीय शांति बनाए रखने के लिए आवश्यक होगी क्योंकि भारत-प्रशांत क्षेत्र विश्व भू-राजनीति के लिए अधिक से अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है और चीन और भारत बड़ी शक्तियों के रूप में विकसित हो रहे हैं।

संदर्भ

बाजपेयी, के., और चाको, पी. (2021), गलवान से आगे का रास्ता : भारत-चीन संबंधों का भविष्य. कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस

बर्थवाल, एन. (2024), चीन-पाकिस्तान सैन्य सहयोग. भूमि युद्ध अध्ययन केंद्र

ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूशन. (2024), भारत-चीन संबंधों पर अमेरिकी दृष्टिकोण और अमेरिका-भारत साझेदारी पर उनका प्रभाव

जैकब, जे., एट अल. (2017), डोकलाम में भारत-चीन गतिरोध की व्याख्या

लालवानी, एस. (2023), सीमा गठबंधन : चीन-पाकिस्तान सैन्य संबंध. संयुक्त राज्य अमेरिका शांति संस्थान

एसआईपीआरआई (2024), अंतर्राष्ट्रीय हथियार हस्तांतरण के रुझान 2024. स्टॉकहोम अंतर्राष्ट्रीय शांति अनुसंधान संस्थान

टेलिस, ए.जे., एट अल. (2024), भारत-चीन गतिरोध पर बातचीत : 2020-2024. कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

उदय प्रकाश की महाकाव्यात्मक कहानी 'पीली छतरी वाली लड़की' में निहित मूल संवेदना

संतोष कुमार
ग्राम-बरौना, पोस्ट-किछौछा
जिला-अंबेडकर नगर, पिन कोड-224155
मोबाइल नंबर-8737946909
ईमेल- kapoorsantosh10@gmail.com

उदय प्रकाश का लेखन क्षेत्र वृहद और बहुस्तरीय है। इनकी कहानियों में प्रतीकों का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है। इनके लेखन पर फैंटेसी का प्रभाव है। ये जिन प्रतीकों या बिम्बों का प्रयोग करते हैं वे आम जनता के बीच के अत्यन्त जीवंत प्रतीक है। प्रतीक व बिम्ब जहाँ समाज का ध्यान सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को समझने, विश्लेषण और चिंतन-मनन के लिए प्रेरित करते हैं वहीं दूसरी तरफ इन समस्याओं से निकलने का मार्ग खोजने के लिए समाज को विवश करते हैं। उदय प्रकाश की कहानी 'पीली छतरी वाली लड़की' लम्बी कहानियों में गिनी जाती है। कहानी के नामकरण के पीछे कई तर्क हैं। ''भारतीय परम्परा और संस्कृति में पीले रंग कई शुभ और मंगलकारी संकेत के साथ आता है। कृश्ण को पीताम्बरधारी कहा जाता हैं साथ ही ईसाई धर्म में मान्यता है कि क्राइस्ट के मृत्यु के समय पीले फूलों की बारिश हुई थी। इस प्रकार सत्ता के द्वारा फैलाये गये शोशण और अराजकता के अंधेरे (काले रंग) के बरक्स उदय प्रकाश ईश्वरीय पीले रंग के मानवीय निहितार्थ खड़ा करते हैं। पीला रंग यौनिकता के आवेग का भी प्रतीक है, जिसके माध्यम से अंजली जोशी पवित्रता के पारंपरिक अवधारणा का विरोध करती हैं।''[1] पीला रंग मंगलकारी और शुभ होने के साथ ही पीले रंग की छतरी कहानी के नायक राहुल और नायिका अंजली जोशी के बीच प्रेम-प्रसंग का सूचक भी है।

कहानी में एक तरफ प्रेम प्रसंग को दिखाया गया है तो दूसरी तरफ विश्वविद्यालय पर हावी अराजकतावादी तत्वों ब्राहमणवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार, हिंसा, का बोल बाला है। ब्राहमणों ने इतिहास में जो कुछ भी लिखा, वह केवल अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए लिखा।

ब्राहमणों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए कर्मकाण्ड और मंदिर का सहारा लिया। मन्दिरों पर ब्राहमणों, मस्जिदों पर मुसलमानों और चर्च पर ईसाई का कब्जा भूत, भविष्य से होता हुआ वर्तमान तक आ पहुँचा है। डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से नौकरी में आरक्षण नीति लागू होने के बावजूद भी क्या कारण है कि उच्च पदों पर सवर्णो की वंशावली लागू है। क्या यह लोकतांत्रिक देश के लिए सही है?

मंदिर में सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, पर्स, बेल्ट, जूता, चप्पल इत्यादि का प्रवेश निषेध है। मादक पदार्थों के सेवन पर रोक मानव कल्याणकारी है। जिसमें लक्ष्मी सुरक्षित रहती हैं उसका निषेध समझ में नहीं आता है जबकि तिलकधारी बड़ी तन्मयता के साथ चमड़े से बनी ढ़ोलक बजाते हैं और अन्य तिलकधारी खड़े होकर उसके धुन में लीन हो जाते हैं। यह सब धार्मिक राजनीति है। कमजोर, अशिक्षित, लाचार, गरीब जनता को छलने का तरीका है। उदय प्रकाश लिखते हैं कि-''इतिहास असल

में सत्ता का एक राजनीतिक दस्तावेज होता है.. जो वर्ग, जाति या नस्ल सत्ता में होती है, वह अपने हितों के अनुरूप इतिहास को निर्मित करता है। इस देश और समाज का इतिहास अभी लिखा जाना बाकी है।''[2]

'पीली छतरी वाली लड़की' कहानी में विश्वविद्यालय का परिवेश दर्शाया गया है। विश्वविद्यालयी शिक्षा पर जातिवाद, भूमण्डलीकरण, बाजारीकरण, अराजकता, हिंसा और ब्राहमणवाद किस प्रकार से हावी है, इसका चित्रण किया गया है। कहानी की शुरूआत फिल्म 'हम आप के हैं कौन' की अभिनेत्री 'माधुरी दीक्षित' की नंगी पीठ से होती है जो सलमान खान की गुलेल से चोट खाई हुई हैं। फिल्मों में दिखाया जाने वाला खुलापन भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सूचक न होकर पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का प्रचारक है। इस प्रकार का खुलापन स्त्री वर्ग को प्रदर्शन की वस्तु में तब्दील कर रही है। पुरुष वर्ग ने स्त्री वर्ग को सदियों से इस प्रकार ढ़ाला कि वे स्त्रीत्व के गुणों को त्याग न सकीं। केवल घर की चार दीवारी के अंदर ही कैद होकर रह गई।

स्त्री वर्ग को स्त्रीत्व होने का बोध कराना और बच्चे पैदा करने की मशीन समझना पुरूश सत्तात्मक समाज का गुण है। उनके दिलों-दिमाग को ऐसे मथ दिया गया कि सोचने, समझने की शक्ति क्षीण हो गई। उनको कोई अधिकार नहीं दिया गया। उनका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। संतान पैदा करने से लेकर लालन-पालन में स्त्री वर्ग की भूमिका प्रधान होने के बावजूद भी संतान के जन्म-प्रमाण पत्र, आय-प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण-पत्र, निवास प्रमाण-पत्र और अंक प्रमाण-पत्र पर पिता का नाम पहले लिखा जाता है। इस प्रकार समाज पुरूश सत्तात्मक बना हुआ है। इस संदर्भ में उदय प्रकाश ने लिखा है—

''लड़की चोट खाना बहुत पसंद करती है। वह बिल्ली या गिलहरी नहीं है, जिसकी पीठ पर प्यार से धीरे-धीरे अपनी उंगलियाँ या हथेलियाँ फिराओ, उसे संभाल-संभाल कर सहलाओ तो वह गुर्र-गुर्र करती लोटम लोट होगी। लड़की तो वो चीज है, जिसको जितना मारो, जितना कूटो, उसे उतना मजा आता है। लड़की तो असल में ताकत और हिंसा को प्यार करती है।''[3]

स्त्री वर्ग के कुचले जाने, बलात्कार होने, शिक्षा और सम्पत्ति से वंचित रखने और धरेलू हिंसा सहने के बावजूद, क्या स्त्री वर्ग खुल कर सामने आयेगी? या पुरुष सत्तात्मक समाज के हिंसात्मक व्यवहार को चुपचाप सहती रहेगी। इसकी सही विवेचना स्त्री वर्ग ही कर सकती है? इस संदर्भ में उदय प्रकाश का दृष्टिकोण स्त्री विरोधी सा लगता है।

कहानी का नायक 'राहुल' विश्वविद्यालय का छात्र है। राहुल आर्गेनिक केमिस्ट्री से एम0एस0सी0 करने के बाद अपने परिचित किन्नू दा से एंथ्रोपोलॉजी के बारे में जानकर आर्गेनिक केमिस्ट्री में कैरियर न बनाने का सही निर्णय करता है। राहुल का आर्गेनिक केमिस्ट्री विषय छोड़ने के पीछे जो सोच काम कर रही है उसका विवरण उदय प्रकाश ने इस प्रकार दिया है-''उसे कोई मोटा, पिदपिदा-सा आदमी, सुअर की तरह फचफच करके पिजा खाते, दही या विनेगर में गार्निश्ड मछली को कचर-पचर चबाते दिखाई देने लगता है जो साथ-साथ में शराब भी पीता और धुत्त होकर किसी किराये में लाई गयी टीनएज लड़की के साय अपनी मटके जैसी तोंद और विशाल कद्दुओं जैसे ढीले-ढाले नितंबों को मटका-मटका कर नाचने लगा।''[4]

यह बात काफी हद तक सही है कि मोटा आदमी तभी होता है जब उसने पहले सौ आदमियों को पतला किया होगा। शहर में पाँच सितारा और तीन सितारा होटल अंजान लोगों के ठहरने के लिए नहीं मोटे आदमियों के मनोरंजन के लिए बनाये गये हैं। शहरो में खुले बार और होटलों में पैसो की चमक आँखों को चकाचौंध कर रही है। वहीं दूसरी तरफ गरीब जनता सड़कों के किनारे सो रही है। देश की सुविधाओं पर केवल अमीरों का कब्जा है। देश की बड़ी आबादी मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा, मकान, चिकित्सा और शिक्षा के लिए जूझ रही है। बाजारीकरण और निजीकरण ने अमीरों को और अमीर, गरीबों को और गरीब बना दिया है। बाजार ने स्त्री वर्ग को भाई, पिता और पति के घर से मुक्ति तो दिलाई है लेकिन बाजार में लाकर कम दाम में बिकने के लिए खड़ा कर दिया। ''स्त्री अगर बाजार में खुद को बेचे तो उसका कोई विरोध नहीं। लेकिन वह किसी से कोई मनवीय और निजी संबंध का निर्माण करना चाहे, तो वह वर्जित है।''[5]

'पीली छतरी वाली लड़की' कहानी की कथावस्तु जिस विश्वविद्यालय परिसर और क्षेत्र में घटित होती है, वह पूर्णतः स्थानीय पुरुषवादी और ब्राहमणवादी समाज है। ''सट्टे और लाटरी का हर जगह बोल बाला था, तीन लोकल केबल चैनल थे,

जो रात में ब्लू फिल्म चलाते थे। दिन में उनमे ज्यादातर आशाराम बापू, मुरारी बापू आदि का प्रवचन था। सत्संग, जागरण, प्रवचन जितने बढ़ रहे थे, उतनी ही चोरियाँ, गर्भपात, बलात्कार, हत्याएँ, लूट और ठगी बढ़ रही थी।''[6]

'पीली छतरी वाली लड़की' कहानी के नायक राहुल की मुलाकात हिन्दी विभाग की छात्रा अंजली जोशी से होती है। अंजली को देखकर राहुल को प्यार हो जाता है। वह एन्थ्रोपोलॉजी छोड़कर हिन्दी में एडमिशन ले लेता है। उसके दिलों-दिमाग पर अंजली जोशी का नशा चढ़ जाता है। हिन्दी विभाग में चपरासी से लेकर प्रोफेसर तक सभी ब्राहमण थे। उनके पास मानक डिग्री भी नहीं है। सभी पदों पर ब्राहमण इसलिए नियुक्ति पा सके क्योंकि वे उच्च वर्ग या रईस खानदान या कुलपति के रिश्तेदार हैं। हिन्दी विभाग के छात्रों और अध्यापक की रूपरेखा का उदय प्रकाश ने इस प्रकार वर्णन किया है- ''विधाता गहरे असमंजस, ऊब और थकान के हाल में रहा होगा जब उसने हिन्दी डिपार्टमेंट की इन कन्याओं की रचना की। वह इस सृष्टि के किसी अन्य प्राणी को बनाना चाहता रहा होगा। मसलन नील गाय, जिराफ, हिप्पेपोटेमस, घड़ियाल, हाथी, मेढ़क, कछुए या घोड़े इत्यादि लेकिन उकताहट में आखिर में उसने इन्हें बना डाला था।''[7]

हिन्दी विभाग के छात्र-छात्राओं के चाल-ढ़ाल, पोशाक, थैला, खान-पान, बोल-चाल इत्यादि का जो विवरण उदय प्रकाश ने किया है, वह निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप नहीं है लेकिन भारतीय संस्कृति और सभ्यता का द्योतक भी नहीं है। हिन्दी साहित्य ने लोगों को मानवता, भाई-चारे और विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाया है जबकि विज्ञान ने लोगों को मशीन बनाने का कार्य किया है। हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी में अन्य विशयों के पक्षों को सम्मिलित करके हिन्दी को बंधी-बधाई परिपाटी से निकाल कर व्यापक स्तर पर पहुँचा दिया है। हिन्दी को सीखने और जानने के लिए विदेशी भी उत्सुक हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और प्रेमचन्द को पढ़ने के लिए न जाने कितने विदेशियों ने हिन्दी सीखीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सृजनात्मकता के आयाम, पीली छतरी वाली लड़की : स्त्री पीड़ा का आख्यान - आशुतोष, पृष्ठ संख्या-95-96
2. पीली छतरी वाली लड़की-उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण -2014, पृष्ठ संख्या - 14
3. पीली छतरी वाली लड़की -उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या- 7
4. पीली छतरी वाली लड़की -उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या- 11
5. पीली छतरी वाली लड़की -उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या- 133
6. पीली छतरी वाली लड़की -उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या- 132
7. पीली छतरी वाली लड़की -उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, आवृति संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या- 147

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Role of Organizational Reward Systems in Enhancing Employee Performance

Dr. Varsha Goyal
Associate Professor
Department of Management and Commerce,
Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak

Sonia
Ph.D. Research Scholar,
Department of Management and Commerce,
Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak

Abstract

"In such a challenging business environment, employee performance has become pivotal for sustained growth and strategic advantage in today's fast-paced and highly competitive organizational scenario. It's becoming more and more common to understand the importance of reward systems, monetary or other, in motivating employees so that they will be satisfied with their job and not leave. This research is planned to evaluate the performance of organizational reward system and its impact on employees' performance in different levels of work environment – less- substandard, moderate and more - optimal. The study that employed a descriptive research design, targeted 400 employees in the Delhi NCR region which comprised of individuals from Gurugram, Faridabad and Delhi selected through stratified random sampling so as to keep every sector as well career stage at par with each other. Two validated instruments were used to collect data, one for reward system and other is employees' performance on a Likert five point scale. Reliability The reliability test gave values of Cronbach's alpha as 0.80 and 0.76. Descriptive analysis and ANOVA, post hoc Tukey were used as statisti-cal tests. The results Barbaranellatar of perceivedewardhfficacy for the three workgroup categories were significantly different. Mean performance scores were significantly higher for employees in best and optimal work programmes compared to only suboptimal (i.e., the worst) environments, indicating that there was a positive and significant relationship between work environment quality along with reward system's effectiveness. Post hoc analysis revealed that all groups were significantly different from each other. Findings are consistent with the proposed proposition that high-quality reward systems have a significant effect on employees' performance, and suggest that work environment quality acts as a moderator in the relationship between reward system and employee performance. The research stresses the importance of fitting reward strategies to environmental circumstances, culture demand, and recipient interest for effective outcomes. These observations are very pertinent for Indian businesses transitioning to hybrid working models and varied workforce requirements.

Keywords: Reward Systems, Employee Performance, Work Environment, Human Resource Management, Organizational Effectiveness

Introduction

In an era of unprecedented organizational dynamism and competition, success is no longer just about financial or physical assets it is about human capital. The workforce, the source of creativity and productivity and the quality of services, has become the most important asset for business operations stability and long-term development. Therefore, firms need to implement measures to keep employees motivated, engaged and satisfied in order to achieve their strategic objectives successfully (Kumar and Srivastava, 2019).

One of most powerful forces involved is the organizational reward system. In an organization, a reward system is the gathering of a network of policies and practices that are employed by the enterprises as an acknowledgement and be utilized for employee welfare. These systems are intended to link employee’s behaviour and results to the organisation s goals through providing financial (i.e. performance bonuses, wage increments, profit-sharing) and non-financial incentives (i.e. recognition, job enrichment, career development flexibility work schedules) (Kaur & Sandhu 2020). One of the most substantial leverages that these structures hold is employee satisfaction, loyalty, creativity and performance, which in turn has a cascading impact on organizational productivity and competitive minimization (Banerjee et al., 2021).

India being one of the fastest growing economies has experienced a major leap in its reward systems over a decade. The old paradigm of fixed pay and tenure-based advancement is giving way to systems which are more performance related, skills-driven and psychologically satisfying. This change is being driven due to the growth of service sector, globalization, and enhanced competition which has resulted in redefining employee retention as millennial and Gen Z employees want more than monetary benefits (Chattopadhyay and Ghosh, 2016).

Besides, Indian companies are waking up to the fact that generic, one size fits all rewards no longer work. Justice, Transparency and Personalization in the Distribution of rewards are valued by Employees (Joshi and Patil, 2024). Research has demonstrated that reward systems which focus on cultural sensitivity, well-defined linkage with performance and appreciation of individuals, result in higher employee engagement and lower turnover (Rao et al., 2023). Especially in IT, banking, education and startups sector, innovative and non-monetary rewards such as equity participation, learning based reward tiers along with remote work incentives are increasing on the higher note (Mishra, & Iyer, 2022).

This paper investigates the critical role played by organizational reward systems in enhancing employee performance, with an emphasis on Indian studies and contributions. It presents a comprehensive review of literature from 2015 to 2025 to highlight evolving trends, effectiveness, and future directions in reward strategy.

Review of Literature

Shankar and Reddy (2025) in a study on reward systems under Indian tech firms discussed psychological aspects of rewards, maintaining that perceived fairness of rewards affected performance as well as mental health. Workers who perceived that reward systems were fair and based on merit were also much more productive and less likely to engage in withdrawal. Joshi and Patil (2024) focused on digital rewards in the remote work environment, post-pandemic. The

investigation proposed that personalized e-vouchers, virtual thanksgiving events and gamified reward mechanisms were functional in sustaining performance of virtual teams. Rao, Pillai and Menon (2023) conducted a comparative analysis involving tier-1 and tier-2 cities in India. They discovered that, in tier-2 cities the smallest monetary rewards led to large boosts in performance since the cost of living there was lower and people had less employment (other) options; while, more recognition and career advancement mattered in metros. Mishra and Iyer (2022) explored reward system in the MNCs functioning in India. They concluded that hybrid system of rewards combining global incentive packages with local values for rewards such as family-based benefits and festival bonuses to secure cultural fit provided an overall better performance in the Indian subsidiaries. Banerjee and Roy (2021) offered insights from the nascent start-up domain in India. In this study, the start-ups utilised equity-based incentives and flexibility at work as a means to improve performance and retention amongst financial shortage.

Kaur and Sandhu (2020) studied the institutions of higher education in North India; initial job choice draw upon salary, while for long-term performance much impact have intangible rewards like professional autonomy, training facilities and faculty recognition program. Kumar and Srivastava (2019) conducted an extensive survey in Indian Banking sectors, the study carried out with relation to organized reward system and employee performance was found highly related. The research showed that branches with incentives 'attached' to individual level performance had higher scores in PSI, indicating that it was leading rewards that were positively related to organizational success! Saxena (2018) concentrated on SMEs in Delhi and argued that even with no enough financial resources new non-financial incentives mechanism for example, "Employee of the Month" certificate and peer recognition possessed significant motivational influence. Trust in management was also found to be positively affected by clear reward process, according to this research. Verma and Sharma (2017) surveyed in the manufacturing sector of Gujarat and Maharashtra. Management discovered that in terms of building loyalty, promises of promotion based on performance were more successful than the promise of a bonus. Interactive performance evaluation mechanisms were also strong incentives. As reported by Chattopadhyay and Ghosh (2016), the preferences of rewards were studied among IT professionals working in Bengaluru where non-monetary rewards, like flexible working hours and recognition were found to beaffecting job satisfaction and commitment. Their research was instrumental in exposing generational preferences of Indian millennials. In Indian public sector enterprises, Pradhan (2015) focused on the structured reward system, emphasizing that it has a strong influence in enhancing work engagement and task performance. He said rewarding performance improves the morale of employees, especially in jobs like those that are repetitious where there may be no intrinsic motivation.

Relevance of the Study

In a time when intellectual capital matters most of all in terms of value oversome notion of the value-add, it's important to figure out how incentive programs can motivate discretionary output from employees. Relevance of the Study The study is highly relevant to India, having mixed workforce, multi regional cultures and traditional public institutions along with the agile private sectors. Organisations in India frequently face the dilemma about how to maintain a lean structure in terms of manpower, budgets etc versus high performance requirements. Therefore, cost-effective incentive systems which positively influence performance isn't a nice-to-have but it's a need-to-have approach.

Moreover, as India emerges as a major base of the global service delivery workforce, knowledge about motivators to work can be utilized for creating reward systems that promote productivity, innovation and loyalty. With many Indian firms switching to hybrid working models, the traditional one-size-fits-all model of reward and recognition requires a relook. This paper also reminds us of the need to consider reward strategy corresponding to employee expectations and company aims, as well as cultural context for rewards at the corporate level; thus it is timely and noteworthy.

The literature over the last decade consistently shows that when well implemented, reward systems have a positive influence on employee performance. Even though the rewards might range from monetary to non-monetary, from acknowledgement to career opportunity, it is their nature as drivers that can hardly be disputed. Indian literature in particular has shown that preferences can be very complex, influenced by culture, region and economic class as well as the needs of different sectors. As businesses try to finding their way through the future of work, developing reward systems that are inclusive, transparent and strategic will remain a key part of driving employee performance and organisational success.

Objective of the Study

1. To assess the Effectiveness of Existing Reward System. How can reward system increase employee performance across different work environment.

Hypothesis

H_1^1: The effectiveness of the existing reward system significantly influences employee performance across different work environments.

Method

The present study adopts the Descriptive Research Method, which is a widely used approach in social science and organizational research.

Population and Sample

The study focused on employees from Delhi NCR, specifically Gurugram, Faridabad, and Delhi, selected for their economic diversity and employment density across public and private sectors. Using stratified random sampling, a sample of 400 employees was drawn to ensure representation across organisation types, occupational levels, and experience. The sample size was calculated using the standard formula for 95% confidence level and a 4.9% margin of error.

Sampling Technique

A stratified random sampling method was used to capture proportional representation across key strata: organisation type (government/private), occupational level, and years of experience. Random selection within each stratum ensured reduced sampling bias and increased subgroup validity.

Instruments Used

Two structured questionnaires were utilised. The first assessed reward systems (including promotion

policy), while the second measured employee performance using a 5-point Likert scale. Cronbach's alpha values of 0.80 and 0.76 respectively indicated strong reliability. Validity was confirmed through expert reviews and pilot testing.

Statistical Tools

To examine whether these differences were statistically significant, a one-way ANOVA test was conducted. This was followed by Tukey HSD post hoc analysis to identify specific group differences.

Data Analysis

The first objective of this research paper is to assess the effectiveness of existing reward system. How can reward system increase employee performance across different work environment. To rigorously analyze this objective, One-Way ANOVA technique were employed, as detailed in Table 1 to table 1.3:

Table 1: Descriptive Statistics of existing work environment

Existing work environment	N	Mean	Std. Deviation
Suboptimal work environment	131	12.61	3.014
Moderate work environment	173	18.69	1.408
Optimal work environment	96	22.70	1.299
Total	**400**	**17.66**	**4.376**

The data presented in Table 1 offers descriptive statistics for participants' perceptions of their existing work environments, categorized into suboptimal, moderate, and optimal conditions. Among the 400 respondents, those working under a suboptimal work environment (n = 131) reported the lowest mean score (M = 12.61, SD = 3.014), indicating a significantly lower perception of effectiveness and support. In contrast, those under a moderate work environment (n = 173) recorded a higher mean (M = 18.69, SD = 1.408), while participants in the optimal work environment group (n = 96) had the highest average score (M = 22.70, SD = 1.299), suggesting stronger perceptions of effectiveness and satisfaction with their working conditions. The overall mean score across all groups was 17.66 (SD = 4.376), indicating variability across different work environments.

Table 1.1: ANOVA Summary

ANOVA Effectiveness of Existing Reward System					
	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig
Between Groups	5959.231	2	2979.615	703.053	.000
Within Groups	1682.529	397	4.238		
Total	**7641.760**	**399**			

To determine whether these differences are statistically significant, an ANOVA test was conducted (see Table 1.1). The results reveal a highly significant difference in the effectiveness of existing reward systems across the three types of work environments, with $F(2, 397) = 703.053$, $p < .001$. The large F-value and extremely low p-value (< .001) confirm that the perceived effectiveness of reward systems significantly differs depending on the type of work environment employees experience.

Table 1.2: Post Hoc Tests

	(I) group	(J) group	Mean Difference (I-J)	Std. Error	Sig.	95% Confidence Interval	
						Lower Bound	Upper Bound
Tukey HSD	Suboptimal work environment	Moderate work environment	-6.077*	.238	.000	-6.64	-5.52
		Optimal work environment	-10.087*	.277	.000	-10.74	-9.44
	Moderate work environment	Suboptimal work environment	6.077*	.238	.000	5.52	6.64
		Optimal work environment	-4.010*	.262	.000	-4.63	-3.39
	Optimal work environment	Suboptimal work environment	10.087*	.277	.000	9.44	10.74
		Moderate work environment	4.010*	.262	.000	3.39	4.63
*. The mean difference is significant at the 0.05 level.							

Further insight is provided through Table 1.2, which presents the results of a Tukey HSD post hoc test. The findings confirm that each pairwise comparison between the groups is statistically significant at the 0.05 level. Specifically, the mean difference between the suboptimal and moderate work environments is -6.077 ($p < .001$), between suboptimal and optimal is -10.087 ($p < .001$), and between moderate and optimal is -4.010 ($p < .001$). These results indicate a clear, progressive increase in the effectiveness of reward systems as the work environment improves from suboptimal to optimal.

Table 1.3: Homogeneous Subsets

	group	N	Subset for alpha = 0.05		
			1	2	3
Tukey HSD[a,b]	Suboptimal work environment	131	12.61		
	Moderate work environment	173		18.69	
	Optimal work environment	96			22.70
	Sig.		1.000	1.000	1.000

Finally, Table 1.3, which shows the homogeneous subsets, further reinforces the above results by categorizing the three groups into statistically distinct clusters. Employees in the suboptimal environment form one distinct group with the lowest mean (12.61), those in the moderate environment occupy the middle subset (18.69), and the optimal environment group stands alone with the highest mean score (22.70). The significance values (all equal to 1.000) confirm that each group's mean is significantly different from the others with no overlap, thereby validating the distinctions among the three work environment conditions.

In summary, the analysis indicates a strong, statistically significant relationship between the quality of the work environment and employees' perceptions of the effectiveness of reward systems. Employees in more supportive and optimal work environments perceive their organization's reward systems as more effective, which likely contributes to enhanced motivation, performance, and retention.

Findings of the Study

The present study revealed a statistically significant relationship between the existing reward systems and employee performance across different work environments. Through a detailed ANOVA analysis, it was observed that employees working in optimal environments perceived their reward systems to be significantly more effective (M = 22.70) than those in moderate (M = 18.69) or suboptimal environments (M = 12.61), as shown in Table 1. The results were further confirmed through post hoc Tukey HSD tests (Table 1.2), where all inter-group mean differences were statistically significant at the 0.05 level. Table 1.3 validated the clear separation of the groups into homogeneous subsets, confirming that perceptions of reward system effectiveness vary consistently with the quality of the work environment. These findings support the alternative hypothesis (H11), establishing that effective reward systems are perceived differently based on environmental conditions and have a significant influence on employee performance.

Discussion of Results

The findings are in strong agreement with earlier research. As highlighted by Kumar and Srivastava (2019), reward systems that are perceived as transparent and performance-linked enhance employee morale and productivity, especially in sectors like banking. Similarly, Chattopadhyay and Ghosh (2016) argued that even non-monetary rewards can have a substantial impact on satisfaction and performance if implemented in a supportive work environment. In this study, the highest scores came from employees working in optimal conditions, suggesting that the work environment acts as a moderating factor. This aligns with Rao, Pillai, and Menon's (2023) observations that location-based factors and organizational culture significantly influence how rewards are perceived. Moreover, Joshi and Patil (2024) emphasized the importance of adapting reward systems to new hybrid or remote work setups—a consideration particularly relevant for respondents in the post-pandemic era.

Furthermore, the statistical significance of the differences across all three work environments echoes the argument by Shankar and Reddy (2025), who assert that psychological fairness and the perceived justice of reward mechanisms enhance not just performance but overall well-being. Even in resource-constrained environments such as Indian SMEs, Saxena (2018) noted that carefully crafted non-

financial rewards can generate high motivation levels. This is especially important for suboptimal environments, where traditional reward systems may lack impact unless supported by improved work conditions.

Implications and Suggestions

The study carries several important implications for organizational leaders, HR practitioners, and policy designers. Firstly, it is evident that the effectiveness of reward systems cannot be assessed in isolation from the work environment. Organizations must therefore adopt a holistic approach, ensuring that reward strategies are embedded within a positive, enabling, and inclusive workplace culture.

Second, it is suggested that tailored reward mechanisms be developed to suit different organizational contexts. As highlighted by Mishra and Iyer (2022), MNCs operating in India successfully adapt global systems to local expectations, such as including festival bonuses or family health schemes. Public sector organizations may need to update legacy reward policies to compete with dynamic private-sector practices, as noted by Pradhan (2015).

Furthermore, based on the significant mean differences observed, it is recommended that HR departments regularly assess employee perceptions of reward fairness, especially across different organizational strata. Including employee feedback in designing performance-linked reward systems can enhance transparency and reduce disengagement. Additionally, non-financial rewards such as growth opportunities, recognition, and work-life balance should be prioritized alongside monetary incentives (Kaur and Sandhu, 2020; Banerjee and Roy, 2021).

Lastly, further research could explore longitudinal outcomes of improved reward systems on retention, innovation, and well-being, especially in post-pandemic hybrid work cultures. This would be particularly useful in regions like Delhi NCR, where economic diversity influences employment structures.

References

Banerjee, S., & Roy, D. (2021). Role of reward systems in startups: A study on emerging Indian tech firms. *Asian Journal of Human Resource Management*, *9*(3), 211–229. https://doi.org/10.26524/hrm213

Chattopadhyay, R., & Ghosh, S. (2016). Non-monetary rewards and employee satisfaction: A study on IT professionals. *International Journal of Organizational Behaviour*, *5*(2), 123–138.

Joshi, R., & Patil, M. (2024). Virtual reward systems and remote employee performance: Evidence from Indian corporates. *Indian Journal of Business and Management*, *14*(1), 31–49.

Kaur, R., & Sandhu, S. (2020). Intangible rewards and faculty performance in Indian academia. *South Asian Journal of Management Education*, *18*(1), 45–67.

Kumar, R., & Srivastava, M. (2019). Reward systems in Indian banking sector: A performance linkage. *Journal of Human Capital Management*, *7*(3), 98–117.

Mishra, N., & Iyer, R. (2022). MNC reward systems in India: Cross-cultural adaptations and performance outcomes. *Global HR Perspectives*, *11*(4), 215–239.

Pradhan, M. (2015). Performance-based rewards and public sector efficiency in India. *Indian Journal of Public Administration*, *61*(3), 392–406.

Rao, V., Pillai, R., & Menon, A. (2023). Regional variations in reward effectiveness: Evidence from tiered Indian cities. *Journal of Applied HR Research*, *10*(2), 151–174.

Saxena, P. (2018). Small-scale rewards and big impacts: A study of Indian SMEs. *International Journal of Entrepreneurship and Innovation*, *6*(1), 88–104.

Shankar, B., & Reddy, M. (2025). Psychological fairness in rewards: Link to mental health and performance. *Journal of Organizational Psychology and Wellbeing*, *8*(2), 97–116.

Verma, A., & Sharma, T. (2017). Rewards, promotions, and employee loyalty: A study in Indian manufacturing. *Asian Productivity Journal*, *5*(4), 134–156.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री श्रीरामचरितमानस में वर्णित शबरीजी एवं अहल्याजी को दिए गये भक्ति उपदेशों का अध्ययन करना

आरती दास
शोधार्थी
सम्पर्क सुत्र-8233370788
E-mail Id.-aratidasupw@gmail.com

डॉ. अल्पना शर्मा
(सहायक आचार्य) शोध निर्देशकः- शिक्षा संकाय,
उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान(मानित विश्वविद्यालय),
गाँधी विद्या मंदिर, सरदारशहर, चुरू, (राज.)

सारांश

गोस्वामी तुलसीदासजी हिंदी के 'भक्तिकाल' की सगुन काव्यधारा में राम 'भक्तिशाखा' के सर्वोपरि कवि थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रभु श्रीरामजी की भक्ति और उनके गुणों गान करने के लिए समर्पित कर दिए थे। तुलसीदासजी ने अपनी रचनाओं में स्त्री जाति को इच्छाशक्ति, साहस एवं धर्मपरायण के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी के गुणों और महत्व को उत्कृष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। तुलसीदासजी ने प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों पर आधारित नारी के स्वरूप को स्वीकार किया। उन्होंने नारी को पतिव्रत धर्म से परिपूरित हृदय, त्याग, सेवा, ममता, कर्तव्यपरायण शील, भक्ति तथा मर्यादा से परिपूर्ण मानवीय चरित्र के रूप में वर्णन किया है।

प्रस्तावना

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने शबरीजी का चरित्र श्रीरामजी के प्रति गहन भक्ति और प्रेम का प्रतीक के रूप में स्थापित किया है। उनका श्रीरामजी के प्रति प्रेम भक्ति इस बात का प्रमाण है कि भक्ति का मार्ग किसी भी भौतिक वस्तु एवं सामाजिक स्थिति से ऊपर है। शबरीजी एक तपस्वी थी, उन्होंने अपने जीवन में सच्ची भक्ति और सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया, जो समाज में नारी के समर्पण एवं धार्मिकता का प्रमाण है। शबरी माता अपने पूर्व जन्म में एक रानी थी। राजा और रानी एक बार कुम्भ के मेले में गये थे, राजा का शिविर लगा हुआ था, वहां ऋषिओं द्वारा हवन किया जा रहा था। रानी को कुम्भ में स्नान करने एवं हवन में बैठने का मन था, इसलिए उन्होंने राजा से आज्ञा मांगी तो राजा ने रानी की मर्यादा को ध्यान में रखते उनको मना कर दिया। रानी दुःखी हो गई, एवं रात को अपने कक्ष से निकलकर त्रिवेणी तट पर गई, गंगा माँ से क्षमा मांगी एवं प्रार्थना करने लगी की अगर मुझे दूसरा जन्म मिले तो मुझे रूपवान एवं रानी मत बनाना, अब में आप में समाना चाहती हूं कहकर अपनी देह त्याग दी। अगले जन्म में उनका जन्म भील जाती के एक कबीले में वहां के मुखिया अज के कन्या के रूप में हुआ। श्रमणा नाम से जानी गई, वचपन से वह पशु-पक्षियों के साथ बहुत प्रेम रखती थी एवं उनसे अलौकिक बातें किया करती थी, जब वह बड़ी हुई, उनकी माता इन्दुमति उनकी और उनके पिता को उनकी कुछ हरकतें समझ नहीं आ रही थी। किसी ब्राह्मण की सलाह से उनकी विवाह करने का निर्णय हुआ, उनके विवाह के दावत के लिए एक बाड़े में पशु-पक्षियों को इकट्ठा किया गया। जब शबरी को अपनी माता से पता चला कि उनके विवाह के दावत के लिए ये

पशु-पक्षियों का विशाल भोज तैयार किया जाएगा। शबरी को यह बात ठीक नहीं लगी, कि उनके विवाह के लिए इतने जीवों का बलिदान होगा, उन्होंने सोचा अगर उनकी विवाह के लिए इतने जीवों की बलि दी जाएगी तो वे विवाह ही नहीं करेंगी। उसी रात्री को शबरी ने बाड़े के किवाड़ खोल कर सभी पशु-पक्षियों को आजाद कर दिया एवं वहां से भाग निकली। भागते हुए शबरी ऋषिमुख पर्वत पर पहुँच गई, जहां पर हजारों ऋषिगण रहते थे। शबरी छुपते हुए कुछ दिनों तक ऋषियों के आश्रम में सफाई एवं हवन के लिए सुखी लकड़ी आदि लाने का कार्य करती रही।

ऋषियों ने शबरी से उसका परिचय पुछा तो शबरी ने बताया की वह एक भीलनी हैं, तब ऋषि मतंग ने शबरी को अपनी बेटी कहकर एक कुटिया में शरण दी, ऋषि मतंग वृद्ध हो गये, शरीर छोड़ते समय उन्होंने शबरी को- बेटी तुम्हारा ख्याल अब राम रखेंगे। शबरी सरलता से कहती हैं-राम कौन हैं? और मैं उन्हें कहाँ ढूंढूंगी, तब ऋषि मतंग ने कहा- बेटी तुम्हे उनको खोजने की जरुरत नहीं है, राम स्वयं ही तुम्हारी कुटिया पर चलकर आएंगें। शबरी ने मतंग ऋषि के इस वचन को पकड़ लिया कि राम आएंगे, शबरी रोज भगवान के लिए फूल तोड़कर लाती, रास्ते में फूल बिछा कर रखती, उनके लिए फल तोड़कर लाती, और पुरे दिन भगवान श्रीराम का इंतजार करती, दिन बीतता गया इंतजार करते करते बूढ़ी हो गई, लेकिन राम अब तक नहीं, फिर एक दिन आया, जब शबरी के वर्षों का इंतजार खत्म हुआ, शबरी रास्ते में फुल बिछा रही थी, आते-जाते लोगों को मना कर रही थी कि इस फूल पर भगवान चलेंगे, अचानक श्रीरामजी आए शबरी के बिछाए हुए फूलों पर से चलते हुए,शबरी ने श्रीराम को एक ही नजर में पहचान लिया, उन्होंने श्रीरामजी को बहुत ही आदर-सत्कारपूर्वक आश्रम के अन्दर लाए, आसन पे बैठाकर अपने प्रेमाश्रुओं से उनके चरण धुलाकर अपने आँचल से भगवानजी के चरण पोछी, फिर एक-एक बेर चाख-चाख कर उनको खिलाएं। भगवान श्रीरामजी ने शबरी की भक्ति-श्रद्धा पर प्रसन्न हुए एवं नवोधा भक्ति का मार्ग बताएं, अन्त में उनको उनकी गुरु ऋषि मतंग के धाम को जाने की आज्ञा दिए।

अध्ययन का महत्व

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस अध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन का मार्गदर्शन करती है एवं एक सम्पूर्ण व्यावहारिक जीवन दर्शन को समेटे हुए एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने हम संसारी जीवों के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन के विभिन्न अंगों के लिए आदर्श स्थापित किया है एवं जीवन के विभिन्न अंगों को बहुत ही मर्मस्पर्शी एवं स्पष्ट ढंग से छुआ है चाहे वह परिवार के सदस्यों के परस्पर संबंधों की गरिमा-मर्यादा हो, समाज के विभिन्न वर्गो के आपसी संबंधों की मर्यादा हो अथवा राजकीय काम-काज व राजा के कर्तव्यों हो। श्रीरामचरितमानस अध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन का मार्गदर्शन के बारे में हमें माता शबरी एवं माता अहल्या प्रसंग से मिलता है, जिनके भक्ति, धैर्य, निष्ठा, एवं पवित्र जीवन के कारण स्वयं श्रीरामजी उनके पास चलकर आये एवं उनको सद्गति प्रदान की। इसलिए इस अनुकरणीय प्रसंग का अध्ययन आवश्यक है।

अध्ययन का औचित्य

आज तक श्रीरामचरितमानस अध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन का मार्गदर्शन के बारे में बहुत से अध्ययन कार्य हंआ है। परन्तु हमें माताशबरी एवं माता अहल्या प्रसंग पर कोई विशेष अध्ययन की जानकारी नहीं मिलती है। इसलिए इस प्रसंग से प्राप्त ज्ञान का लाभ समाज को मिले है, भक्ति, धैर्य, निष्ठा, एवं पवित्र जीवन के कारण स्वयं श्रीरामजी उनके पास चलकर आये एवं उनको सद्गति प्रदान की। इसलिए इस अनुकरणीय प्रसंग का अध्ययन सामाजिक उन्नति विशेष कर नारी समाज को एक सकारात्मक जीवन का ओर मार्गदर्शन के लिए उचित है।

समस्या कथन:-''गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री श्रीरामचरितमानस में वर्णित शबरीजी एवं अहल्याजी को दिए गये भक्ति उपदेशों अध्ययन करना।''

अध्ययन का उद्देश्य

श्रीरामचरितमानस आध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यवहारिक जीवन का मार्गदर्शन में माता शबरी एवं माता अहल्या के प्रसंग का शैक्षिक निहितार्थ का आधुनिक संदर्भ में अध्ययन करना।

प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या

श्रीरामचरितमानस

श्रीरामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा 16 वीं सदी में रचित प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम है। इस महाकाव्य की भाषा अवधि है। श्रीरामचरितमानस को श्रीरामजी के कर्मों की झील कहा गया है। इस ग्रंथ को अवधी साहित्य की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यतः 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। श्रीरामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। श्रीरामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस में श्रीरामजी को भगवान विष्णु का अवतार माना है। श्रीरामचरितमानस को गोस्वामीजी सात काण्डों में विभक्त किया। इन सात काण्डों के नाम- बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड है। छंदों की संख्या के अनुसार बालकाण्ड सबसे बड़ा एवं किष्किन्धाकाण्ड सबसे छोटा हैं। श्रीरामचरितमानस हिन्दुओं का पवित्र ग्रंथ हैं।

भक्ति

भक्ति शब्द का अर्थ एवं-भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'सेवा करना' या 'भजना' है, अर्थात् श्रद्धा और प्रेमपूर्वक ईष्ट देवता के प्रति आसक्ति। परिभाषा-''भक्ति भक्त भगवन्त गुरु। चतुर नाम बपु एक।।" "नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।"- अर्थात अपने सब कर्मो को भगवान को अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। भारतीय साहित्य में भक्ति का उदय वैदिक काल से ही दिखाई पड़ता है। भक्ति शब्द की उत्पत्ति सबसे पहले वेदों में हुई थी। व्यासजी द्वारा भागवत गीता में भक्ति शब्द का व्यापक प्रयोग किया गया हैं। भक्ति हिन्दु धर्म की प्रमुख अवधारण में से एक है। भक्ति की परिभाषा देते हुए नारदजी ने कहा है कि ईश्वर में परम-प्रेम भक्ति है। भक्ति के तीन स्वरूप है- सत, तम, रज। इनके अनुसार-सात्विक, राजसिक एवं तामसिक ये तीन प्रकार के भक्ति होते है। इसके अनुसार भक्ति- क्रमशः आर्त भक्ति, जिज्ञासा भक्ति एवं अर्थार्थी भक्ति। भक्ति के स्वरूप विश्लेषण करते हुए नारदजी ने पूर्व आचार्यों द्वारा बताए मत उद्धत किए है। उनके अनुसार ईश्वर में अनुराग, कथा में अनुराग और आत्मरम्यता है। इसमें आत्मरम्यता श्रेष्ठ हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जिसके होने पर ही अन्य सभी लक्षण सच्चे अर्थ में भक्ति लक्षण बन जाते है।

उपदेश

उपदेश शब्द का अर्थ है-शिक्षा, सीख, नसीहत, हित की बात का कहना, दिक्षा या गुरुमंत्र। शब्द-साधन के अनुसार उपदेश शब्द के विभिन्न, सम्बन्धित अर्थ है-जैसे-सूचना, स्पष्टीकरण, विनिर्देश, नुस्खा, निर्देश, मार्गदर्शन, आदि। उपदेश शब्द लेटिन के प्रे, जिसका अर्थ है पहले, और डिकेयर, जिसका अर्थ घोषणा है। उपदेश केवल मात्र बात कहना नहीं होता है, अपितु-दृढ़ विश्वास के साथ कुछ घोषित करना होता। अतः विद्वानों द्वारा धर्म तथा नीति सम्बन्धी, सत्कर्म के लिए प्ररित करने वाले वचन उपदेश है।

शैक्षिक -शैक्षिक शब्द का अर्थ है- स्कूल, विद्यालय, विद्वान या शिक्षा से सम्बन्धित जानकारी, तथ्य, ज्ञान, सूचना और उपलब्धियां आदि।

निहितार्थ- निहितार्थशब्द का अर्थ है, स्पष्ट रूप से बताए बिना कुछ सुझाना या किसी ऐसी चीज को संदर्भित करना जो निहित या सुझाई गई हो। निहितार्थ शब्द के कई अर्थ होते है-निहितार्थ का प्रयोग आरोपित करने के कार्य या आरोपित

होने की स्थिति को संदर्भित करने के लिए किया जाता है; अकादमिक लेखन में, किसी अध्ययन के संभावित प्रभाव या प्रभाव को संदर्भित करने के लिए निहितार्थ शब्द का प्रयोग किया जाता है; जब बहुवचन में प्रयोग किया जाता है, तो निहितार्थ ऐसे प्रभाव या परिणाम होते हैं, जो भविष्य में हो सकते है; शोध में निहितार्थ को स्पष्ट रूप से बताना जरूरी है, इससे समीक्षक या पाठक को पता चलता है कि शोध क्यों मायने रखता है। निहितार्थ हमेशा मौखिक होता है, एक गैर-मौखिक प्रतिक्रिया यह दिखा सकती है कि अप्रत्यक्ष संदेश (निहितार्थ) को प्राप्तकर्ता द्वारा सटीक रूप से व्याख्या किया गया था। निहितार्थ वह होता है जो अप्रत्यक्ष रूप से समझाया जाता है या घटित होता है।

अध्ययन विधि

शोध समस्या को चयन करने के बाद शोध विधि का चयन करना महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। शोधविधि उपयूक्त न होने पर शोध के सार्थक परिणाम नहीं आते हैं। अतः दार्शनिक अनुसंधान में अधिकांशतः विवरणात्मक, व्याख्यानात्मक एवं ऐतिहासिक एवं घटनोत्तर विघियों का ही प्रयोग होता है।

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु व्याख्यानात्मक, ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विधि का अनुसरण करते हुए विषयवस्तु विश्लेषण के माध्यम से शोधकार्य को सम्पन्न किया जाना है।

परिसीमन

प्रस्तुत शोध का विषय शिक्षा-दर्शन है, अतः इसमें दर्शन व विषय से संबंधित तथ्यों एवं विचारों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं को ही शामिल किया गया हैं।

शोध में सम्पूर्ण रामचरितमानस में से केवल मात्र कुछ ही प्रसंग को लिया गया है। जिनमें शबरीजी एवं अहल्याजी, से संबंधित भक्ति उपदेशों का ही शैक्षिक निहितार्थ का अध्ययन किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन

शोधार्थी के लिए यह आवश्यक है की शोधकार्य प्रारम्भ से पूर्व, अपने शोध विषयवस्तु से सम्बन्धित पूर्व अनुसंधित शोधकार्यो का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर ज्ञान प्राप्त कर लें ताकि शोधकार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें। जिस प्रकार एक कुशल वैज्ञानिक को विज्ञान के क्षेत्र में हुए समस्त आविष्कारों ज्ञान होना आवश्यक है ठिक उसी प्रकार एक शोधार्थी के लिए शैक्षिक ज्ञान के स्रोत एवं प्रयगों से परिचित होना आवश्यक है। किसी भी अनुसंधान में चाहे वह सामाजिक हो या नैतिक हो, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करना को प्रथम चरण माना जाता है इसके अभाव में शोधकार्य कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। शोध कार्य से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण माना जाता कि उससे शोधकर्ता को यह विदित हो जाता है कि जिस विषय पर वह शोध करने जा रहा है उस पर पहले कितना कार्य हो चुका है और क्या किया जाना शेष है। सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किए बिना शोधार्थी अगर अपना शोधकार्य करता है तो वह शोधार्थी के लिए अंधेरे में तीर चलाने के समान होता है। जब तक शोधार्थी को यह ज्ञान नहीं होता है कि सम्बन्धित क्षेत्र में कितना कार्य हुआ है, किस विधि से हुआ है, तथा इसके क्या परिणाम प्राप्त हुआ है, तब तक शोधार्थी न तो समस्या का निर्धारण कर सकता है और न ही उपयुक्त रूपरेखा ही तैयार कर उस कार्य को सफलता एवं शुद्धतापूर्वक पूर्ण सकते है। पण्डेय, रामनारायण (2008) ''मूलरामायण'' गीताप्रेस, गोरखपुर। कपूर, अर्चना (2009) ने ''पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन".डी. ई. आई. दयालवाग.अगरा। अग्रवाल, विकास.(2010) ''मर्यादा सीखे राम से"। डॉ.गौरी, महूलिकर.(2004)."रामायण का विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं पर प्रभाव का अध्ययन". www.google.com.Ramayan Research. कुप्पूस्वामी और ललिता.(2005). ''आध्यात्म रामायण और वाल्मीकीय रामायण का तुलनात्मक अध्ययन".विद्यानिधि प्रकाशन.www.mediabookmart.com तिवारी, नीलव (2006) ने ''रामायण का पठन व नैतिक मूल्यों में सुधार'' www.hvk.org. इन शोधों के अध्ययन से ये निष्कर्ष मिला की माताशबरी एवं माता अहल्याा के प्रसंग का अध्ययन कार्य नहीं हुआ है। अतःप्रस्तुत विषय- ''गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री श्रीरामचरितमानस में

वर्णित शबरीजी एवं अहल्याजी को दिए गये भक्ति उपदेशों अध्ययन करना।" पर अध्ययन करने का निश्चय किया।

शबरीजी एवं अहल्याजी को दिए गये भक्ति उपदेशों का शैक्षिक निहितार्थ

तहि देई गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा।।
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए।

परम कृपालु श्रीरामचन्द्रजी कबंध नामक राक्षस जो एक गन्धर्व थे, ऋषि दुरबासा से शापित थे उनको अपने चरणकमलों के दर्शन से पाप मुक्त किया एवं उसको उसका असली स्वरूप प्रदान करके उसको सद्गति दिया, तत्पश्चात शबरीजी के आश्रम में पधारे। शबरीजी ने श्रीरामचन्द्रजी को घर में आए देखा, तब अपने गुरु ऋषि मतंगजी के वचनों को याद करके उनका मन प्रसन्न हो शबरी जी अपने गुरु मतंग ऋषि के आश्रम की महिमा का वर्णन करती हैं। वे कहती हैं कि गुरु के पवित्र कथन और उनके आश्रम के प्रभाव के कारण ही भगवान राम यहां पधारे हैं। आश्रम में साधक, सिद्ध और तपस्वी लोग निवास करते हैं, जो सभी इस पवित्र स्थान की महत्ता को देखते हैं। यह चौपाईशबरी जी की विनम्रता और दनके गुरु के प्रति श्रद्धा को दर्शाती है। यह मतंग ऋषि के आध्यात्मिक प्रभाव को भी रेखंकित करती है, जिन्होंने, शबरी को राम भक्ति का मार्ग दिखाया। यह गुरु-शिष्य परंमरा और आश्रम की आध्यात्मिक शक्ति के महत्त्व को बताता है। शबरीजी कहती हैं कि श्रीरामजी के दर्शन के विषय में उनके हृदय में कोई संदेह नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने गुरु मतंग ऋषि के वचनों को सुना और उसी के अनुसार कार्य किया। यह सुनकर भगवान श्रीराम, जो कृपा के सागर हैं, मुस्कुराए और कृपापूर्वक वचन बोले। यह चौपाई शबरीजी के दिल में अपने गुरु के प्रति अटूट विश्वास और उनकी शिक्षाओं के प्रति समर्पण को दर्शाती है। श्रीरामजी की उनकी भक्ति की स्वीकृति का प्रतीक है। इस प्रसंग से भक्ति मार्ग में गुरु की भूमिका और शिष्य के विश्वास के मूल्य का समझ होता है। कमल के सदृश नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं के मुकुट और हृदय पर बनमाला धारण किए हुए सुन्दर साँवले और गौर दोनों भाइयों के चरणें में शबरीजी लिपट पड़ी एवं प्रेम मग्न हो गई, मुख से वचन नहीं निकल रहा, बार-बार चरण कमलों में सिर नवा रही हैं फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया। उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर स्वयं खाकर-चाखकर श्रीरामजी को खिलाती रही। प्रभु श्रीरामजी बार-बार प्रशंसा करते हुए प्रेम सहित खाये।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

भगवान श्रीरामजी माता शबरी को बोले,- में अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधन होकर सुन और मनमें धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम हो।

"गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।"

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरणकमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे।

"मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।"

इस चौपाई में श्रीरामचन्द्रजी अपने श्रीमुख से यह कहते है कि मेरे (राम) मन्त्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास-यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील, बहुत कार्योसे वैराग्य और निरंतर संत पुरुषोंके धर्म में लगे रहना। अतः एक भक्त को चाहिए कि वैराग्य एवं भक्तिपूर्वक अपने ईष्ट के प्रति विश्वास को निरन्तर बनाएं रखे।

"सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।"

सातवीं भक्ति है पूरे जगत को राममय समझना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो

कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष करना और सप्न में भी पराये दोषों को न देखना।

''नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।''

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित व्यवहार करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और विषाद का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो। अर्थात भगवान के प्रियपात्र भक्त बनने के लिए भगवानजी के श्रीमुख से कही हुई सभी बातों को अपन मन, कर्म एवं वचन में धारण एवं पालन करना अनिवार्य है।

अहल्याजी

हिन्दु परम्परा में सृष्टि की पवित्रतम पंचकन्याओं में अहल्याजी एक कन्या है। इन पंचकन्याओं को प्रातः स्मरणीय माना जाता है। मान्यता के अनुसार प्रातःकाल इन पंचकन्याओं का नाम स्मरण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाते है। सनातन धर्म की कथाओं में वर्णित अहल्या, गौतम ऋषि की पत्नी थी। अन्य कथाओं की तरह श्रीरामचरितमानस में भी इनकी विस्त्रित जानकारी मिलती है। कथाओं के अनुसार अहल्याजी गौतम ऋषि की पत्नी थी एवं ब्रह्माजी की मानसपुत्री थी। ज्ञानमंडल, वाराणसी प्रकाशित आधुनिक शब्दकोष 'अहल्या' शब्द का अर्थ लिखते हैः 'हल' का अर्थ है-'कुरूप', अतः 'कुरूपता' न होने के कारण ब्रह्माजी ने इन्हें अहल्या नाम दिया। संस्कृत शब्दकोष के अनुसार 'अहल्या' शब्द का अर्थ है-'ऐसी भूमि, जिसे जोता न गया हो'। ब्रह्माजी ने अहल्याजी को संसार का सबसे सुन्दर बनाया, सभी देवता उनसे विवाह करना चाहते थे। ब्रह्माजी ने शर्त रखी कि जो सबसे पहले त्रिलोक का भ्रमण कर आएगा वही अहल्या का वरण करेगा। इन्द्र अपनी सभी चमत्कारी शक्ति द्वारा सबसे पहले त्रिलोक का भ्रमण कर आये। लेकिन तभी नारदजी ने ब्रह्माजी को बताया कि ऋषि गौतम ने इन्द्र से पहले किया है। नारदजी ने ब्रह्माजी को बताया कि अपने पूजा क्रम में ऋषि गौतम ने गाय माता का परिक्रमा करते समय बछड़े को जन्म दिया। वेदानंसार इस अवस्था में गाय की परिक्रमा करना त्रिलोक परिक्रमा समान होता है। इस तरह अहल्या की शादी अत्रि ऋषि के पुत्र ऋषि गौतम से हुआ। एक दिन जब गौतम ऋषि आश्रम के बाहर नदी में स्नान करने गये थे, तब उनकी अनुपस्थिति में इन्द्र गौतम ऋषि के वेश धारण करके वहां आकर अहल्या से प्रणय याचना की। अहल्या ने इन्द्र को पहचान लिया और प्रणय हेतु अपनी स्वीकृति नहीं दी। तभी स्नान करके वापस आते हुए गौतम ऋषि की दृष्टि उन्हीका वेश धारण किये हुये इन्द्र पर पड़ी। उन्होंने इन्द्र को शाप दे दिया। इसके बाद उन्होंने बिना विचार किए ही क्रोधवश अपनी पत्नी को भी शाप दे दिया कि तू हजारों वर्षो तक केवल हवा पीकर कष्ट उठाती हुइ यहां राख में पड़ी रहे। जब राम इस वन में प्रवेश करेंगे तभी उनकी कृपा से तेरा उद्धार होगा। तभी तू अपना पूर्ब शरीर धारण करके मेरे पास आ सकेगी। यह कहकर गौतम ऋषि आश्रम छोड़कर हिमालय पर जाकर तपस्या करने लगे।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखि। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।

जिस समय श्रीरामजी धनुष यज्ञ की बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी के साथ प्रसन्न होकर चले उस समय मार्ग में एक आश्रम दिखायी पड़ा। वहां पशु-पक्षी, या कोई भी जीब-जंतु नहीं था। पत्थर की एक शिला को देख कर प्रभुने पूछा, तब मुनिजी ने उस पत्थर से संबन्धित सब कथा विस्तार पूर्वक कहीं।

गौतम नारी श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

मुनि श्री विश्वामित्रजी श्रीरामजी से बोले, गौतमऋषि की पत्नि अहल्याजी शापवश पत्थर की देह धारण किए बड़े धीरज से आपकी प्रतिक्षा कर रही हैं, आपके चरणकमलों की धूलि चाहती हैं। हे रघुवीर, इस पर कृपा कीजिये।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहीं आपइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।।
धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई।।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई।।

श्रीरामजी के पवित्र और शोक को नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही तुरन्त वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। भक्तों को सुख देने वाले श्रीरघुनाथजी को देखकर वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी। अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गयी। उसका शरीर पुलकित हो उठा मुख से वचन कहने में नहीं आ रहे थे।वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभु के चरणों से लिपट गयी। और उसके दोनों नेत्रों से प्रेम और आनन्द के आँसुओं की धारा बहने लगी।

फिर उसने मनमें धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और श्रीरघुनाथजी की कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से उन्होंने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की-हे ज्ञान से जानने योग्य श्रीरघुनाथजी, आपकी जय हो। मैं अपवित्र स्त्री हूँ , और आप जगत् को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुख देने वाले और रावणके शत्रु है, हे कमलनयन, हे संसार के भय से छुड़ानेवाले, मैं आपकी शरण आयी हूँ , मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।

मुनि श्राप जो दिन्हा अति बल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन इहइ लाभ संकर जाना।।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।

अहल्याजी कहती है- मुनिने जो मुझे शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे उनका अत्यन्त अनुग्रह मानती हूँ की जिसके कारण मैंने संसार से छुड़ानेवाले श्रीहरि को नेत्र भरकर देखा। आपके दर्शन को शंकरजी सबसे बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो, मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है, हे नाथ, मैं कोई और वर नहीं मांगती, केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मन रूपी भौंरा आपके चरण कमल की रजके प्रेमरूपी रसका सदा पान करता रहें।

जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरि।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरू पावा गै पति लोक अनंद भरी।।

जिन चरणों से परम पवित्र देवनदी गंगाजी प्रकट हुईं, जिन्हें शिवजीने सिरपर धारण किया और जिन चरण कमलों को ब्रह्माजी पूजते हैं, कृपालु हरि ने उन्हीं चरणों को मेरे सिर पर रखा। इस प्रकार स्तुति करती हुई बार बार भगवान के चरणों में गिरकर, जो मन को बहुत ही अच्छा लगा, उस वर को पाकर ऋषि गौतम की स्त्री अहल्या आनन्द में भरी हुई पतिलोक को चली गयी।

अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहिं भजु छाड़ि कपट जंजाल।।

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दिनबन्धु है जो बिना कारण ही दया करने वाले हैं। तुलसीदासजी कहते है, हे सठ/मन, तू कपट जंजाल छोड़कर उन्हींका भजन कर।

शबरी ने अपना पूरा जीवन भगवान श्रीराम की प्रतिक्षा में समर्पित कर दिया और उन पर अटूट विश्वास रखे, उनका

यह समर्पण ही भक्ति का सर्वोच्च सोपान है। यह प्रसंग हमें सामाजिक समानता एवं समरसता के महत्व को दर्शाती है। शबरी भील समाज से होने पर भी उनकी भक्ति इतनी सच्ची थी कि वे सभी भक्तों में श्रेष्ठ मानी गईं। नवधा भक्ति का उपदेश भगवान श्रीराम ने उनके माध्यम से ही पूरे संसार को दिये है। भगवत्-भक्ति प्राप्त करने के जो नौ मार्ग उनको बताये है, जिनमें श्रवण, कीर्तन, सत्संग, गुरुसेवा, ईश्वर के नाम स्मरण, अर्चन, वंदन, दासत्वभाव, आत्मनिवेदन अर्थात ईश्वर पर विश्वास प्रमुख हैं। इन नौ मार्ग को अपनाकर भक्त अपने निश्छल प्रेम और विश्वास मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है। ये सभी गुण जिसमें हो वो निःसंन्देह ही भगवान के कृपा का पात्र हो जाएंगे। शबरी को अपनी अटूट भक्ति, समर्पण और श्रीराम पर पूर्ण विश्वास के कारण मोक्ष की प्राप्ति हुई, जो एक साधारण भक्त के लिए दुर्लभ था।

श्रीरामचरितमानस में अहल्या का प्रसंग बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें एक निरपराध को सजा मिल जाती है, परन्तु वो सजा उनके लिए परम कल्याण करने वाला बन जाता है। इस प्रसंग से हमें ईश्वर की असीम कृपा, भक्ति और करूणा का महत्व का पता चलता है। बाहरी दिखावे पर भरोसा करके क्रोध के वशीभूत होकर अनजाने से लिए गये निर्णय अहल्या को पत्थर का रूप धारण करके वर्षो तक सिर्फ हवा पीकर तपस्या करने की सजा काटनी पड़ी, परन्तु इस सजा का सर्वोत्तम सुख देने वाला पक्ष ये भी था की उनकी मुक्ति स्वयं भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों के स्पर्श पाकर ही होगा। इस प्रसंग से हमें कई सीख मिलती है। जैसे गलत धारणाओं से बचना चाहिए, जैसा की इस प्रसंग में देखने को मिलता है की ऋषि गौतम के क्रोध पर नियत्रण न होने के कारण उनकी पत्नी अहल्या को वर्षों तक कठोर अभिशप्त जीवन काटना पड़ा। गलत धारणाओं से बचा जाए क्योंकि जिन अहल्याजी के चरित्र पर सवाल उठाया जा रहा था, उन अहल्याजी को भगवान श्रीराम ने बिना कुछ कहे या जाने ही उन्हें शापमुक्त कर दिया। अतः हमें किसी पर अहेतु की गलत फहमी नहीं रखना चाहिए। क्रोध पर नियंत्रण होना चाहिए। सज्जनों का संग का महत्व हमें इस प्रसंग से सिखने को मिलता है। श्रीरामजी एवं लक्ष्मणजी को विश्वामित्रजी के साथ अयोध्या से निकले एवं उनके सान्निध्य में रहते हुए कई राक्षसों का बध किए एवं उनको गति दी। इसी क्रम में उन्होंने अहल्याजी को भी अभिशापमुक्त किये एवं उनके पति गौतम ऋषि के पास उनको भेज कर उनको सद्गति प्रदान किये।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से शोधार्थी ने पाया कि भक्ति में, जाति-पाति, कुल-धर्म, धनवान-निर्धन आदि सामाजिक बंधनों का कोई महत्व नहीं है। बल्कि अटूट विश्वास, धैर्य, निश्छल प्रेम, समर्पण और सरलता ही महत्वपूर्ण है। यह प्रसंग हमें यह सिखाता है कि सच्ची भक्ति से कोई भी व्यक्ति इश्वर को प्राप्त कर सकता है, जैसा कि शबरी ने अपनी अगाध भक्ति के बल पर प्राप्त किये है। शबरी प्रसंग से हमें प्रमुख शिक्षा प्राप्त होते है- भक्ति के आगे सब गौण है, शबरी के जूठे बेर खाकर प्रभु श्रीराम ने यह सिद्ध किया कि भक्ति और प्रेम के आगे सारे सामाजिक नियम और परम्पराएं अर्थहीन हैं। भक्ति का महत्व का पता चलता है। अहल्याजी को अपने पति के श्राप एवं इंद्र के धोखे से कष्ट झेलने पड़े, बाद में श्रीराम के दर्शन से मोक्ष मिला, जो दर्शाता है कि भक्ति और भगवान की शरण ही मुक्ति का मार्ग है। ईश्वर की कृपा प्राप्त करके उद्धार होना प्राणी मात्र का आखिरी आकांक्षा है। अहल्याजी के भक्ति निश्छल जीवन के कारण भगवान श्रीराम अपने असीम कृपापूर्ण चरण स्पर्श प्रदान कर उन पर करुणा की, उनको सद्गति दी। अतः यह प्रसंग निश्छल प्रेम, भक्ति द्वारा भगवान की कृपा प्राप्त करके अपने जीवन को करने से उद्धार पाने का सौभग्य प्राप्त करने की आशा एवं उम्मीद हम में जगाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी जीवन में जाति-पाति, कुल-धर्म, धनवान-निर्धन इन बातों कोई अन्तर नहीं होता है। विद्यार्थी पूर्ण श्रद्धा, भक्ति, समर्पण, दृढ़ निश्चय एवं एकाग्रचित्त होकर अध्ययन करेगा तो निश्चय ही उसे सफलता मिलेगी।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा न.33.चौपाई न.3
2. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा न.34. चौपाई न.1
3. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा न.35
4. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा न.35. चौपाइ नं 1
5. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा न. 35. चौपाई नं 2
6. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. अरण्यकाण्ड, दोहा नं 35. चौपाई नं 3
7. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.209. चौपाइ नं 6
8. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210.
9. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 1
10. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 2
11. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 3
12. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 4
13. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 5
14. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 6
15. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 7
16. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश. बालकाण्ड, दोहा न.210. चौपाइ नं 8
17. गोस्वामी, तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर. गीताप्रेश.बालकाण्ड, दोहा न.211.
18. पाण्डेय, रामनारायण (2008) ‘‘मूलरामायण” गीताप्रेस, गोरखपुर।
19. कपूर, अर्चना (2009) ने ‘‘पारिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन”.डी. ई. आई. दयालवाग.अगरा।
20. अग्रवाल, विकास.(2010) ‘‘मर्यादा सीखे राम से”।
21. डॉ.गौरी, महूलिकर.(2004).”रामायण का विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं पर प्रभाव का अध्ययन”-www.google.com.Ramayan Research.
22. कुप्पूस्वामी और ललिता.(2005).”आध्यात्म रामायण और वाल्मीकीय रामायण का तुलनात्मक अध्ययन”.विद्यानिधि प्रकाशन-www.mediabookmart.com
23. तिवारी, नीलव (2006) ने ‘‘रामायण का पठन व नैतिक मूल्यों में सुधार’’ www.hvk.org.
24. Dictionary. Com. - विकिपीडिया
25. https://www.shabdkosh.com
26. https://www.shabdkosh.com
27. गोस्वामी, तुलसीदास. (1631) विकिपीडिया

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

झुंझुनू जिले में अनाज, दलहन और तिलहन फसलों के अंतर्गत फसल प्रतिरूप

रीनू कुमारी
सहायक आचार्य, वीर वीरमदेव राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जालौर
शोधकर्ता, लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी, अलवर

शोध सारांश

झुंझुनू जिले की भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों के बावजूद इस क्षेत्र का कृषि परिदृश्य अनाज, दलहन, और तिलहन फसलों की व्यापक विविधता प्रस्तुत करता है। इस शोध का उद्देश्य झुंझुनू जिले में इन फसलों के अंतर्गत भूमि उपयोग के स्वरूप और सिंचित-असिंचित क्षेत्र के अनुपात का विश्लेषण करना है। वर्ष 2016-17 के आंकड़ों के आधार पर विभिन्न जोतधारकों के पास उपलब्ध भूमि के अध्ययन से यह पाया गया कि अनाज और दलहन की फसलों में सीमांत और लघु जोतधारकों के पास असिंचित भूमि का अनुपात अधिक है, जबकि बड़े जोतधारकों के पास सिंचित क्षेत्र का उच्च अनुपात है। इसके विपरीत, तिलहन की खेती में सभी जोत श्रेणियों में सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक पाया गया, जो बेहतर सिंचाई सुविधाओं को इंगित करता है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है, कि तिलहन की खेती में अनुकूल सिंचाई सुविधाओं के बावजूद अनाज और दलहन की फसलों के लिए सिंचाई प्रबंधन की चुनौती बनी हुई है। सीमांत और लघु जोतधारकों के लिए सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और जल प्रबंधन तकनीकों के उन्नयन की आवश्यकता है। जल संरक्षण उपायों के साथ आधुनिक सिंचाई तकनीकों को अपनाने से कृषि उत्पादन में सुधार किया जा सकता है। यह शोध झुंझुनू जिले में फसल नियोजन और संसाधन प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है और कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयुक्त नीतियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

शब्द कुंजी : कृषि प्रतिरूप, अनाज फसल, दलहन फसल, तिलहन फसल, सिंचाई प्रतिरूप और खाद्यान्न फसल।

शोध परिचय

किसी भी क्षेत्र के कृषि परिदृश्य को समझने के लिए उस क्षेत्र के फसल प्रतिरूप का अध्ययन आवश्यक है। राजस्थान में स्थित झुंझुनू जिला अपनी शुष्क और अर्ध-शुष्क जलवायु के पश्चात भी पारंपरिक और आधुनिक कृषि पद्धतियों के माध्यम से व्यापक कृषि विविधता को प्रदर्शित करता है। यही कारण है, कि अनाज, दालों और तिलहन की खेती जिले की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो स्थानीय किसानों की आजीविका और क्षेत्रीय खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देती है। गेहूँ, बाजरा और जौ जैसे अनाज झुंझुनू में मुख्य खाद्य फ़सलें हैं, जबकि चना और मूंग जैसी दालें महत्वपूर्ण प्रोटीन स्रोत के रूप में काम करती हैं। तिलहन, विशेष रूप से सरसों, अपने आर्थिक महत्व और अर्ध-शुष्क जलवायु के लिए उपयुक्तता के कारण जिले के फ़सल प्रतिरूप में भी प्रमुख हैं। इन फ़सलों का चयन और वितरण कई कारकों से प्रभावित होता है, जिसमें

वर्षा परिवर्तनशीलता, मिट्टी का प्रकार, सिंचाई की उपलब्धता, बाज़ार की माँग और सरकारी कृषि नीतियाँ शामिल हैं। यही कारण है, कि जिले में सर्वाधिक भूमि अनाज फसलों के अंतर्गत नियोजित होती है, क्योंकि इन फसलों पर न केवल सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) प्राप्त होता है, अपितु ये फसलें स्थानीय खाद्य सुरक्षा को भी सुनिश्चित करती है। इस शोध का उद्देश्य झुंझुनू जिले में अनाज, दलहन और तिलहन के फसल के क्षेत्रफल का विश्लेषण करना है, जिसमें सिंचित क्षेत्रफल और असिंचित क्षेत्रफल दोनों सम्मिलित है, जिससे स्थानिक स्तर पर फसल प्रतिरूप का अध्ययन कर रुझानों और चुनौतियों की पहचान करके जिले में फसल नियोजन और संसाधन प्रबंधन को अनुकूलित करने की दिशा में अंतर्दृष्टि प्रदान की जा सके।

मानचित्र-1

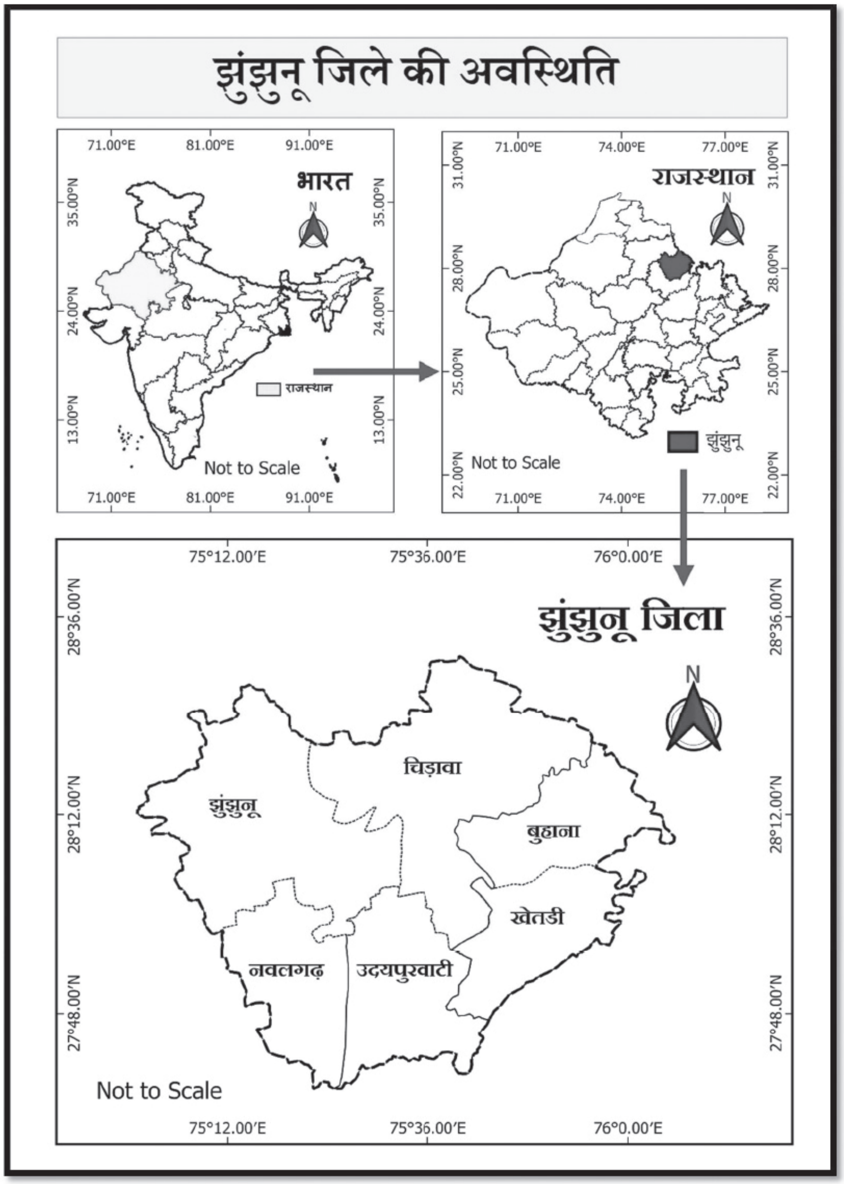

अध्ययन क्षेत्र

झुंझुनू का इतिहास चौहान, कायमखानियों और शेखावतों सहित विभिन्न राजवंशों के शासन से समृद्ध है। शेखावत राजपूतों के प्रभुत्व के तहत मध्यकाल के दौरान इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व बढ़ा। यह जटिल भित्तिचित्रों, बावड़ियों और मंदिरों से सजी अपनी भव्य हवेलियों के लिए प्रसिद्ध है, जो राजपूत और मुगल स्थापत्य शैली के अनूठे मिश्रण को दर्शाते हैं। भारतीय सशस्त्र बलों में बड़ी संख्या में सेवारत सैनिकों के कारण इसे 'वीर भूमि' उपनाम मिला है। झुंझुनू राजस्थान के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित है। लगभग 5,928 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले झुंझुनू की सीमा उत्तर-पूर्व और पूर्व में हरियाणा राज्य, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में सीकर जिले और उत्तर-पश्चिम और उत्तर में चुरू जिले से लगती है। झुंझुनू जिला 27°38' से 28°31' अक्षांश और 75°2' से 76°6' देशांतर के मध्य स्थित है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊंचाई 450 मीटर है। सांस्कृतिक दृष्टि से झुंझुनू जिला राजस्थान के शेखावाटी अंचल में स्थित है, वहीं भौगोलिक दृष्टि से यह जिला राजस्थान के पश्चिमी अर्ध-शुष्क भाग में स्थित है, जिसमें मुख्य रूप से रेतीले इलाके, लहरदार रेत के टीले और थार रेगिस्तान क्षेत्र के विशिष्ट शुष्क परिदृश्य हैं। अरावली पहाड़ियाँ जिले के परिदृश्य का हिस्सा हैं, जो इसकी भौगोलिक विविधता में योगदान देती हैं। जिले में उपोष्ण कटिबंधीय अर्द्ध शुष्क जलवायु पाई है, जिसमें चिलचिलाती गमी और ठंडी सर्दियाँ होती हैं। वर्षा सीमित होती है, जो मुख्य रूप से मानसून के मौसम में होती है।

2011 की जनगणना के अनुसार, झुंझुनू जिले की जनसंख्या 2,137,045 है, तथा जनसंख्या घनत्व 361 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। लिंगानुपात प्रति 1,000 पुरुषों पर 950 महिलाओं का है, तथा साक्षरता दर 74.72% है, जिसमें पुरुष साक्षरता 86.75% तथा महिला साक्षरता 59.77% है। लगभग 77.11% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जबकि 22.89% शहरी केंद्रों में रहती है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियाँ क्रमशः जनसंख्या का 16.88% और 1.95% हिस्सा हैं। आबादी में मुख्य रूप से हिंदू हैं, जबकि मुस्लिम, जैन और सिखों के छोटे समुदाय हैं। जिले की विशेषता मजबूत ग्रामीण बस्तियाँ हैं, जहाँ कृषि मुख्य व्यवसाय है। झुंझुनू में राजपूत, जाट, ब्राह्मण और अन्य समुदायों का महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व है, जो इसके विविध सामाजिक ताने-बाने में योगदान देता है। कृषि झुंझुनू की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है, यहाँ की अधिकांश आबादी खेती और उससे जुड़ी गतिविधियों में लगी हुई है। यहाँ की मुख्य फ़सलों में बाजरा, गेहूँ, जौ और दालें शामिल हैं। हाल के वर्षों में, आय के स्तर को बढ़ाने के लिए बागवानी और नकदी फ़सलों की खेती की ओर रुझान बढ़ा है।

शोध विधि

यह शोधपत्र पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। इस शोधपत्र में मुख्यतरू झुंझुनू जिले में अनाज, दलहन और तिलहन के फसल के अंतर्गत नियोजित क्षेत्रफल के आँकड़ों का उपयोग किया गया है, जिसमें सिंचित क्षेत्रफल और असिंचित क्षेत्रफल दोनों सम्मिलित है। ये सभी आँकड़ें 'कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार' के ऑनलाइन डाटा पोर्टल से प्राप्त किए गए हैं।

यह शोधपत्र 6 चरणीय विवरणात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है। जिसके प्रथम चरण में शोध के उद्देश्य और प्रश्नों की पहचान की गई है। द्वितीय चरण में शोध समस्या से संबंधित उपलब्ध साहित्य की समीक्षा की गई है। अनुसंधानकर्ता द्वारा तृतीय चरण में शोध डिजाइन तैयार किया गया है। इसी प्रकार चतुर्थ चरण में शोध समस्या से संबंधित तथ्यों, सूचनाओं और आंकड़ों का संकलन किया गया है। पंचम चरण में उपलब्ध तथ्यों, सूचनाओं और आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है और छठे तथा अंतिम चरण में इस शोधपत्र का लेखन कार्य संपादित किया गया है।

शोध परिणाम एवं परिचर्चा

तालिका में कृषि जोत के आकार का विभाजन किया गया है। यह विभाजन कृषि जनगणना के माध्यम से भारत सरकार

के कृषि और किसान कल्याण विभाग द्वारा किया गया है। इसमें सीमांत जोत से लेकर बड़ी जोत तक की श्रेणियां दी गई हैं–

तालिका 1 : कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार द्वारा कृषि जोत के आकार का विभाजन

जोत का प्रकार	जोत का आकार
सीमांत	1.0 हेक्टेयर से कम
लघु	1.0 से 2.0 हेक्टेयर
अर्द्ध मध्यम	2.0 से 4.0 हेक्टेयर
मध्यम	4.0 से 10.0 हेक्टेयर
बड़ी	10.0 हेक्टेयर से अधिक

स्रोत : कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

झुंझुनू जिले में वर्ष 2016-17 के दौरान अनाज की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल के आंकड़ों का विश्लेषण करते हुए देखा जाता है, कि सीमांत जोतधारकों के पास 46247 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें से 12191 हेक्टेयर भूमि अर्थात 26.36% सिंचित है और 34056 हेक्टेयर भूमि अर्थात 73.64% असिंचित है। लघु जोतधारकों के पास कुल 90524 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें से 27081 हेक्टेयर भूमि अर्थात 29.92% सिंचित है जबकि 63443 हेक्टेयर भूमि अर्थात 70.08% असिंचित है।

अर्द्ध मध्यम श्रेणी में जोतधारकों के पास कुल क्षेत्रफल 106571 हेक्टेयर है, जिसमें से 35245 हेक्टेयर भूमि अर्थात 33.07% सिंचित है तथा 71326 हेक्टेयर भूमि अर्थात 66.93% असिंचित है। मध्यम जोतधारकों की भूमि का कुल क्षेत्रफल 62722 हेक्टेयर है, जिसमें से 21556 हेक्टेयर भूमि अर्थात 34.37% सिंचित है जबकि 41166 हेक्टेयर भूमि अर्थात 65. 63% असिंचित है।

बड़े जोतधारकों के पास कुल 8092 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 2857 हेक्टेयर भूमि अर्थात 35.31% सिंचित है और 5235 हेक्टेयर भूमि अर्थात 64.69% असिंचित है। समस्त श्रेणियों के जोतधारकों की कुल भूमि 314155 हेक्टेयर है, जिसमें 98930 हेक्टेयर अर्थात 31.49% सिंचित है और 215225 हेक्टेयर भूमि अर्थात 68.51% असिंचित है।

यह आंकड़े बताते हैं कि बड़े जोतधारकों के पास सबसे अधिक सिंचित क्षेत्र का अनुपात है जबकि सीमांत और लघु जोतधारकों के पास असिंचित भूमि का अनुपात अधिक है, जो कृषि उत्पादन में चुनौतियों को इंगित करता है।

तालिका 2 : झुंझुनू जिले में अनाज की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल, वर्ष 2016-17

जोत का आकार	सिंचित क्षेत्रफल		असिंचित क्षेत्रफल		कुल क्षेत्रफल
	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	(हे.)
सीमांत	12191	26.36	34056	73.64	46247
लघु	27081	29.92	63443	70.08	90524
अर्द्ध मध्यम	35245	33.07	71326	66.93	106571
मध्यम	21556	34.37	41166	65.63	62722
बड़ी	2857	35.31	5235	64.69	8092
सभी जोत	98930	31.49	215225	68.51	314155

स्रोत : कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

आरेख-1

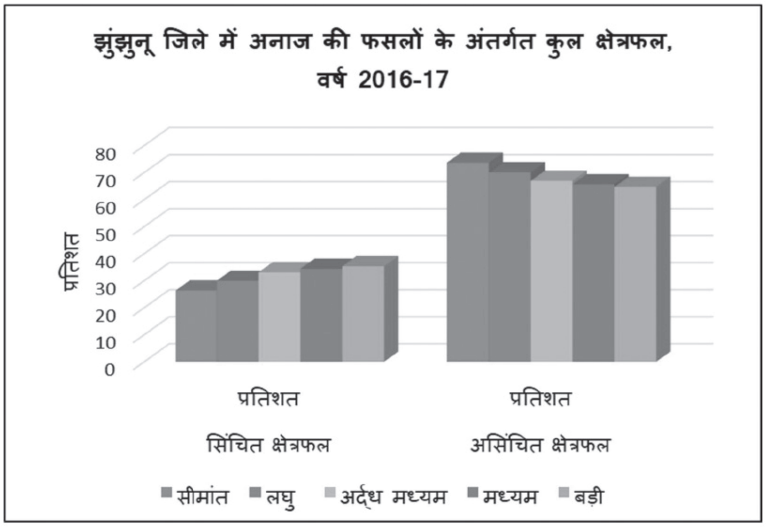

झुंझुनू जिले में वर्ष 2016-17 के दौरान दलहन की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है, कि सीमांत जोतधारकों के पास कुल 9390 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें से 3944 हेक्टेयर 42.00% भूमि सिंचित और 5446 हेक्टेयर 58.00% भूमि असिंचित है। लघु जोतधारकों के पास कुल 25193 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 11680 हेक्टेयर 46.36% भूमि सिंचित और 13513 हेक्टेयर 53.64% भूमि असिंचित है। अर्द्ध मध्यम जोतधारकों के पास कुल 36462 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 16174 हेक्टेयर 44.36% भूमि सिंचित और 20288 हेक्टेयर 55.64% भूमि असिंचित है। मध्यम जोतधारकों के पास कुल 25251 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 9573 हेक्टेयर 37.91% भूमि सिंचित और 15677 हेक्टेयर 62.08% भूमि असिंचित है। बड़े जोतधारकों के पास कुल 3123 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 918 हेक्टेयर 29.39% भूमि सिंचित और 2205 हेक्टेयर 70.61% भूमि असिंचित है। सभी जोत श्रेणियों में कुल 99418 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें से 42289 हेक्टेयर 42.54% भूमि सिंचित और 57129 हेक्टेयर 57.46% भूमि असिंचित है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है, कि दलहन की खेती में भी असिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक है, विशेष रूप से मध्यम और बड़े जोतधारकों के मामले में। यह सिंचाई की सीमित उपलब्धता और कृषि उत्पादन की संभावनाओं पर प्रभाव डालने वाले कारकों को दर्शाता है।

तालिका 3 : झुंझुनू जिले में अनाज की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल, वर्ष 2016-17

जोत का आकार	सिंचित क्षेत्रफल		असिंचित क्षेत्रफल		कुल क्षेत्रफल
	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	(हे.)
सीमांत	3944	42.00	5446	58.00	9390
लघु	11680	46.36	13513	53.64	25193
अर्द्ध मध्यम	16174	44.36	20288	55.64	36462
मध्यम	9573	37.91	15677	62.08	25251
बड़ी	918	29.39	2205	70.61	3123
सभी जोत	42289	42.54	57129	57.46	99418

कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

आरेख-2

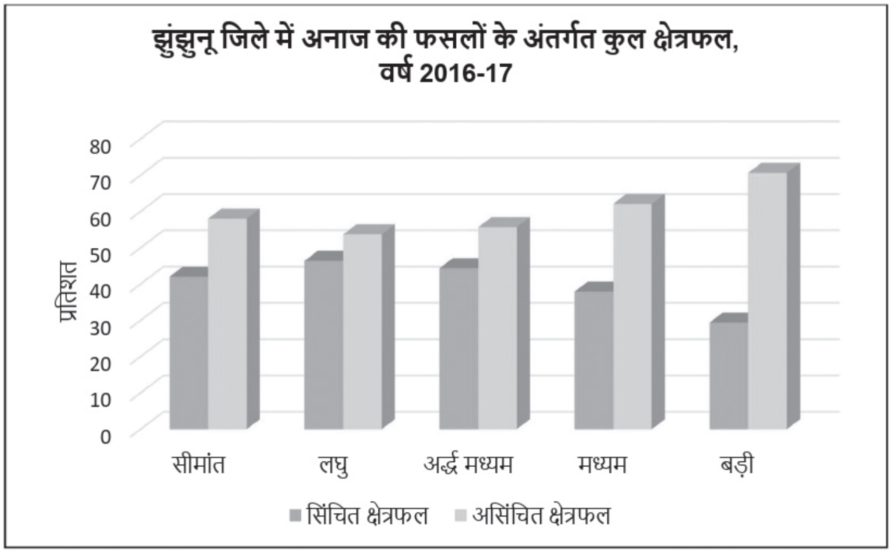

झुंझुनू जिले में वर्ष 2016-17 के दौरान तिलहन की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल का विश्लेषण किया जाए तो सीमांत जोतधारकों के पास कुल 10752 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 8282 हेक्टेयर 77.03% भूमि सिंचित और 2470 हेक्टेयर 22.97% भूमि असिंचित है। लघु जोतधारकों के पास कुल 22441 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 20125 हेक्टेयर 89.68% भूमि सिंचित और 2316 हेक्टेयर 10.32% भूमि असिंचित है। अर्द्ध मध्यम जोतधारकों के पास कुल 29053 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 27206 हेक्टेयर 93.64% भूमि सिंचित और 1847 हेक्टेयर 6.36% भूमि असिंचित है। मध्यम जोतधारकों के पास कुल 16675 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 16143 हेक्टेयर 96.81% भूमि सिंचित और 532 हेक्टेयर 3.19% भूमि असिंचित है। बड़े जोतधारकों के पास कुल 1664 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 1577 हेक्टेयर 94.77% भूमि सिंचित और 88 हेक्टेयर 5.29% भूमि असिंचित है।

सभी जोत श्रेणियों में कुल 80585 हेक्टेयर भूमि है, जिसमें 73332 हेक्टेयर 91.00% भूमि सिंचित और 7253 हेक्टेयर 9.00% भूमि असिंचित है। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है, कि तिलहन की खेती में अधिकांश जोत श्रेणियों में सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक है, जो कृषि उत्पादन के लिए बेहतर सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता को दर्शाता है।

तालिका 4: झुंझुनू जिले में तिलहन की फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल, वर्ष 2016-17

जोत का आकार	सिंचित क्षेत्रफल		असिंचित क्षेत्रफल		कुल क्षेत्रफल
	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	क्षेत्रफल (हे.)	प्रतिशत	(हे.)
सीमांत	8282	77.03	2470	22.97	10752
लघु	20125	89.68	2316	10.32	22441
अर्द्ध मध्यम	27206	93.64	1847	6.36	29053
मध्यम	16143	96.81	532	3.19	16675
बड़ी	1577	94.77	88	5.29	1664
सभी जोत	73332	91.00	7253	9.00	80585

कृषि जनगणना, कृषि और किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार

आरेख-3

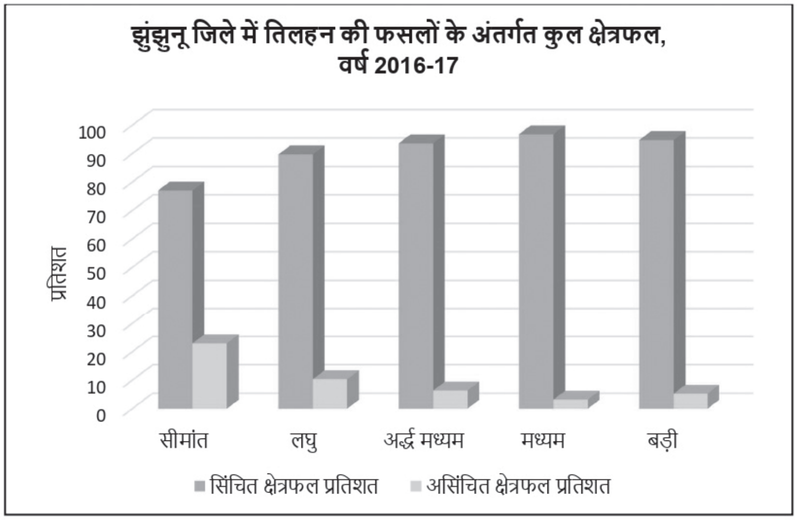

निष्कर्ष

झुंझुनू जिले में वर्ष 2016-17 के दौरान अनाज, दलहन, और तिलहन फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है, कि विभिन्न जोतधारकों के पास सिंचित और असिंचित भूमि का अनुपात भिन्न-भिन्न है। अनाज और दलहन की फसलों में सीमांत और लघु जोतधारकों के पास असिंचित भूमि का अनुपात अधिक है, जबकि बड़े जोतधारकों के पास सिंचित क्षेत्र का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक है। इसके विपरीत, तिलहन की फसलों में सभी जोत श्रेणियों में सिंचित क्षेत्र का अनुपात काफी अधिक है, जिससे बेहतर सिंचाई सुविधाओं का संकेत मिलता है। इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि झुंझुनू जिले में तिलहन की खेती में सिंचाई की स्थिति अपेक्षाकृत अनुकूल है, जबकि अनाज और दलहन फसलों के लिए सिंचाई सुविधाओं का विस्तार आवश्यक है। सीमांत और लघु जोतधारकों के लिए विशेष रूप से सिंचाई प्रबंधन की योजनाएं लागू करने से कृषि उत्पादन में सुधार किया जा सकता है। बेहतर जल प्रबंधन, सिंचाई तकनीकों का उन्नयन, और जल संरक्षण उपायों को अपनाने से इन फसलों के उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएं हैं।

संदर्भ

1. Ghosh, B. K. (2011). Determinants of the Changes in Cropping Pattern in India: 1970-71 to 2006-07. The Bangladesh Development Studies, 109-120.
2. Goyal, A.K.,& S. Kumar, S. K. (2013). Agricultural production trends and cropping pattern in U.P.: an overview.
3. Majhi, B., & Kumar, A. (2018). Changing cropping pattern in Indian agriculture. Journal of Economic & Social Development, 14(1).
4. Miller, P. R., Gan, Y., McConkey, B. G., & McDonald, C. L. (2003). Pulse crops for the northern Great Plains: II. Cropping sequence effects on cereal, oilseed, and pulse crops. Agronomy Journal, 95(4), 980-986.
5. Miller, P. R., Gan, Y., McConkey, B. G., & McDonald, C. L. (2003). Pulse crops for the northern Great Plains: II. Cropping sequence effects on cereal, oilseed, and pulse crops. Agronomy Journal, 95(4), 980-986.
6. Nasim, M., Shahidullah, S. M., Saha, A., Muttaleb, M. A., Aditya, T. L., Ali, M. A., & Kabir, M. S. (2017). Distribution of crops and cropping patterns in Bangladesh. Bangladesh rice journal, 21(2), 1-55.
7. Ramasamy, C., & Selvaraj, K. N. (2002). Pulses, Oilseeds and coarse cereals: Why they are slow growth crops?. Indian Journal of Agricultural Economics, 57(3), 289-315.
8. Rao, D., & Parwez, S. (2005). Dynamics of C.P. in sorghum growing states of India. I. J. of Agri. economics, 60(4).
9. Sadasivan, S. (1989). Pattern of pulses production: An analysis of growth trends. Economic and Political Weekly, A167-A180.
10. Singh, N. J., Kudrat, M., Jain, K., & Pandey, K. (2011). Cropping pattern of Uttar Pradesh using IRS-P6 (AWiFS) data. International journal of remote sensing, 32(16), 4511-4526.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

आधुनिक भारत में अम्बेडकर के दर्शन की भूमिका

Dr. Kamlesh Kumar Singh
Asistent Professor Sociology
Rastriya PG College Jamuhai Jaunpur-222003
Mobile number 9415560405

भारत रत्न डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर आधुनिक भारत में सामाजिक राजनीति आन्दोलनों के प्रणेता के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने जीवन पर्यन्त समाज बिल्कुल निचले पायदानपर खड़े व्यक्तियों के लिए कार्य किया। आधुनिक भारतीय इतिहास में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर को समाज सुधारक, अर्थशास्त्री तथा विधिवेत्ता के रूप में जाना जाता है। उनका क्षमा दर्शन व क्षमा आदर्श न केवल दलितों के उत्थान के लिये बल्कि भारतीय समाज का स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के लिये न्याय की ओर ले जाने वाला सराहनीय प्रयास था। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन शोषण, अन्याय व दमन के विरूद्ध लड़ते हुए आहूत कर दिया। दलित मुक्ति के चिन्तन के साथ ही साथ उनके दर्शन में सम्पूर्ण भारतीय समाज के सम्पूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक प्रारूप भी तैयार किया, जिसे हम भारतीय संविधान कहते हैं। डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर एक समतावादी समाज चाहते थे जिसमें जाति व वर्ण के लिये कोई स्थान नहीं था। वे भारतीय समाज में मानवीय स्मिता को बनाये रखते हुये मनुष्य के बौद्धिक, राजनीतिक और आर्थिक सम्वृद्धि की कल्पना करते है। जिसके आधार पर आधुनिक भारत का स्वरूप उभर कर सामने आये और हमारा राष्ट्र सशक्त और समृद्ध बन सके।

भारत के ऐतिहासिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुये यदि भारतीय समाज में दलितों के उत्थान की बात की जाए तो उनका प्रयास सबसे सराहनीय रहा है किन्तु डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ही पहले अस्पृश्य नेता नहीं थे। इनके अलावा ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, गुरू घासी दास, संता गाडगे और तमाम संत महापुरूषों जैसे रविदास, एवं कबीर ने भी इनके उद्धार की बात अपने समय में की, किन्तु बाबा साहब बी0आर0 अम्बेडकर ही ऐसे पहले अस्पृश्य नेता थे जिन्होंने दलित चेतना को धार देने के लिये क्रांतिकारी कदम उठाये और उसे आन्दोलन का स्वरूप दिया। इस आन्दोलन को आयाम देने के लिये उन्हें जगह-जगह में विरोध और अपमान देने के लिये उन्हें जगह-जगह में विरोध और अपमान का विष भी पीना पड़ा। किन्तु वे अपने लक्ष्य के प्रति अविचल और अडिग खड़े रहे, अपने मान सम्मान की परवाह न करते हुये अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय समाज को परिवर्तन की नई दिशा मिली, हमारा राष्ट्र आज उनके दिये हुये दिशा निर्देशों पर चलने के कृत संकल्प है।

आधुनिक भारत में बी0आर0 अम्बेडकर के दर्शन की बात की जाये तो इन्होंने भारतीय समाज को समावेशी बनाने के लिये सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय को आधार बनाया, जिसके लिये इन्होंने भारतीय समाज में फैली हुयी जातीय कटुता को समाप्त करने के लिये क्रान्तिकारी कदम उठाये और भारतीय जाति व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया। इन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की पूर्ति के लिये परम्परागत भारतीय समाज में व्याप्त छुआ-छूत, ऊँच-नीच, आदि का भेदभाव को समाप्त करने के लिये कार्य किया, तथा वंचित वर्ग को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया। इन्होंने बौद्ध धर्म के माध्यम से हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों, कर्मकाण्डों पर गहरा कुठाराघात किया, तथा बाह्य आडम्बरों के समाप्त कर समाज को

एक सहज और सरल जीवन के साथ सम्मानित जीवन जीने की दिशा दी।

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर का दर्शन भारत में 20वीं सदी के महान विचारकों में सर्वोत्तम था, वे भारतीय समाज के समावेशी स्वरूप के विकास के अनुक्रम में आर्थिक पक्ष को बड़ी ही बेबाकी के साथ् तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि औद्योगीकरण और कृषि के विकास से ही भारतीय अर्थव्यवस्था विकसित हो सकती है। इसके लिए उन्होंने प्राथमिक उद्योग को कृषि का प्रमुख हिस्सा बनाये जाने पर जोर दिया। बाबा साहेब कृषि में मशीनों के प्रयोग के विरोधी नहीं थे। इनका मानना था कि मशीनीकरण के प्रयोग से ही कृषि का आधुनिकीकरण हो सकता है। जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सकी और कृशक वर्ग की आय बढ़ेगी। इनका मानना था कि कृषि क्षेत्र का आवन्टन जाति आधारित नहीं होना चाहिए, वे सामूहिक खेती पर विश्वास करते थे। इन्होंने कृषि को कर मुक्त रखने की वकालत की, जिसका फायदा आम किसानों को मिल रहा है। इन्होंने कृषि के विकास को औद्योगीकरण के साथ जोड़ने की कोशिश की जिसका फायदा ग्रामीण और शहरी जीवन को तदात्म स्थापित करने में मिलता है।

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर कृषि के सामूहीकरण और इस पर आधारित बीमा का राष्ट्रीयकरण की बात अपने चिन्तन में तो किया ही है। इसके साथ ही इन्होंने श्रम और श्रमिकों के विषय में भी अपने विचार भी स्पष्ट किये हैं, आपका मानना है कि प्रत्येक श्रम मानवता पर आधारित होना चाहिए। इसके लिये उन्होंने श्रमिकों के काम के घंटे तय करना, छुट्टियों तथा वेतन निर्धारण की बात पर जोर दिया। आपका मानना था कि जिस प्रकार से फैक्ट्रियों, मिलों और अन्य औद्योगिक संस्थानों में श्रमिकों के लिये सुविधाएं दी जाती है उसी प्रकार कृषि श्रमिकों को भी सुविधाएं प्रदान की जायें इसके लिए प्रभावी कानून बनाये जायें और यह सुनिश्चित किया जाये कि कृषि श्रमिकों को जो भी नियोक्ता हो वह उनके जीवन सुरक्षा हेतु, बीमा, कार्य की सुरक्षा तथा स्वास्थ्य तथा यथासम्भव पेंशन निर्धारित की जाये। इसके अलावा कृषि हेतु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जनसंख्या दबाव के कारण भूमि के टुकड़े-टुकड़े होना किसानों की गरीबी का मुख्य कारण है। इसके समाधान हेतु पुराने एवं लघु उद्योगों बहाल करने पर जोर दिया गया।

स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति पर यदि विचार किया जाये तो हमें महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न दिखाई देती है, क्योंकि परम्परागत भारतीय समाज, पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का पोषक रहा है। वैश्विक परिदृश्य में महिला आन्दोलनों की शुरूआत 1950 के दशक में यूरोप से हुयी, भारत में भी लगभग इसी समय महिलाओं के उत्थान के लिये सर्वप्रथम सावित्री बाई फुले और फातिमा शेख जैसी महिलाओं ने आन्दोलन चलाया, इससे पहले भारत में जाति व्यवस्था और महिलाओं की स्थिति को एक करके देखा जाता था। यहां सदैव अनुलोम विवाह को मान्यता दी जाती थी। उच्च वर्ग के लोग सदैव अपने से नीचे वर्ग में शादी करने के लिए बाध्य थे। किन्तु सर्वप्रथम बाबा साहब बी0आर0 अम्बेडकर ने इस बात को समझा और समाज को जातीय बन्धन से मुक्त होकर अन्तरजातीय विवाह पर जोर दिया, आपका मानना था कि विवाह एक जीवन भर का रिश्ता होता है। इसके लिये जो भी स्त्री-पुरूष एक-दूसरे से प्रेम करें यदि वे व्यस्क हैं तो आपस में शादी कर सकते हैं। इसमें जातीय बन्धन को आड़ें नहीं आना चाहिए। इससे समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा और उन्हें बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सकेगा।

बाबा साहब ने समाज में पुरूषों की उच्च स्थिति और महिलाओं की निम्न स्थिति की मानसिकता को खारिज कर दिया। आपका मानना था कि, कोई स्त्री या बेटी किसी भी प्रकार से पुरूषों से हीन नहीं है समाज को एक स्वस्थ समाज को बनाने में उसकी बराबर की भागेदारी है, और उसे बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए। उनके निर्देशन में ही संविधान के अनुच्छेद 15(3) में महिलाओं के लिए विशेश प्रावधान की व्यवस्था की। जिससे कि महिलाओं को उनका सम्मान प्राप्त हो सके।

निष्कर्ष

बी0आर0 अम्बेडकर के दार्शनिक दृष्टिकोण का यदि विश्लेशण किया जाये तो हम पाते हैं कि आधुनिक भारत के निर्माण में इनके दिये हुये विचारों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर ही भारत के भविष्य की बुनियाद रखी गयी। जिसमें

इनके प्रमुख सैद्धान्तिक पक्ष स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व रहे हैं। इसी को आधार बनाकर बाबा साहब ने भारतीय संविधान की रूपरेखा तैयार की, जिसमें उन्होंने दलितोत्थान, के साथ ही साथ महिलाओं एवं कृषकों तथा मजदूरों के उन्नयन हेतु कानून बनाये जाने की सिफारिश की और समावेशी समाज की कल्पना की जिससे कि सशक्त, सम्प्रभुत्व और समतामूलक राष्ट्र का निर्माण हो सके, जिसमें किसी प्रकार का जातिगत और धार्मिक भेदभाव न हो जिससे समतामूलक समाज बने और सम्मानपूर्वक रहने का अधिकार प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ सूची

पुस्तक का नाम / लेखक / अनुवाद

1. भीम राव अंबेडकर / क्रिस्टोफर जाफ्रलो /योगेन्द्र दत्त 2022
2. डॉ. बाब साहेब अंबेडकर/ धनंजय वीर /2022 जीवन चरित
3. बाबा साहब अंबेडकर /डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान खण्ड 15/ सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय 2020
4. डॉ0 एम0एल0 परिहार/बाबा साहब अंबेडकर लाइफ एंड मिशन /14 अप्रैल 2014 पृष्ठ सं0 181
5. डॉ0 एम0एल0 दीपा/शंकर लाल शर्मा /जे0के0 सिंह- भारतीय आर्थिक चिन्तन।
6. Who Were Shudras ? / डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर 1946
7. बाबा साहेब अम्बेडकर एक चिन्तन/ मधु लिमये।
8. ''भारत में जातियों-संरचना एवं उत्पत्ति और विकास /बी0आर0 अम्बेडकर 1916
9. 'The Problem of Rupees' (रुपये की समस्या) - डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर, 1923

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा 'शंकी' की कविताओं में मानवीय चेतना

यादराम वर्मा
शोधार्थी
डॉ. कृष्ण कुमार
शोध निदेशक टांटिया विश्व विद्यालय श्री गंगा नगर राजस्थान

सारांश (Abstract)

डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा 'शंकी' की चयनित कविताओं के आधार पर उनके काव्य में निहित समकालीन सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय चेतना का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। ये कविताएँ लघु आकार में होते हुए भी गहन अर्थवत्ता, प्रतीकात्मकता और अनुभव-सघनता से परिपूर्ण हैं। कवि प्रेम, समय, आत्मसम्मान, मौन, सामाजिक विघटन, सांस्कृतिक क्षरण तथा वैश्विक राजनीतिक चेतना जैसे विषयों को सहज भाषा और प्रभावशाली बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। शोध-पत्र का उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि डॉ. शर्मा की कविताएँ केवल भावात्मक अभिव्यक्तियाँ नहीं, बल्कि समकालीन समाज का यथार्थवादी दस्तावेज हैं।

'बीज शब्द' : समकालीन कविता, प्रेम, मौन, आत्मसम्मान, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक मूल्य।

1. भूमिका

समकालीन हिंदी कविता में लघु काव्य-रचनाएँ आज के जटिल जीवन-संदर्भों को तीव्रता और प्रभाव के साथ प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम बन चुकी हैं। डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा 'शंकी' की कविताएँ इसी परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उनकी काव्य-दृष्टि जीवन के सूक्ष्म अनुभवों, सामाजिक विडंबनाओं और मानवीय संवेदनाओं को सरल किंतु मार्मिक शब्दों में व्यक्त करती है। प्रस्तुत कविताओं में प्रेम, मित्रता, आत्मचेतना, समय-बोध, सामाजिक मूल्य और सांस्कृतिक पहचान जैसे विषय बहुआयामी रूप में उभरते हैं।

2. प्रेम और मानवीय संवेदना

कवि के यहाँ प्रेम पारंपरिक रोमानी भाव तक सीमित नहीं, बल्कि त्याग, पीड़ा, आस्था और आत्मिक नशे का रूप ग्रहण करता है। 'यारी दोस्ती की मुहब्बत के मधुर एहसास' पर आधारित कविता में प्रेम को जीवन-बलिदान और पीड़ा को मुस्कान में बदल देने वाली शक्ति के रूप में देखा गया है। वहीं 'सरे आम बिकने वाला आज यह प्यार हो गया' कविता आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में प्रेम के बाजारीकरण की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती है। प्रेम का 'हाँ' से 'इन्कार' में बदल जाना मूल्य-संकट की ओर संकेत करता है।

‘ये छलकते हुए पैमाने...’ कविता में प्रेम और इबादत को समानांतर रखकर कवि यह स्पष्ट करता है कि सच्चा प्रेम आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त करता है, जहाँ उसका नशा कभी उतरता नहीं।

3. मौन, आत्मबल और मनोवैज्ञानिक चेतना

‘एक चुप इंसान सैंकड़ों को हरा देता है’ कविता मौन की शक्ति को रेखांकित करती है। यहाँ मौन कमजोरी नहीं, बल्कि आत्मसंयम और आत्मविश्वास का प्रतीक है। यह विचार भारतीय दर्शन की उस परंपरा से जुड़ता है जहाँ मौन को सर्वोच्च अभिव्यक्ति माना गया है।

इसी क्रम में ‘बहुत बार सोचा बहुत बार रोका’ कविता मनुष्य के आंतरिक द्वंद्व और समय की अनिवार्यता को सामने लाती है। कवि चेतावनी देता है कि अत्यधिक असमंजस अवसरों को छीन लेता है। यह कविता आधुनिक जीवन की मनोवैज्ञानिक उलझनों का सटीक चित्रण है।

4. सामाजिक विडंबनाएँ और यथार्थ बोध

‘लोग तो उल्लुओं से घबरा जाते हैं’ कविता प्रतीकात्मक रूप से समाज में प्रचलित दोहरे मानदंडों और विचित्र आकर्षणों को उजागर करती है। उल्लू जो सामान्यतः अपशकुन का प्रतीक माना जाता है—यहाँ ज्ञान, रहस्य और रात की एकाकी चेतना का बिंब बन जाता है। कवि का ‘उन्हीं से प्यार कर बैठना’ समाज की रूढ़ धारणाओं को चुनौती देता है।

‘पारम्परिक उल्लास और सांस्कृतिक पहचान’ कविता में सांस्कृतिक क्षरण का मार्मिक चित्रण है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में समाज अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक जड़ों से कटता जा रहा है—यह चिंता कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

5. आत्मसम्मान, आस्था और नैतिक मूल्य

‘आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के ये फरिश्ते हैं’ कविता व्यक्ति के नैतिक बल और श्रद्धा-विश्वास को जीवन की सुगंध के रूप में प्रस्तुत करती है। गुलाब का बिंब जीवन की सुंदरता और उसके कांटों विवशता एवं घाव—दोनों को समेटे हुए है।

‘मात-पिता व बंधु-बांधव की शुद्ध होती नीयत’ कविता पारिवारिक संस्कारों और नैतिक पूँजी की महत्ता को रेखांकित करती है। कवि के अनुसार माता-पिता का आशीर्वाद किसी वसीयत से बड़ा धन है, जो व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा दिलाता है।

6. समय-बोध, संघर्ष और आशा

‘यह अंतहीन सा सफर’ कविता जीवन को निरंतर संघर्ष और साधना का पथ मानती है। कवि आश्वस्त करता है कि निरंतर प्रयास अंततः सफलता और अभिलाषा की पूर्ति तक ले जाता है। यह कविता कर्मयोग की भावना से प्रेरित है।

7. राजनीतिक एवं वैश्विक चेतना

‘अमेरिका को जैसे छोटे देशों को है झुकाने की बुरी आदत’ कविता वैश्विक राजनीति पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। साथ ही, भारत के भीतर मौजूद ‘पीटे हुए मोहरों’ पर कटाक्ष कर कवि आंतरिक आत्मालोचना का साहस भी दिखाता है। यह कविता राष्ट्रीय चेतना और स्वाभिमान को जाग्रत करने वाली है।

8. निष्कर्ष

डॉ. कैलाश चंद्र शर्मा ‘शंकी’ की चयनित कविताएँ समकालीन हिंदी कविता में संवेदनशीलता, विचार-गहनता और

सामाजिक प्रतिबद्धता का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। प्रेम, मौन, आत्मसम्मान, समय-बोध, पारिवारिक मूल्य, सांस्कृतिक चिंता और राजनीतिक चेतना—ये सभी आयाम उनकी कविताओं को बहुआयामी बनाते हैं। लघु काव्य-रूप में गहन अनुभूति और व्यापक अर्थ-संकेत देना कवि की विशिष्ट उपलब्धि है। यह शोध-पत्र सिद्ध करता है कि ये रचनाएँ पीयर-रिव्यू शोध जर्नल के मानकों पर खरी उतरती हैं।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, कैलाश चंद्र. श्शंकीश्. चयनित कविताएँ. अप्रकाशित/प्रकाशित काव्य-संग्रह.
2. शर्मा कैलाश चंद्र शंकी काव्य संग्रह अधजला इंसान
3. शर्मा कैलाश चंद्र शंकी काव्य संग्रह आवरण
4. शर्मा कैलाश चंद्र शंकी काव्य संग्रह टूटते दायरे
5. शर्मा कैलाश चंद्र शंकी काव्य संग्रह अस्तित्व की ओर
6. शर्मा कैलाश चंद्र शंकी काव्य संग्रह एक रोटी जल गई
7. डॉक्टर नरेश सिहाग एडवोकेट संपादक डॉक्टर कैलाश चंद्र शर्मा शंकी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Dr. Dinesh Kumpawat
Assistant Professor, Department of Sociology
Shri Pragya Mahavidyalaya, Bijainagar.

सार

गैर-सरकारी संगठन विश्वभर में, विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में, सामाजिक विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये संगठन हाशिए पर पड़े और वंचित वर्गों को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों के समाधान हेतु परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। यह शोध-पत्र सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका का अध्ययन करता है, जिसमें उनके कार्य, हस्तक्षेत्र, रणनीतियाँ, उपलब्धियाँ तथा चुनौतियाँ सम्मिलित हैं। यह अध्ययन पुस्तकों, पत्रिकाओं, रिपोर्टों एवं सरकारी प्रकाशनों से संकलित द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। यह शोध इस बात को रेखांकित करता है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, पर्यावरण संरक्षण तथा मानवाधिकारों के क्षेत्र में किस प्रकार योगदान देते हैं। साथ ही गैर-सरकारी संगठनों द्वारा सामना की जाने वाली सीमाओं का विश्लेषण करते हुए सतत सामाजिक विकास में उनकी भूमिका को सुदृढ़ करने हेतु सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

मुख्य शब्द : गैर-सरकारी संगठन, सामाजिक विकास, सामुदायिक विकास, सशक्तिकरण, नागरिक समाज।

1. परिचय

सामाजिक विकास एक व्यापक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों एवं समुदायों के जीवन स्तर में सुधार करना है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन सम्मिलित होते हैं, जो समाज के सभी सदस्यों के लिए समानता, न्याय एवं कल्याण सुनिश्चित करते हैं। आधुनिक समाजों में विद्यमान जटिल एवं विविध सामाजिक समस्याओं का समाधान केवल सरकार द्वारा संभव नहीं है। परिणामस्वरूप, गैर-सरकारी संगठन विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

गैर-सरकारी संगठन स्वैच्छिक, गैर-लाभकारी संगठन होते हैं जो सरकार से स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं। ये स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत होते हैं तथा विभिन्न विकासात्मक एवं कल्याणकारी गतिविधियों पर केंद्रित रहते हैं। भारत में गैर-सरकारी संगठन गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, महिला सशक्तिकरण, बाल कल्याण, पर्यावरण संरक्षण एवं मानवाधिकार जैसे क्षेत्रों में सरकारी प्रयासों के पूरक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका का विश्लेषण करना, समाज में उनके योगदान का मूल्यांकन करना तथा उनके समक्ष उपस्थित चुनौतियों एवं भविष्य की संभावनाओं का अध्ययन करना है।

2. गैर-सरकारी संगठनों की अवधारणा

- गैर-सरकारी संगठन का अर्थ एवं परिभाषा

गैर-सरकारी संगठन से आशय ऐसे संगठन से है जो सरकार का अंग नहीं होते तथा गैर-लाभकारी आधार पर कार्य करते हैं। ये संगठन सामाजिक कल्याण एवं विकास के उद्देश्य से व्यक्तियों अथवा समूहों द्वारा गठित किए जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, गैर-सरकारी संगठन वह "निजी संगठन है जो पीड़ा को कम करने, गरीबों के हितों को बढ़ावा देने, पर्यावरण की रक्षा करने, बुनियादी सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने या सामुदायिक विकास का कार्य करता है।"

गैर-सरकारी संगठन की प्रमुख विशेषताएँ स्वैच्छिकता, गैर-लाभकारी प्रकृति, स्वायत्तता तथा सामाजिक सेवा के प्रति प्रतिबद्धता हैं।

- गैर-सरकारी संगठन की विशेषताएँ

गैर-सरकारी संगठन ऐसे स्वैच्छिक संगठन होते हैं जो सरकार से स्वतंत्र रहकर समाज के विभिन्न वर्गों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। ये संगठन सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

गैर-सरकारी संगठन की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि ये सरकार से स्वतंत्र होते हैं, यद्यपि कई बार सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग करते हैं। इनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं, बल्कि समाज सेवा और जनकल्याण होता है। यही कारण है कि इन्हें लाभ-निरपेक्ष संगठन कहा जाता है। इन संगठनों की कार्यप्रणाली स्वैच्छिक सहभागिता पर आधारित होती है। लोग सेवा भावना से जुड़कर सामाजिक कार्य करते हैं। गैर-सरकारी संगठन शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, बाल विकास, पर्यावरण संरक्षण, ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन जैसे क्षेत्रों में सक्रिय रहते हैं।

गैर-सरकारी संगठन की कार्यशैली लचीली और सरल होती है, जिससे ये स्थानीय समस्याओं को जल्दी समझकर समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। इनमें जनसहभागिता पर विशेष जोर दिया जाता है, जिससे समुदाय स्वयं अपने विकास में भागीदार बनता है। आर्थिक दृष्टि से गैर-सरकारी संगठन दान, अनुदान, सदस्यता शुल्क और कभी-कभी विदेशी सहायता पर निर्भर रहते हैं, इसलिए इनके संसाधन सीमित होते हैं। इसके बावजूद ये नवाचार और प्रयोगशीलता के माध्यम से प्रभावी परिणाम प्राप्त करते हैं।

अंततः, गैर-सरकारी संगठन समाज और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करते हैं और लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय तथा समावेशी विकास को बढ़ावा देते हैं।

3. सामाजिक विकास की अवधारणा

सामाजिक विकास से आशय योजनाबद्ध सामाजिक परिवर्तन से है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों एवं संपूर्ण समाज के कल्याण को बढ़ावा देना है। यह सामाजिक न्याय, समानता, सहभागिता एवं सशक्तिकरण पर बल देता है।

सामाजिक विकास के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं :

गरीबी एवं असमानता में कमी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य में सुधार, लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण, सामाजिक समावेशन एवं मानवाधिकार सतत विकास।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति में गैर-सरकारी संगठन समुदायों के साथ प्रत्यक्ष रूप से कार्य कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- . भारत में गैर-सरकारी संगठन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में गैर-सरकारी संगठन की जड़ें औपनिवेशिक काल से जुड़ी हैं, जब शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह एवं

जातिगत भेदभाव जैसी सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु स्वैच्छिक संगठनों का उदय हुआ। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी एवं स्वामी विवेकानंद जैसे समाज सुधारकों ने स्वैच्छिक कार्यो की नींव रखी।

स्वतंत्रता के बाद गैर-सरकारी संगठन ने ग्रामीण विकास, गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे क्षेत्रों में अपनी गतिविधियों का विस्तार किया। पंचवर्षीय योजनाओं के आरंभ के साथ गैर-सरकारी संगठन ने विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सरकार के साथ सहयोग करना शुरू किया। 1990 के बाद उदारीकरण के दौर में कल्याणकारी गतिविधियों से राज्य की भूमिका में कमी आने के कारण गैर-सरकारी संगठन की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई।

5. सामाजिक विकास में गैर- सरकारी संगठन के हस्तक्षेत्र

- शिक्षा में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

गैर-सरकारी संगठन शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित योगदान देते हैं

शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास की आधारशिला होती है। भारत जैसे विकासशील देश में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त असमानताओं, अशिक्षा और संसाधनों की कमी को दूर करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। गैर-सरकारी संगठन सबसे पहले शिक्षा तक पहुँच बढ़ाने का कार्य करते हैं। ये ग्रामीण, आदिवासी और पिछड़े क्षेत्रों में स्कूल खोलकर, अनौपचारिक शिक्षा केंद्र स्थापित कर तथा ड्रॉपआउट बच्चों को पुनः शिक्षा से जोड़कर साक्षरता को बढ़ावा देते हैं। बाल श्रम, बालिका शिक्षा और वंचित वर्गों की शिक्षा पर गैर-सरकारी संगठन विशेष ध्यान देते हैं।

दूसरी प्रमुख भूमिका गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। कई गैर-सरकारी संगठन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम, डिजिटल शिक्षा, स्मार्ट क्लास, पुस्तकालय और शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध कराकर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करते हैं। इसके अतिरिक्त, कमजोर छात्रों के लिए निःशुल्क कोचिंग, छात्रवृत्ति और मार्गदर्शन सेवाएँ भी प्रदान की जाती हैं।

गैर-सरकारी संगठन महिला और बालिका शिक्षा को सशक्त बनाने में भी सक्रिय हैं। जागरूकता अभियानों के माध्यम से समाज में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाता है। विशेष रूप से किशोरियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास पर जोर दिया जाता है।

इसके साथ ही, गैर-सरकारी संगठन सरकार और समाज के बीच सेतु की भूमिका निभाते हैं। ये सरकारी शैक्षिक योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग करते हैं और शिक्षा संबंधी नीतियों पर सुझाव भी देते हैं।

- लोक-कल्याण सेवाओं में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

लोक-कल्याण सेवाओं का उद्देश्य समाज के कमजोर, वंचित और उपेक्षित वर्गो के जीवन स्तर में सुधार करना है। इस दिशा में गैर-सरकारी संगठन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संगठन सरकार से स्वतंत्र होकर समाज की वास्तविक समस्याओं को समझते हैं और त्वरित तथा प्रभावी समाधान प्रस्तुत करते हैं।

गैर-सरकारी संगठन की प्रमुख भूमिका गरीबी उन्मूलन और सामाजिक सहायता से जुड़ी होती है। ये निर्धन और असहाय लोगों को भोजन, वस्त्र, आवास तथा आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, भूकंप या महामारी के समय गैर-सरकारी संगठन राहत एवं पुनर्वास कार्यो में अग्रणी रहते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन निःशुल्क चिकित्सा शिविर, टीकाकरण, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाएँ तथा स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम चलाते हैं। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में, जहाँ सरकारी सुविधाएँ सीमित होती हैं, वहाँ गैर-सरकारी संगठन स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

गैर-सरकारी संगठन महिला सशक्तिकरण और बाल कल्याण में भी सक्रिय हैं। महिला स्वयं-सहायता समूहों का गठन, कौशल प्रशिक्षण, स्वरोजगार कार्यक्रम, बाल श्रम उन्मूलन और बाल अधिकारों की रक्षा जैसे कार्य इनके द्वारा किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, गैर-सरकारी संगठन वृद्धों, दिव्यांगों और निराश्रित व्यक्तियों के पुनर्वास, देखभाल और सामाजिक सुरक्षा के लिए कार्य करते हैं। ये संगठन जनजागरूकता फैलाकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने और सामाजिक न्याय को सुदृढ़

करने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार, लोक-कल्याण सेवाओं में गैर-सरकारी संगठन समाज और सरकार के बीच सेतु बनकर मानव कल्याण और समावेशी विकास को बढ़ावा देते हैं।

- महिला सशक्तिकरण में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक रूप से सक्षम बनाना है। इस दिशा में गैर-सरकारी संगठन समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से उन महिलाओं के लिए जो गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक भेदभाव का सामना कर रही हैं।

गैर-सरकारी संगठन सबसे पहले शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाते हैं। ये साक्षरता कार्यक्रम, कानूनी जागरूकता शिविर और स्वास्थ्य संबंधी प्रशिक्षण आयोजित करते हैं, जिससे महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत हो सकें। आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन स्वरोजगार और कौशल विकास को बढ़ावा देते हैं। सिलाई, कढ़ाई, हस्तशिल्प, कंप्यूटर प्रशिक्षण, ब्यूटी पार्लर, कृषि-आधारित कार्य जैसे प्रशिक्षण देकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया जाता है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से बचत और ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

गैर-सरकारी संगठन स्वास्थ्य और पोषण से संबंधित सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। मातृ स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, स्वच्छता और पोषण पर जागरूकता फैलाकर महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, गैर-सरकारी संगठन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध कार्य करते हैं। दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव के खिलाफ अभियान चलाए जाते हैं तथा पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता और परामर्श दिया जाता है।

इस प्रकार, महिला सशक्तिकरण में गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को आत्मनिर्भर, जागरूक और सम्मानजनक जीवन जीने के लिए सक्षम बनाते हैं। सबसे पहले शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाते हैं। ये साक्षरता कार्यक्रम, कानूनी जागरूकता शिविर और स्वास्थ्य संबंधी प्रशिक्षण आयोजित करते हैं, जिससे महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत हो सकें।

आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन स्वरोजगार और कौशल विकास को बढ़ावा देते हैं। सिलाई, कढ़ाई, हस्तशिल्प, कंप्यूटर प्रशिक्षण, ब्यूटी पार्लर, कृषि-आधारित कार्य जैसे प्रशिक्षण देकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया जाता है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से बचत और ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

स्वास्थ्य और पोषण से संबंधित सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। मातृ स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, स्वच्छता और पोषण पर जागरूकता फैलाकर महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध कार्य करते हैं। दहेज प्रथा, बाल विवाह, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव के खिलाफ अभियान चलाए जाते हैं तथा पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता और परामर्श दिया जाता है।

इस प्रकार, महिला सशक्तिकरण में गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को आत्मनिर्भर, जागरूक और सम्मानजनक जीवन जीने के लिए सक्षम बनाते हैं। सबसे पहले शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाते हैं। ये साक्षरता कार्यक्रम, कानूनी जागरूकता शिविर और स्वास्थ्य संबंधी प्रशिक्षण आयोजित करते हैं, जिससे महिलाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत हो सकें।

आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन व स्वरोजगार और कौशल विकास को बढ़ावा देते हैं। सिलाई, कढ़ाई, हस्तशिल्प, कंप्यूटर प्रशिक्षण, ब्यूटी पार्लर, कृषि-आधारित कार्य जैसे प्रशिक्षण देकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया जाता है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से बचत और ऋण की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

गैर-सरकारी संगठन स्वास्थ्य और पोषण से संबंधित सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। मातृ स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, स्वच्छता और पोषण पर जागरूकता फैलाकर महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार किया जाता है।

- ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

ग्रामीण विकास का अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जहाँ गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और आधारभूत सुविधाओं की कमी जैसी समस्याएँ पाई जाती हैं। इन समस्याओं के समाधान में गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

गैर-सरकारी संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और साक्षरता को बढ़ावा देते हैं। ये वयस्क शिक्षा केंद्र, बाल शिक्षा कार्यक्रम और स्कूल छोड़ चुके बच्चों को पुनः शिक्षा से जोड़ने का कार्य करते हैं।

ग्रामीण विकास में स्वास्थ्य सेवाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। गैर-सरकारी संगठन निःशुल्क चिकित्सा शिविर, टीकाकरण, स्वच्छता और पोषण संबंधी जागरूकता कार्यक्रम चलाकर ग्रामीण लोगों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार करते हैं।

आर्थिक विकास के लिए गैर-सरकारी संगठन स्वरोजगार और कौशल विकास पर जोर देते हैं। कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण लोगों को आत्मनिर्भर बनाया जाता है।

- पर्यावरण संरक्षण में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

पर्यावरण संरक्षण आज की सबसे बड़ी वैश्विक चुनौतियों में से एक है। बढ़ता प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन मानव जीवन के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। इस संदर्भ में गैर-सरकारी संगठन पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

गैर-सरकारी संगठन की प्रमुख भूमिका जनजागरूकता फैलाना है। ये संगठन पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम, सेमिनार, रैलियाँ और अभियान चलाकर लोगों को स्वच्छ पर्यावरण के महत्व के प्रति जागरूक करते हैं। प्लास्टिक मुक्त अभियान, स्वच्छता अभियान और जल संरक्षण से जुड़े कार्यक्रम इसके उदाहरण हैं।

गैर-सरकारी संगठन वन संरक्षण और वृक्षारोपण के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। वृक्षारोपण अभियान, वन्यजीव संरक्षण और जैव विविधता की रक्षा के लिए ये संगठन स्थानीय समुदायों को जोड़ते हैं। इससे न केवल पर्यावरण संतुलन बना रहता है, बल्कि लोगों में प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी की भावना भी विकसित होती है।

जल, वायु और भूमि प्रदूषण को नियंत्रित करने में गैर-सरकारी संगठन सरकार के सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। ये प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित नीतियों पर सुझाव देते हैं और पर्यावरण कानूनों के पालन के लिए दबाव समूह की भूमिका निभाते हैं।

- मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय किसी भी लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को समानता, स्वतंत्रता, सम्मान और न्यायपूर्ण जीवन का अधिकार है। इन अधिकारों की रक्षा और सामाजिक न्याय की स्थापना में गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

गैर-सरकारी संगठन की प्रमुख भूमिका मानवाधिकारों की रक्षा और जागरूकता से जुड़ी होती है। ये संगठन लोगों को उनके मौलिक अधिकारों, जैसे जीवन का अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति जागरूक करते हैं। मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में गैर-सरकारी संगठन तथ्य-संग्रह, रिपोर्टिंग और जनमत निर्माण का कार्य करते हैं।

सामाजिक न्याय के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन वंचित और शोषित वर्गों के लिए कार्य करते हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, महिलाएँ, बच्चे, वृद्ध और दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा हेतु ये संगठन कानूनी सहायता, परामर्श और पुनर्वास सेवाएँ प्रदान करते हैं।

गैर-सरकारी संगठन कानूनी सहायता और न्याय तक पहुँच सुनिश्चित करने में भी सहायक होते हैं। निःशुल्क विधिक सहायता, जनहित याचिकाएँ और परामर्श केंद्रों के माध्यम से गरीब और अशिक्षित लोगों को न्याय प्रणाली से जोड़ा जाता है।

6. गैर-सरकारी संगठन द्वारा अपनाई गई रणनीतियाँ एवं दृष्टिकोण

- सामुदायिक सहभागिता एवं जन-संगठन
- क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण
- पैरवी एवं नीति हस्तक्षेप
- नेटवर्किंग एवं सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन तकनीकों का उपयोग

7. सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठन का योगदान

- वंचित एवं बहिष्कृत जनसंख्या तक पहुँच
- कम लागत एवं प्रभावी नवाचार
- लोकतांत्रिक सहभागिता को सुदृढ़ करना
- निगरानीकर्ता एवं दबाव समूह के रूप में कार्य
- सरकारी प्रयासों के पूरक के रूप में भूमिका

8. गैर-सरकारी संगठन के समक्ष चुनौतियाँ

गैर-सरकारी संगठन समाज के विकास और कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किंतु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में इन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों के कारण कई बार इनके कार्यों की प्रभावशीलता प्रभावित होती है।

गैर-सरकारी संगठन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आर्थिक संसाधनों की कमी है। अधिकांश संगठन दान, अनुदान और विदेशी सहायता पर निर्भर रहते हैं, जो अनियमित और सीमित होती है। इससे दीर्घकालिक योजनाओं को क्रियान्वित करना कठिन हो जाता है।

दूसरी प्रमुख चुनौती प्रशासनिक और कानूनी जटिलताएँ हैं। पंजीकरण, नवीनीकरण, विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम और अन्य सरकारी नियमों का पालन करना कई छोटे गैर-सरकारी संगठन के लिए कठिन होता है।

गैर-सरकारी संगठन को प्रशिक्षित मानव संसाधन की कमी का भी सामना करना पड़ता है। योग्य और अनुभवी कर्मियों की उपलब्धता सीमित होती है, क्योंकि अधिकांश लोग कम वेतन के कारण लंबे समय तक जुड़े नहीं रहते।

इसके अतिरिक्त, पारदर्शिता और विश्वसनीयता बनाए रखना भी एक बड़ी चुनौती है। कुछ संगठनों की अनियमितताओं के कारण सभी गैर-सरकारी संगठन की छवि प्रभावित होती है, जिससे जनता और दानदाताओं का विश्वास कम होता है।

सरकार और स्थानीय प्रशासन के साथ समन्वय की कमी, राजनीतिक हस्तक्षेप, सीमित तकनीकी संसाधन तथा बदलती सामाजिक आवश्यकताएँ भी गैर-सरकारी संगठन के सामने गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं।

इस प्रकार, इन चुनौतियों के बावजूद, उचित सहयोग, पारदर्शिता और सशक्त नीतियों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं।

9. गैर-सरकारी संगठन एवं सरकार के बीच सहयोग

गैर-सरकारी संगठन एवं सरकार के बीच सहयोग प्रभावी सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। गैर-सरकारी संगठन निम्नलिखित क्षेत्रों में सहयोग करते हैं :

- सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन
- कार्यक्रमों की निगरानी एवं मूल्यांकन

● नीति सुधार हेतु फीडबैक प्रदान करना

10. सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठन के अध्ययन उदाहरण

● स्व-नियोजित महिला संघ

स्व-नियोजित महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु वित्तीय सेवाएँ, प्रशिक्षण एवं पैरवी प्रदान करता है।

● अक्षय पात्र फाउंडेशन

यह संस्था विश्व का सबसे बड़ा मध्याह्न भोजन कार्यक्रम संचालित करती है, जिससे बाल पोषण एवं विद्यालय उपस्थिति में सुधार हुआ है।

● प्रथम

प्रथम, वंचित बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु नवाचारी शिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है।

11. सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठन की भविष्य संभावनाएँ

सामाजिक विकास की प्रक्रिया निरंतर परिवर्तनशील होती है। बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, बढ़ती जनसंख्या और जटिल सामाजिक समस्याओं के कारण गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका भविष्य में और अधिक महत्वपूर्ण होने वाली है। आने वाले समय में सामाजिक विकास के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठन के समक्ष अनेक नई संभावनाएँ दिखाई देती हैं।

भविष्य में गैर-सरकारी संगठन सरकार के सहयोगी भागीदार के रूप में अधिक सशक्त भूमिका निभाएँगे। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, बाल कल्याण और ग्रामीण विकास जैसी योजनाओं के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठन की सहभागिता बढ़ने की संभावना है। इससे सरकारी योजनाएँ जमीनी स्तर तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुँच सकेंगी।

तकनीकी प्रगति के साथ गैर-सरकारी संगठन डिजिटल तकनीक और नवाचार का अधिक उपयोग करेंगे। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल स्वास्थ्य सेवाएँ, डेटा-आधारित सामाजिक अनुसंधान और पारदर्शी वित्तीय प्रणाली से सामाजिक विकास को नई दिशा मिलेगी।

गैर-सरकारी संगठन की भविष्य की एक महत्वपूर्ण संभावना जनसहभागिता और सामुदायिक सशक्तिकरण से जुड़ी है। स्थानीय समुदायों को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में शामिल कर सतत और आत्मनिर्भर विकास को बढ़ावा दिया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त, पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और सतत विकास जैसे उभरते क्षेत्रों में गैर-सरकारी संगठन की भूमिका और विस्तृत होगी। अंतरराष्ट्रीय सहयोग और वैश्विक संस्थाओं के साथ साझेदारी से इनके कार्यक्षेत्र का विस्तार होगा।

इस प्रकार, सामाजिक विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भविष्य संभावनाएँ व्यापक और सकारात्मक हैं। प्रभावी नीतियाँ, पारदर्शिता और नवाचार के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन भविष्य में सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख संवाहक बन सकते हैं।

12. गैर-सरकारी संगठन को सुदृढ़ करने हेतु सुझाव

गैर-सरकारी संगठन सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी कार्यक्षमता और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए कुछ ठोस सुझाव आवश्यक हैं।

सबसे पहले, गैर-सरकारी संगठन में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। वित्तीय लेखा-जोखा, वार्षिक रिपोर्ट और कार्यों की नियमित निगरानी से जनता और दानदाताओं का विश्वास बढ़ेगा।

दूसरा, स्थायी वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था की जानी चाहिए। केवल अनुदान पर निर्भर रहने के बजाय सामाजिक

उद्यम, सहयोग और स्थानीय संसाधन जुटाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

तीसरा, गैर-सरकारी संगठन के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन का विकास आवश्यक है। कार्यकर्ताओं और प्रबंधकों को प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण और तकनीकी कौशल प्रदान करने से कार्यों की गुणवत्ता में सुधार होगा।

चौथा, गैर-सरकारी संगठन और सरकार के बीच समन्वय और सहयोग को मजबूत किया जाना चाहिए। इससे योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन और दोहराव से बचाव संभव होगा।

पाँचवाँ, तकनीक और नवाचार का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। डिजिटल प्लेटफॉर्म, डेटा प्रबंधन और ऑनलाइन निगरानी से कार्यों में दक्षता आएगी।

अंततः, जनसहभागिता और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देकर गैर-सरकारी संगठन को जमीनी स्तर पर अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। इन सुझावों को अपनाकर गैर-सरकारी संगठनों को सुदृढ़ और प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

13. निष्कर्ष

गैर-सरकारी संगठन सामाजिक विकास में जमीनी स्तर की समस्याओं के समाधान एवं वंचित समुदायों के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी लचीलापन, नवाचार एवं जन-केंद्रित दृष्टिकोण उन्हें सामाजिक परिवर्तन के प्रभावी साधन बनाते हैं। यद्यपि गैर-सरकारी संगठन को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, फिर भी वे शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, पर्यावरण संरक्षण एवं मानवाधिकारों के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देते आ रहे हैं।

सहायक नीतियों, पर्याप्त वित्तीय संसाधनों एवं सरकार के साथ प्रभावी सहयोग के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन की भूमिका को और अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है। ये संगठन समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को निकट से समझते हुए लचीली, सहभागी और मानव-केंद्रित कार्यप्रणाली अपनाते हैं। अपनी लचीलापन, नवाचार क्षमता और जन-केंद्रित दृष्टिकोण के कारण गैर-सरकारी संगठन सामाजिक परिवर्तन के प्रभावशाली साधन बनकर उभरे हैं।

गैर-सरकारी संगठन शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता अभियान, ड्रॉपआउट बच्चों का पुनर्वास और कौशल विकास कार्यक्रम संचालित करते हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में निःशुल्क चिकित्सा शिविर, पोषण जागरूकता और मातृ-शिशु स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों को लाभ पहुँचाते हैं। महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह, स्वरोजगार प्रशिक्षण और कानूनी जागरूकता कार्यक्रम महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार, ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठन कृषि सुधार, पशुपालन, कुटीर उद्योग और सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में वृक्षारोपण, जल संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण संबंधी अभियानों द्वारा सतत विकास को बढ़ावा दिया जाता है। मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में ये संगठन शोषण, भेदभाव और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर पीड़ितों को न्याय दिलाने का प्रयास करते हैं।

यद्यपि गैर-सरकारी संगठनों को वित्तीय संसाधनों की कमी, प्रशासनिक जटिलताओं और मानव संसाधन संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, फिर भी उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। सहायक नीतियों, पर्याप्त वित्तीय संसाधनों तथा सरकार के साथ प्रभावी सहयोग के माध्यम से गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है, जिससे सामाजिक विकास की प्रक्रिया को नई गति प्राप्त होगी।

References

1. Desai, V. (2002). Dynamics of Non-Governmental Organizations. New Delhi: Deep & Deep Publications.
2. Korten, D. C. (1990). Getting to the 21st Century: Voluntary Action and the Global Agenda. West Hartford: Kumarian Press.

3. Lewis, D. (2001). The Management of Non-Governmental Development Organizations. London: Routledge.
4. Smillie, I. (1995). The Alms Bazaar: Altruism Under Fired`Non-Profit Organizations and International Development. London: Intermediate Technology Publications.
5. Sen, A. (1999). Development as Freedom. New Delhi: Oxford University Press.
6. Tandon, R. (Ed.). (2002). Voluntary Action, Civil Society and the State. New Delhi: Mosaic Books.
7. United Nations Development Programme (UNDP). (2016). Human Development Report. New York: UNDP.
8. Government of India. (2021). NGO Darpan Portal Reports. New Delhi: NITI Aayog.
9. Salamon, L. M. (1994). The Rise of the Nonprofit Sector. Foreign Affairs, 73(4), 109n`122.
10. Bhattacharya, S. (2014). Social Development: Theory and Practice. New Delhi: Sage Publications.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

वृद्धावस्था में परिवार की भूमिका और देखभाल के स्वरूपों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Dr. Unnati Sharma
Assistant Professor, P.G. Department of Sociology
Dayanand College, Ajmer.

सार

वृद्धावस्था मानव जीवन की एक स्वाभाविक एवं महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति की आत्मनिर्भरता कम होती जाती है और वह देखभाल के लिए परिवार एवं समाज पर अधिक निर्भर हो जाता है। भारतीय समाज में परंपरागत रूप से परिवार को वृद्धों की देखभाल, सुरक्षा और सम्मान का प्रमुख माध्यम माना गया है। किंतु औद्योगीकरण, नगरीकरण, एकल परिवार व्यवस्था, पारिवारिक मूल्यों में परिवर्तन तथा युवा पीढ़ी के पलायन के कारण वृद्धों की पारिवारिक स्थिति में निरंतर बदलाव आया है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वृद्धावस्था में परिवार की भूमिका, वृद्ध देखभाल के विभिन्न स्वरूपों तथा बदलते सामाजिक संदर्भों में उत्पन्न समस्याओं का गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है और यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि आधुनिक सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद परिवार आज भी वृद्ध देखभाल की सबसे सशक्त एवं प्रभावी संस्था बना हुआ है।

मुख्य शब्द : वृद्धावस्था, परिवार, वृद्ध देखभाल, सामाजिक परिवर्तन, पारिवारिक संरचना

1. भूमिका

वृद्धावस्था जीवन चक्र की अंतिम अवस्था मानी जाती है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक क्षीणता, मानसिक अस्थिरता, आर्थिक निर्भरता तथा सामाजिक अलगाव जैसी समस्याओं का सामना करता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से वृद्ध हो रही है और भारत भी इस जनसांख्यिकीय परिवर्तन से अछूता नहीं है।

भारतीय समाज में वृद्धों को अनुभव, ज्ञान और संस्कारों का भंडार माना जाता रहा है। पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्धों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, परंतु आधुनिक सामाजिक परिवर्तनों ने इस व्यवस्था को कमजोर किया है। परिणामस्वरूप वृद्धों की देखभाल एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है।

2. वृद्धावस्था की अवधारणा

वृद्धावस्था सामान्यतः 60 वर्ष या उससे अधिक आयु की अवस्था को कहा जाता है। भारत सरकार भी 60 वर्ष की आयु के बाद व्यक्ति को वरिष्ठ नागरिक की श्रेणी में रखती है।

2.1 शारीरिक आयाम

इस अवस्था में दृष्टि दोष, श्रवण क्षमता में कमी, जोड़ों का दर्द, मधुमेह, उच्च रक्तचाप जैसी समस्याएँ सामान्य हो जाती हैं।

2.2 मानसिक आयाम

स्मरण शक्ति का ह्रास, अवसाद, चिंता, अकेलापन तथा आत्मसम्मान में कमी देखी जाती है।

2.3 सामाजिक आयाम

सेवानिवृत्ति के बाद सामाजिक भूमिका में कमी, पारिवारिक निर्णयों से दूरी और सामाजिक अलगाव उत्पन्न होता है।

2.4 आर्थिक आयाम

आय के स्थायी स्रोत का अभाव, बढ़ता चिकित्सा व्यय और परिवार पर निर्भरता वृद्धों को आर्थिक रूप से असुरक्षित बनाती है।

3. परिवार की अवधारणा एवं प्रकार

परिवार समाज की मूलभूत इकाई है, जो व्यक्ति के समाजीकरण, संरक्षण और भावनात्मक सुरक्षा का कार्य करती है।

परिवार के प्रमुख प्रकार

संयुक्त परिवार जिसमें कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं

एकल परिवार पति-पत्नी और उनके बच्चे

विस्तारित परिवार रिश्तेदारों सहित परिवार

वृद्ध देखभाल की दृष्टि से संयुक्त परिवार प्रणाली को सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है, क्योंकि इसमें देखभाल की जिम्मेदारी सामूहिक होती है।

4. वृद्धावस्था में परिवार की भूमिका

4.1 शारीरिक देखभाल

परिवार वृद्धों की दैनिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, दवा, स्वास्थ्य परीक्षण और व्यक्तिगत स्वच्छता की देखभाल करता है।

4.2 मानसिक एवं भावनात्मक सहयोग

परिवार द्वारा दिया गया स्नेह, संवाद और सम्मान वृद्धों को मानसिक संबल प्रदान करता है और अवसाद से बचाता है।

4.3 आर्थिक सहायता

जब वृद्धों के पास पेंशन या आय का स्रोत नहीं होता, तब परिवार उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

4.4 सामाजिक सुरक्षा एवं सम्मान

परिवार वृद्धों को सामाजिक पहचान, सुरक्षा और गरिमा प्रदान करता है।

5. वृद्ध देखभाल के स्वरूप

5.1 पारिवारिक देखभाल

यह सबसे पारंपरिक और प्रभावी स्वरूप है, जिसमें वृद्ध परिवार के साथ रहते हैं।

5.2 संस्थागत देखभाल

वृद्धाश्रम, डे-केयर सेंटर और रिटायरमेंट होम इस श्रेणी में आते हैं।

5.3 सामुदायिक देखभाल

- स्वयंसेवी संस्थाएँ और एनजीओ वृद्धों को स्वास्थ्य, परामर्श और मनोरंजन सेवाएँ प्रदान करते हैं।

5.4 सरकारी योजनाओं द्वारा देखभाल

- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना
- वृद्धजन स्वास्थ्य कार्यक्रम
- आयुष्मान भारत योजना

6. बदलते सामाजिक परिदृश्य में वृद्ध देखभाल

औद्योगीकरण, नगरीकरण, महिला रोजगार और पीढ़ीगत अंतर के कारण परिवार की संरचना में बदलाव आया है। इसके परिणामस्वरूप वृद्धों की पारंपरिक देखभाल प्रणाली कमजोर हुई है।

7. वृद्धों की प्रमुख समस्याएँ

- स्वास्थ्य समस्याएँ

वृद्धावस्था में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ सर्वाधिक गंभीर और व्यापक होती हैं। उम्र बढ़ने के साथ शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिसके कारण वृद्ध व्यक्ति अनेक दीर्घकालिक (Chronic) रोगों से ग्रसित हो जाता है। सामान्यतः वृद्धों में मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, गठिया, अस्थि क्षय (Osteoporosis), दृष्टि एवं श्रवण दोष जैसी समस्याएँ देखने को मिलती हैं।

स्वास्थ्य समस्याओं का प्रभाव केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक और सामाजिक जीवन पर भी पड़ता है। बार-बार बीमार पड़ने से वृद्ध व्यक्ति आत्मनिर्भरता खो देता है और उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे आत्मसम्मान में कमी आती है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की कमी और आर्थिक संसाधनों का अभाव स्वास्थ्य समस्या को और अधिक गंभीर बना देता है।

इसके अतिरिक्त, मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ जैसे अवसाद, चिंता, स्मृति ह्रास (डिमेंशिया) और अल्जाइमर रोग वृद्धों में तेजी से बढ़ रहे हैं। परिवार द्वारा समय पर स्वास्थ्य देखभाल और भावनात्मक सहयोग न मिलने पर ये समस्याएँ और गहराती चली जाती हैं।

- आर्थिक असुरक्षा

आर्थिक असुरक्षा वृद्धों की एक प्रमुख समस्या है, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों में, जहाँ बड़ी संख्या में लोग असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं और सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें पेंशन या सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं होती। वृद्धावस्था में नियमित आय के स्रोत समाप्त हो जाने से व्यक्ति आर्थिक रूप से परिवार पर निर्भर हो जाता है।

बढ़ती महँगाई, चिकित्सा व्यय और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति आर्थिक दबाव को और अधिक बढ़ा देती है। कई बार वृद्धों को अपनी संचित पूँजी खर्च करनी पड़ती है, जिससे भविष्य को लेकर असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। आर्थिक निर्भरता के कारण वृद्धों की निर्णय-क्षमता और पारिवारिक सम्मान भी प्रभावित होता है।

सरकारी पेंशन योजनाएँ सीमित और अपर्याप्त हैं, जिसके कारण वृद्धों की आर्थिक समस्याएँ पूरी तरह हल नहीं हो पातीं। आर्थिक असुरक्षा वृद्धों में तनाव, चिंता और हीन भावना को जन्म देती है।

- भावनात्मक उपेक्षा

भावनात्मक उपेक्षा वृद्धावस्था की सबसे गंभीर, किंतु सबसे कम दिखाई देने वाली समस्याओं में से एक है। वृद्धावस्था में व्यक्ति को केवल शारीरिक देखभाल या आर्थिक सहायता ही नहीं, बल्कि स्नेह, सम्मान, संवाद और भावनात्मक सुरक्षा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। जब परिवार या समाज द्वारा इन भावनात्मक आवश्यकताओं की उपेक्षा की जाती है, तो वृद्ध

व्यक्ति गहरे मानसिक तनाव और अकेलेपन का शिकार हो जाता है।

आधुनिक समय में पारिवारिक जीवन की तेज गति, व्यस्त कार्य-संस्कृति, एकल परिवार व्यवस्था तथा पीढ़ीगत अंतर ने वृद्धों की भावनात्मक उपेक्षा को बढ़ावा दिया है। परिवार के सदस्य वृद्धों की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो कर देते हैं, परंतु उनसे संवाद करने, उनकी बात सुनने और उनके अनुभवों को महत्व देने में असफल रहते हैं। परिणामस्वरूप वृद्ध स्वयं को परिवार पर बोझ समझने लगते हैं।

भावनात्मक उपेक्षा के प्रमुख लक्षणों में अकेलापन, निराशा, आत्मसम्मान में कमी, अवसाद, चिड़चिड़ापन और जीवन के प्रति उदासीनता शामिल हैं। कई मामलों में यह स्थिति गंभीर मानसिक रोगों जैसे अवसाद (Depression) और आत्मघाती प्रवृत्तियों को जन्म देती है। वृद्ध व्यक्ति जब यह अनुभव करता है कि उसकी राय, अनुभव और भावनाओं का कोई महत्व नहीं है, तब वह सामाजिक और पारिवारिक जीवन से स्वयं को अलग करने लगता है।

भावनात्मक उपेक्षा का प्रभाव वृद्धों के शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। मानसिक तनाव के कारण अनिद्रा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। शोध बताते हैं कि जिन वृद्धों को परिवार का भावनात्मक सहयोग नहीं मिलता, उनमें बीमारियों से उबरने की क्षमता भी कम हो जाती है।

भावनात्मक उपेक्षा का एक महत्वपूर्ण कारण पीढ़ीगत अंतर (Generation Gap) भी है। युवा पीढ़ी की जीवनशैली, मूल्य और सोच वृद्धों से भिन्न होती है, जिसके कारण संवाद में कमी आती है। तकनीकी प्रगति और डिजिटल माध्यमों के बढ़ते प्रयोग ने भी पारिवारिक संवाद को सीमित कर दिया है, जिससे वृद्ध और अधिक अकेले महसूस करते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि परिवार वृद्धों को केवल आश्रित व्यक्ति न मानकर भावनात्मक रूप से संवेदनशील मानव के रूप में स्वीकार करे। नियमित संवाद, सम्मानजनक व्यवहार, पारिवारिक निर्णयों में उनकी भागीदारी और उनके अनुभवों को महत्व देकर भावनात्मक उपेक्षा को कम किया जा सकता है। इस प्रकार भावनात्मक देखभाल वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मसम्मान और जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- सामाजिक अलगाव

सामाजिक अलगाव वृद्धावस्था की एक अत्यंत गंभीर और जटिल समस्या है, जो वृद्ध व्यक्ति को सामाजिक, पारिवारिक तथा सामुदायिक जीवन से धीरे-धीरे अलग कर देती है। वृद्धावस्था में शारीरिक क्षमता में कमी, स्वास्थ्य समस्याएँ, सेवानिवृत्ति तथा सामाजिक भूमिकाओं के ह्रास के कारण वृद्ध व्यक्ति का सामाजिक दायरा सीमित होने लगता है। परिणामस्वरूप वह स्वयं को समाज के मुख्य प्रवाह से कटा हुआ अनुभव करता है।

भारतीय समाज में परंपरागत रूप से वृद्धों को परिवार और समुदाय में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वे पारिवारिक निर्णयों में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते थे और सामाजिक अनुष्ठानों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। किंतु आधुनिक सामाजिक परिवर्तनोंकृजैसे नगरीकरण, औद्योगीकरण, एकल परिवार व्यवस्था और युवाओं का पलायनकृने वृद्धों की सामाजिक सहभागिता को कम कर दिया है। इससे वृद्ध व्यक्ति सामाजिक संबंधों से वंचित होने लगा है।

सामाजिक अलगाव का एक प्रमुख कारण सेवानिवृत्ति भी है। कार्यस्थल से अलग होने के बाद वृद्ध व्यक्ति अपने सहकर्मियों और सामाजिक संपर्कों को खो देता है। इसके साथ ही शारीरिक दुर्बलता और गतिशीलता में कमी के कारण वह सामाजिक कार्यक्रमों, धार्मिक गतिविधियों और सामुदायिक आयोजनों में भाग लेने में असमर्थ हो जाता है। यह स्थिति धीरे-धीरे सामाजिक निष्क्रियता को जन्म देती है।

सामाजिक अलगाव का प्रभाव वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यंत नकारात्मक पड़ता है। अकेलापन, निराशा, आत्महीनता और अवसाद जैसी समस्याएँ सामाजिक अलगाव का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। शोध बताते हैं कि सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़े वृद्धों में स्मृति ह्रास, चिंता विकार और आत्महत्या की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक अलगाव शारीरिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है, क्योंकि सामाजिक सहभागिता की कमी से रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो जाती है।

तकनीकी विकास भी सामाजिक अलगाव को बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। डिजिटल माध्यमों पर अत्यधिक निर्भर युवा पीढ़ी और तकनीक से अपरिचित वृद्धों के बीच संवाद की खाई बढ़ती जा रही है। इससे वृद्ध व्यक्ति स्वयं को अप्रासंगिक और उपेक्षित अनुभव करता है।

सामाजिक अलगाव को कम करने के लिए आवश्यक है कि परिवार, समाज और राज्य मिलकर प्रयास करें। परिवार को वृद्धों को सामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित करना चाहिए, उनकी राय को महत्व देना चाहिए और सामुदायिक जीवन से जोड़े रखना चाहिए। साथ ही, वृद्ध-अनुकूल सामाजिक कार्यक्रम, सामुदायिक केंद्र और स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका को सुदृढ़ करना आवश्यक है। इस प्रकार सामाजिक सहभागिता को बढ़ाकर वृद्धों के मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

पारिवारिक तनाव

परिवारिक तनाव वृद्धावस्था की एक महत्वपूर्ण और जटिल समस्या है, जो पारिवारिक संबंधों की गुणवत्ता, वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य तथा पारिवारिक संरचना को गहराई से प्रभावित करती है। वृद्धावस्था में व्यक्ति की शारीरिक क्षमता, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक भूमिका में कमी आने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप परिवार के भीतर भूमिकाओं और अपेक्षाओं में परिवर्तन होता है। यही परिवर्तन कई बार परिवारिक तनाव का प्रमुख कारण बनता है।

परंपरागत भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था में वृद्ध परिवार के मार्गदर्शक और निर्णयकर्ता की भूमिका में होते थे। किंतु आधुनिक समय में जब परिवार एकल रूप ले रहा है, तब वृद्धों की यह भूमिका सीमित होती जा रही है। निर्णय प्रक्रिया से वृद्धों को बाहर रखा जाना, उनकी राय की अनदेखी तथा पारिवारिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की अपेक्षा परिवारिक तनाव को जन्म देती है। वृद्ध व्यक्ति स्वयं को परिवार में अप्रासंगिक और उपेक्षित अनुभव करने लगता है।

आर्थिक निर्भरता परिवारिक तनाव का एक महत्वपूर्ण कारण है। सेवानिवृत्ति के बाद आय का स्रोत समाप्त हो जाने से वृद्ध व्यक्ति आर्थिक रूप से परिवार पर निर्भर हो जाता है। यह निर्भरता कई बार परिवार के अन्य सदस्यों के लिए बोझ के रूप में देखी जाती है, जिससे आपसी संबंधों में तनाव उत्पन्न होता है। बढ़ते चिकित्सा खर्च और सीमित संसाधन भी इस तनाव को और अधिक बढ़ा देते हैं।

पीढ़ीगत अंतर (Generation Gap) भी परिवारिक तनाव का प्रमुख कारण है। वृद्धों और युवा पीढ़ी के विचारों, मूल्यों और जीवनशैली में अंतर होने के कारण पारस्परिक समझ में कमी आ जाती है। आधुनिक जीवनशैली, तकनीकी निर्भरता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती प्रवृत्ति वृद्धों की पारंपरिक सोच से टकराव उत्पन्न करती है, जिससे संवाद की कमी और मानसिक दूरी बढ़ती है।

परिवारिक तनाव का प्रभाव वृद्धों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गंभीर रूप से पड़ता है। निरंतर तनाव के कारण वृद्धों में अवसाद, चिंता, अनिद्रा और उच्च रक्तचाप जैसी समस्याएँ विकसित हो सकती हैं। कई मामलों में यह तनाव भावनात्मक उपेक्षा, सामाजिक अलगाव और यहां तक कि वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार (ElderAbuse) का रूप भी ले लेता है।

परिवारिक तनाव को कम करने के लिए आवश्यक है कि परिवार में पारस्परिक संवाद, सहनशीलता और संवेदनशीलता को बढ़ावा दिया जाए। वृद्धों को पारिवारिक निर्णयों में सम्मिलित करना, उनकी भावनाओं को समझना और उनकी आवश्यकताओं का सम्मान करना परिवारिक सामंजस्य को सुदृढ़ कर सकता है। इसके अतिरिक्त, पारिवारिक परामर्श सेवाएँ और सामाजिक जागरूकता कार्यक्रम परिवारिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार संतुलित और सहयोगात्मक पारिवारिक वातावरण वृद्धों के सम्मानजनक और सुरक्षित जीवन के लिए अनिवार्य है।

8. शोध-पद्धति

यह अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है।

स्रोत, पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों, सामाजिक सर्वेक्षण

9. निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि परिवार वृद्धों की देखभाल की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। सामाजिक परिवर्तन के बावजूद भावनात्मक और नैतिक समर्थन के लिए परिवार का कोई विकल्प नहीं है।

10. सुझाव

- परिवारों में वृद्धों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाई जाए।
- संयुक्त परिवार प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जाए।
- वृद्धों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ बढ़ाई जाएँ।
- सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों में समन्वय हो।

संदर्भ सूची

1. देसाई, ए. आर. (2010). भारतीय परिवार व्यवस्था. मुंबईः पॉपुलर प्रकाशन।
2. सिंह, योगेन्द्र. (2015). भारत में सामाजिक परिवर्तन. जयपुर।
3. Help age India.(2022). Elderly in India Report.
4. भारत सरकार. राष्ट्रीय वृद्धजन नीति

समन्वित ग्राम विकास : श्रीगंगानगर के संदर्भ में एक विस्तृत विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन

डॉ. सोमप्रकाश
शोध निर्देशक, भूगोल विभाग
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर (राज.)

अमरप्रीत सिंह
शोधार्थी, भूगोल विभाग
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर (राज.)

1. परिचय एवं वैचारिक ढांचा (Introduction and Conceptual Framework)

1.1 समन्वित ग्राम विकास की अवधारणा (Concept of Integrated Rural Development)

समन्वित ग्राम विकास (Integrated Rural Development - IRD) की अवधारणा केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय पहलुओं का एक बहुआयामी संश्लेषण है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहां की अधिकांश जनसंख्या गावों में निवास करती है, ग्राम विकास राष्ट्रीय प्रगति का मूल आधार है। 'समन्वित' शब्द का तात्पर्य विभिन्न विकासात्मक घटकों—कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, और अवसंरचनाके बीच एक सामंजस्यपूर्ण संतुलन स्थापित करना है, ताकि ग्रामीण निर्धनता को जड़ से समाप्त किया जा सके और जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके।[1]

ऐतिहासिक रूप से, भारत में ग्रामीण विकास के प्रयास 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) से शुरू हुए, लेकिन 1978 में शुरू किए गए 'एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (IRDP) ने इसे एक नई दिशा दी। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे (BPL) जीवन यापन करने वाले परिवारों को उत्पादक संपत्ति प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना था[2]। श्रीगंगानगर जिले के संदर्भ में, यह अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जिला केवल राजस्थान का एक प्रशासनिक हिस्सा नहीं है, बल्कि मानव प्रयास और इंजीनियरिंग के अद्भुत संयोग से रेगिस्तान को 'अन्न के कटोरे' (Food Basket) में बदलने की एक जीवित प्रयोगशाला है।

श्रीगंगानगर में 'समन्वित विकास' की परिभाषा शेष राजस्थान से भिन्न है। यहाँ विकास का मॉडल नहरी सिंचाई (Canal Irrigation) पर आधारित गहन कृषि (Intensive Agriculture) है। यह मॉडल एक तरफ आर्थिक समृद्धि का प्रतीक है, तो दूसरी तरफ पारिस्थितिकीय असंतुलन (Ecological Imbalance) और सामाजिक चुनौतियों का कारण भी बना है। अतः, इस प्रतिवेदन में हम श्रीगंगानगर के संदर्भ में ग्राम विकास को न केवल सरकारी योजनाओं के कार्यान्वयन के रूप में, बल्कि एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में विश्लेषण करेंगे।

1.2 श्रीगंगानगर का ऐतिहासिक और भौगोलिक परिदृश्य (Historical and Geographical Profile)

श्रीगंगानगर, जिसे श्राजस्थान का अन्न भंडारश और श्बागानों की भूमिश कहा जाता है, राज्य के सबसे उत्तरी भाग में

स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 28°42'33" से 30°12'16" उत्तर और देशांतरीय विस्तार 72°39' 33" से 74°17' 51" पूर्व के बीच है।[3] यह जिला उत्तर में पंजाब, पूर्व में हनुमानगढ़, दक्षिण में बीकानेर और पश्चिम में पाकिस्तान के साथ 212 किलोमीटर लंबी अंतरराष्ट्रीय सीमा साझा करता है।[4]

भौगोलिक वर्गीकरण

विकास की दृष्टि से जिले को तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जो यहाँ की कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को निर्धारित करते हैं–

1. नहरी सिंचित क्षेत्र (Canal Irrigated Zone): यह क्षेत्र गंग नहर और भाखड़ा नहर प्रणालियों द्वारा सिंचित है। यह जिले का सबसे उपजाऊ भाग है, जो पंजाब के मैदानों जैसा दिखता है और यहाँ गेहूँ, कपास और किन्नू की खेती प्रमुखता से होती है।[5]

2. घग्घर का नाली क्षेत्र (Naali Belt): यह घग्घर नदी (प्राचीन सरस्वती) का संकरा बेसिन है। यह नदी मौसमी है और जब इसमें बाढ़ आती है, तो यह क्षेत्र जलमग्न हो जाता है। यहाँ की मृदा चिकनी दोमट है, जो धान की खेती के लिए उपयुक्त है।[6]

3. बालुका स्तूप क्षेत्र (Sandy Dunes Area): यह क्षेत्र मुख्य रूप से दक्षिणी और पश्चिमी भागों में पाया जाता है, जहाँ इंदिरा गांधी नहर परियोजना (IGNP) द्वारा सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई है। यहाँ की मृदा रेतीली है और सिंचाई के कारण अब यहाँ भी कृषि संभव हो पाई है।[7]

ऐतिहासिक परिवर्तन : श्रीगंगानगर का आधुनिक स्वरूप बीकानेर के तत्कालीन महाराजा गंगा सिंह की दूरदर्शिता का परिणाम है। 1899-1900 के भीषण अकाल (छप्पनिया अकाल) के बाद, महाराजा ने सतलज नदी के पानी को इस प्यासी धरती तक लाने का संकल्प लिया। 1927 में गंग नहर (Gang Canal) के आगमन ने इस क्षेत्र की कायापलट कर दी। यह विश्व की सबसे पुरानी पक्की नहरों में से एक है।[8] नहर के निर्माण के बाद, पंजाब से मेहनती किसानों को यहाँ बसाया गया, जिससे एक नई 'नहरी संस्कृति' (Canal Culture) का जन्म हुआ। इसने न केवल कृषि उत्पादन बढ़ाया बल्कि ग्रामीण सामाजिक संरचना को भी बदल दिया, जिससे श्रीगंगानगर राजस्थान का सबसे समृद्ध जिला बन गया।

2. कृषि अर्थव्यवस्था - ग्रामीण विकास का इंजन (Agrarian Economy: Engine of Rural Development)

2.1 सिंचाई प्रणाली और भूमि उपयोग (Irrigation Systems and Land Use)

श्रीगंगानगर की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूर्णतः सिंचाई पर निर्भर है। यहाँ की कृषि 'वर्षा आधारित' न होकर 'नहर आधारित' है, जो इसे राजस्थान के अन्य जिलों से अलग करती है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 10.97 लाख हेक्टेयर है, जिसमें से लगभग 77.5% क्षेत्र खेती के अंतर्गत आता है।[9]

प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं

1. गंग नहर प्रणाली (Gang Canal System): यह प्रणाली मुख्य रूप से श्रीगंगानगर, करनपुर, पदमपुर और रायसिंहनगर तहसीलों को सिंचित करती है। इसकी कुल कृषि योग्य कमान क्षेत्र (CCA) लगभग 3.55 लाख हेक्टेयर है।[10] 2000 के दशक में इसके आधुनिकीकरण और लाइनिंग (Lining) के लिए 621.42 करोड़ रुपये की परियोजना चलाई गई, जिससे सिंचाई दक्षता में सुधार हुआ है।[11]

2. भाखड़ा नहर प्रणाली (Bhakra Canal System): यह प्रणाली जिले के उत्तर-पूवी भाग (सादुलशहर और संगरिया क्षेत्र) को कवर करती है। इसका कमान क्षेत्र लगभग 0.87 लाख हेक्टेयर है।[12]

3. इंदिरा गांधी नहर परियोजना (IGNP): यह एशिया की सबसे बड़ी नहर प्रणालियों में से एक है। इसकी

सूरतगढ़ और अनूपगढ़ शाखाएं जिले के दक्षिणी और पश्चिमी रेगिस्तानी इलाकों में पानी पहुँचाती हैं, जिससे टिब्बा क्षेत्र (Dune Area) भी कृषि योग्य बन गया है।[13]

इन नहरों के जाल ने श्रीगंगानगर में फसल सघनता (Cropping Intensity) को 140% से अधिक कर दिया है, जिसका अर्थ है कि किसान वर्ष में कम से कम दो फसलें लेते हैं। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY) के तहत जिला सिंचाई योजना (DIP) में जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई पर जोर दिया जा रहा है, जिसके लिए 1,02,019 लाख रुपये का सात वर्षीय बजट अनुमानित किया गया है।

2.2 फसल चक्र और उत्पादकता (Cropping Patterns and Productivity)

श्रीगंगानगर को 'राजस्थान का अन्न भंडार' कहा जाता है क्योंकि यह राज्य में गेहूँ का सबसे बड़ा उत्पादक है। यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था रबी और खरीफ दोनों मौसमों में सक्रिय रहती है।

सारणी 1: श्रीगंगानगर जिले में प्रमुख फसलों का उत्पादन और उत्पादकता

फसल	मौसम	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	उत्पादन (क्विंटल)	उत्पादकता (किग्रा/हेक्टेयर)
गेहूँ (Wheat)	रबी	2,21,120	11,10,022	5,020
सरसों (Mustard)	रबी	3,10,351	5,67,942	1,830
कपास (Cotton)	खरीफ	2,31,830	6,60,716	285 (Lint)
ग्वार (Guar)	खरीफ	2,22,814	2,19,026	983
चना (Gram)	रबी	65,071	91,099	1,400

स्रोत : जिला कृषि विभाग, श्रीगंगानगर के आँकड़े 6

विश्लेषण

गेहूँ : 5020 किग्रा/हेक्टेयर की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से काफी ऊपर है, जो यहाँ के किसानों द्वारा उन्नत बीजों और उर्वरकों के प्रयोग को दर्शाती है।

सरसों : श्रीगंगानगर और आस-पास का क्षेत्र भारत में सरसों का प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है, जो खाद्य तेल सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

कपास (नरमा): इसे 'सफेद सोना' (White Gold) कहा जाता है। बीटी कॉटन (Bt Cotton) के आगमन ने यहाँ कपास की खेती को एक नया आयाम दिया है, हालांकि इससे कीट प्रबंधन की नई चुनौतियां भी उभरी हैं।

2.3 बागवानी : किन्नू की सफलता की कहानी (Horticulture: The Kinnow Success Story)

समन्वित ग्राम विकास में फसल विविधीकरण (Diversification) एक महत्वपूर्ण घटक है। श्रीगंगानगर ने पारंपरिक अनाज की खेती से आगे बढ़कर बागवानी में एक विशिष्ट पहचान बनाई है। यहाँ का 'किन्नू' (Kinnow Mandarin) अपनी मिठास और रस के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

विस्तार : जिले में किन्नू के बाग लगभग 12,000 हेक्टेयर क्षेत्र में फैले हुए हैं।

आर्थिक प्रभाव : एक परिपक्व किन्नू का बाग किसानों को प्रति हेक्टेयर लगभग 1,500 से 1,800 अमेरिकी डॉलर (लगभग 1.2 से 1.5 लाख रुपये) तक की आय दे सकता है, जो पारंपरिक फसलों की तुलना में बहुत अधिक है।

चुनौतियां : हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन और तापमान में उतार-चढ़ाव के कारण किन्नू की उपज में अस्थिरता देखी गई है। 2021-23 के दौरान प्रति पेड़ उपज 150-170 किग्रा से गिरकर 40 किग्रा तक पहुंच गई थी, जिससे ग्रामीण

आय पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, प्रसंस्करण इकाइयों (Processing Units) की कमी और कोल्ड स्टोरेज के अभाव के कारण किसानों को फसल कटाई के बाद के नुकसान (Post-harvest losses) का सामना करना पड़ता है।

3. शासकीय योजनाएं और ग्रामीण विकास (Government Schemes and Rural Development)

राज्य और केंद्र सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएं श्रीगंगानगर के ग्रामीण परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य न केवल बुनियादी ढांचा तैयार करना है, बल्कि सामाजिक सुरक्षा और रोजगार की गारंटी भी देना है।

3.1 महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA)

मनरेगा (MGNREGA) ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों के लिए आजीविका सुरक्षा का मुख्य साधन है। श्रीगंगानगर में, जहाँ यंत्रीकृत खेती के कारण खेत मजदूरों की मांग मौसमी होती है, मनरेगा ऑफ-सीजन में रोजगार का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

वित्तीय वर्ष 2024-25 में प्रगति

व्यय और रोजगार : जिले के विभिन्न ब्लॉकों में मनरेगा के तहत भारी निवेश किया गया है। उदाहरण के लिए, गंगानगर ब्लॉक में 17.89 करोड़ रुपये, सूरतगढ़ में 2.42 करोड़ रुपये और रायसिंहनगर में 2.40 करोड़ रुपये का व्यय दर्ज किया गया है।

सामाजिक समावेश : मनरेगा के तहत सृजित कुल कार्य दिवसों में महिलाओं की भागीदारी 57% से अधिक रही है, जो महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है। अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के परिवारों के लिए भी यह योजना जीवनदायिनी साबित हुई है, क्योंकि जिले में भूमिहीन मजदूरों की एक बड़ी संख्या इन्ही वर्गों से आती है।

परिसंपत्ति निर्माण : अभिसरण (Convergence) के माध्यम से मनरेगा का उपयोग अब केवल गड्ढे खोदने तक सीमित नहीं है, बल्कि आंगनवाड़ी केंद्रों का निर्माण, पशु आश्रय स्थल (Cattle Sheds), और जल संरक्षण संरचनाओं (Diggis) के निर्माण में किया जा रहा है।

3.2 एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) की विरासत

यद्यपि IRDP को अब राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) या 'राजीविका' (RGAVP) में समाहित कर दिया गया है, लेकिन इसकी नींव आज भी प्रासंगिक है। 1978 में शुरू किए गए इस कार्यक्रम ने श्रीगंगानगर में गरीबी उन्मूलन के लिए ऋण-सह-अनुदान (Credit-cum-Subsidy) मॉडल पेश किया था।

उद्देश्य : ग्रामीण गरीबों, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों को स्वरोजगार के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।

घटक : इसके अंतर्गत ट्राइसम (TRYSEM - ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षण), डीडब्ल्यूसीआरए (DWCRA - ग्रामीण महिलाओं और बच्चों का विकास), और गंगा कल्याण योजना (नलकूपों और बोरवेल के लिए सहायता) जैसी उप-योजनाएं शामिल थीं।

वर्तमान स्वरूप (NRLM/Rajeevika): आज, राजीविका के तहत जिले में हजारों स्वयं सहायता समूहों (SHGs) का गठन किया गया है। गंगानगर में 3 लाख से अधिक महिलाओं को इन समूहों से जोड़ा गया है, जो न केवल बचत करती हैं बल्कि बैंक ऋण लेकर डेयरी, सिलाई, और खुदरा दुकानें जैसे छोटे व्यवसाय चला रही हैं।

3.3 सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम (BADP)

श्रीगंगानगर एक सीमावर्ती जिला है, जिसकी सुरक्षा और विकास राष्ट्रीय महत्व का विषय है। सीमा क्षेत्र विकास

कार्यक्रम (BADP) का उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय सीमा के पास रहने वाले लोगों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करना है।

रणनीति : यह कार्यक्रम सीमा से 0-10 किलोमीटर के दायरे में आने वाले गांवों के ष्संतृप्तिष (Saturation) पर केंद्रित है। इसका अर्थ है कि इन गांवों में सड़क, बिजली, पानी, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सभी बुनियादी सुविधाएं शत-प्रतिशत उपलब्ध होनी चाहिए।

क्रियान्वयन : जिले के अनूपगढ़, घड़साना, रायसिंहनगर और करनपुर ब्लॉकों में BADP के तहत संपर्क सड़कों (Link Roads), सामुदायिक भवनों और सुरक्षात्मक बुनियादी ढांचे का निर्माण किया गया है।

चुनौतियां : नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG) की रिपोर्टों में यह बात सामने आई है कि कई बार निधियों का उपयोग प्राथमिकता वाले गांवों (0-10 किमी) के बजाय अन्य क्षेत्रों में कर दिया जाता है, या निर्मित संपत्तियां (जैसे खड़ंजा सड़कें) गुणवत्ता मानकों पर खरी नहीं उतरतीं। सीमावर्ती क्षेत्रों में मोबाइल कनेक्टिविटी और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी अभी भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, जिससे इन क्षेत्रों से पलायन का खतरा बना रहता है।

3.4 प्रधानमंत्री आवास योजना - ग्रामीण (PMAY-G)

'सभी के लिए आवास' के लक्ष्य के तहत, श्रीगंगानगर में PMAY-G के माध्यम से कच्ची छतों के नीचे रहने वाले बीपीएल परिवारों को पक्के मकान उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

प्रगति : जिले में हजारों मकानों का निर्माण पूरा हो चुका है। लाभार्थियों को न केवल मकान निर्माण के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है, बल्कि मनरेगा के तहत 90 दिनों की मजदूरी और स्वच्छ भारत मिशन के तहत शौचालय निर्माण के लिए अतिरिक्त राशि भी प्रदान की जाती है।

4. पारिस्थितिकीय संकट - विकास की कीमत (Ecological Crisis: The Cost of Development)

श्रीगंगानगर का विकास मॉडल 'उच्च इनपुट, उच्च आउटपुट' (High Input, High Output) कृषि पर आधारित है। दशकों के इस गहन दोहन ने जिले को एक गंभीर पारिस्थितिकीय संकट के मुहाने पर खड़ा कर दिया है, जो भविष्य के ग्रामीण विकास के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

4.1 'सेम' की समस्या (The Problem of 'Sem' - Waterlogging)

नहरी सिंचाई का सबसे विनाशकारी दुष्प्रभाव 'सेम' या जलाक्रांति (Waterlogging) के रूप में सामने आया है।

कारण : इंदिरा गांधी नहर परियोजना (IGNP) के कमांड क्षेत्र में, विशेष रूप से रावतसर (हनुमानगढ़) और सूरतगढ़, बड़ोपल (गंगानगर) के पास, जमीन के नीचे जिप्सम या कैल्शियम कार्बोनेट की एक कठोर परत (Hardpan) मौजूद है। यह परत पानी को नीचे रिसने से रोकती है। दशकों की लगातार सिंचाई और नहरों से रिसाव (Seepage) के कारण भूजल स्तर (Water Table) खतरनाक रूप से ऊपर आ गया है।

प्रभाव : जब जलस्तर जड़ों के क्षेत्र (Root Zone) तक पहुँच जाता है, तो कैशिकीय क्रिया (Capillary Action) द्वारा मिट्टी के नीचे के लवण (Salts) सतह पर आ जाते हैं। इससे भूमि बंजर और लवणीय हो जाती है। हजारों हेक्टेयर उपजाऊ भूमि दलदल में बदल गई है, जिसे स्थानीय भाषा में श्सेमश कहा जाता है। इससे न केवल कृषि उत्पादन खत्म हो रहा है, बल्कि गांवों के मकान भी ढह रहे हैं।

समाधान के प्रयासरू इंडो-डच परियोजना और अन्य योजनाओं के तहत जल निकासी (Drainage) प्रणाली और बायो-ड्रेनेज (यूकेलिप्टस के पेड़ लगाना) का प्रयोग किया जा रहा है, लेकिन समस्या की भयावहता के सामने ये प्रयास अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं।

4.2 जल प्रदूषण और स्वास्थ्य संकट (Water Pollution and Health Crisis)

श्रीगंगानगर को पानी पंजाब की नदियों (सतलज और ब्यास) से मिलता है। लेकिन यह पानी अपने साथ केवल जीवन नहीं, बल्कि मृत्यु भी ला रहा है।

प्रदूषण के स्रोत : पंजाब के लुधियाना और जालंधर जैसे औद्योगिक शहरों का अनुपचारित रसायन और सीवेज नदियों में बहा दिया जाता है। इसके अलावा, खेतों से बहकर आने वाले कीटनाशक भी इस पानी में मिल जाते हैं। जब नहरबंदी (Canal Closure) के बाद पानी छोड़ा जाता है, तो यह काला और अत्यंत जहरीला होता है।

स्वास्थ्य प्रभाव : इस दूषित पानी के सेवन और भोजन श्रृंखला (Food Chain) में कीटनाशकों के प्रवेश ने श्रीगंगानगर में कैंसर का प्रकोप पैदा कर दिया है। बीकानेर स्थित 'आचार्य तुलसी कैंसर संस्थान' जाने वाली ट्रेन को स्थानीय लोग 'कैंसर ट्रेन' के नाम से जानते हैं क्योंकि इसमें मरीजों की बड़ी संख्या इसी जिले से होती है। इसके अलावा, त्वचा रोग, हेपेटाइटिस और गुर्दे की बीमारियों का प्रकोप भी ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अधिक है।

4.3 कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग (Excessive Use of Pesticides)

श्रीगंगानगर के किसान फसल सुरक्षा के लिए रसायनों पर बहुत अधिक निर्भर हैं।

आँकड़े : अध्ययनों से पता चलता है कि गोभी और टमाटर जैसी सब्जियों में एक फसल चक्र के दौरान औसतन 14-15 बार कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। कपास की फसल में भी भारी मात्रा में रसायनों का उपयोग होता है।

दुष्प्रभाव : यह न केवल उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए खतरा है, बल्कि छिड़काव करने वाले खेत मजदूरों को भी श्वसन और त्वचा संबंधी गंभीर बीमारियों का शिकार बना रहा है। एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) तकनीकों को अपनाना अभी भी सीमित है।

5. सामाजिक चुनौतियां और नशा मुक्ति (Social Challenges and Drug De-addiction)

आर्थिक समृद्धि हमेशा सामाजिक कल्याण की गारंटी नहीं होती। श्रीगंगानगर इसका एक ज्वलंत उदाहरण है, जहाँ बढ़ती आय के साथ-साथ सामाजिक ताना-बाना बिखर रहा है।

5.1 नशाखोरी की महामारी (The Epidemic of Substance Abuse)

पंजाब की सीमा से सटे होने के कारण, श्रीगंगानगर पर 'उड़ता पंजाब' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। नशाखोरी, विशेष रूप से सिंथेटिक ड्रग्स और हेरोइन (जिसे स्थानीय भाषा में 'चिट्टा' कहा जाता है) का सेवन, ग्रामीण युवाओं को बर्बाद कर रहा है।

स्थिति की गंभीरता : पुलिस और प्रशासन की रिपोर्टों के अनुसार, जिले में ड्रग्स की तस्करी और सेवन एक बड़ी समस्या बन चुकी है। हाल ही में 'ऑपरेशन प्राणवायु' (Operation Pranayu) और अन्य अभियानों के तहत पुलिस ने मेफेड्रोन (MD) बनाने वाली अवैध प्रयोगशालाओं का भंडाफोड़ किया है, जो यह दर्शाता है कि यह समस्या अब केवल तस्करी तक सीमित नहीं है, बल्कि स्थानीय उत्पादन तक पहुँच गई है।

सामाजिक प्रभाव : नशाखोरी के कारण ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति चरमरा रही है। चोरी, लूट और घरेलू हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। युवा शक्ति, जो विकास का आधार होनी चाहिए थी, नशे की गिरफ्त में निष्क्रिय हो रही है।

नशा मुक्त श्रीगंगानगर अभियान : जिला प्रशासन ने नशा मुक्ति के लिए व्यापक अभियान चलाया है। इसमें जागरूकता रैलियां, भाषण प्रतियोगिताएं और ई-शपथ (E-oath) जैसे कार्यक्रम शामिल हैं। लगभग 1.25 लाख लोगों ने नशा न करने की शपथ ली है। साथ ही, 'आसरा नशा मुक्ति केंद्र' और अन्य सरकारी/निजी पुनर्वास केंद्र पीड़ितों के इलाज में जुटे हैं।

5.2 शिक्षा और साक्षरता (Education and Literacy)

समन्वित विकास के लिए मानव संसाधन का विकास अनिवार्य है।

साक्षरता दर : 2011 की जनगणना के अनुसार, जिले की साक्षरता दर 70.25% है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष साक्षरता 75.90% और महिला साक्षरता 55.31% है। यह लैंगिक अंतराल (Gender Gap) चिंता का विषय है।

शिक्षा की गुणवत्ता : राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (NAS) और परख (PARAKH) की रिपोर्टों के अनुसार, जिले के छात्रों का प्रदर्शन भाषा और गणित में औसत दर्जे का है। उच्च शिक्षा और कौशल विकास के अवसरों की कमी के कारण, शिक्षित युवा भी बेरोजगारी का सामना कर रहे हैं या खेती की ओर लौटने को मजबूर हैं।

6. भविष्य की रूपरेखा और सुझाव (Future Roadmap and Recommendations)

श्रीगंगानगर के ग्रामीण विकास को एक नई दिशा की आवश्यकता है, जो केवल उत्पादन बढ़ाने पर केंद्रित न हो, बल्कि स्थिरता (Sustainability) और जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life) पर जोर दे।

6.1 कृषि का आधुनिकीकरण और विविधीकरण (Modernization and Diversification)

सूक्ष्म सिंचाई : पीएमकेएसवाई (PMKSY) के तहत ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई को अनिवार्य किया जाना चाहिए, विशेष रूप से किन्नू और कपास की खेती में। इससे पानी की बचत होगी और श्सेमश की समस्या कम होगी।

फसल चक्र परिवर्तन : गेहूँ-धान-कपास के चक्र को तोड़कर दालों और तिलहनों (जो कम पानी मांगते हैं) को बढ़ावा देना चाहिए।

जैविक खेती : 'कैंसर ट्रेन' के कलंक को मिटाने के लिए जैविक और प्राकृतिक खेती को मिशन मोड में अपनाना होगा। श्रीगंगानगर के पास 'ऑर्गेनिक फूड हब' बनने की क्षमता है।

6.2 कृषि-प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन (Agro&processing and Value Addition)

फूड पार्क : जिले में किन्नू, गाजर और सरसों के लिए समर्पित फूड पार्कों की स्थापना की जानी चाहिए। इससे स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजित होंगे और किसानों को अपनी उपज का बेहतर मूल्य मिलेगा। गाजर मंडी को आधुनिक बनाकर निर्यात के अवसर तलाशे जा सकते हैं।

6.3 पारिस्थितिकीय बहाली (Ecological Restoration)

जल संधियां : राजस्थान सरकार को पंजाब के साथ मिलकर जल प्रदूषण के मुद्दे को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। नहरों में केवल स्वच्छ पानी का प्रवाह सुनिश्चित करना मानवाधिकार का प्रश्न है।

ड्रेनेज मास्टर प्लान : सेम प्रभावित क्षेत्रों के लिए एक व्यापक ड्रेनेज मास्टर प्लान लागू किया जाना चाहिए, जिसमें सब-सरफेस ड्रेनेज और वर्टिकल ड्रेनेज का संयोजन हो।

6.4 सामाजिक पुनरुत्थान (Social Regeneration)

कौशल विकासरू ग्रामीण युवाओं को कृषि से इतर क्षेत्रों (जैसे सौर ऊर्जा, लॉजिस्टिक्स, खाद्य प्रसंस्करण) में कौशल प्रदान करने के लिए आरएसएलडीसी (RSLDC) को सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

नशा मुक्ति : नशा मुक्ति अभियानों को जन-आंदोलन बनाना होगा। स्कूलों और कॉलेजों में मानसिक स्वास्थ्य परामर्शदाता नियुक्त किए जाने चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)

श्रीगंगानगर का ग्रामीण विकास मॉडल भारत के लिए एक केस स्टडी है। यह दिखाता है कि कैसे मानवीय इच्छाशक्ति और तकनीक मिलकर रेगिस्तान को नखलिस्तान बना सकते हैं। 1927 में गंग नहर के आगमन से शुरू हुई विकास की यात्रा ने इस जिले को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया है। यहाँ का किसान समृद्ध है, खेतों में हरियाली है, और मंडियां अनाज से भरी हैं।

किंतु, इस चमक के पीछे गहरा अंधेरा भी है। पारिस्थितिकीय असंतुलन, जहरीला पानी, बंजर होती जमीन और नशे में डूबती युवा पीढ़ी—ये 'असमन्वित' विकास के लक्षण हैं। सच्चा 'समन्वित ग्राम विकास' (Samnvit Gram Vikas) तभी संभव होगा जब हम आर्थिक लाभ के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक स्वास्थ्य को भी समान महत्व देंगे।

भविष्य का श्रीगंगानगर केवल श्अन्न का कटोराश नहीं, बल्कि 'स्वस्थ और सतत विकास का मॉडल' होना चाहिए। इसके लिए सरकार, प्रशासन और सबसे महत्वपूर्ण—यहाँ के मेहनती किसानों को मिलकर एक नई 'हरित क्रांति' की शुरुआत करनी होगी, जो रसायनों पर नहीं, बल्कि प्रकृति और मानव के सह-अस्तित्व पर आधारित हो।

सारणी 2. श्रीगंगानगर की जनसांख्यिकीय रूपरेखा (2011 जनगणना)

संकेतक (Indicator)	विवरण (Details)
कुल जनसंख्या	19,69,168 (अनुमानित 2024रु. 21.7 लाख)
ग्रामीण जनसंख्या	72.8%
लिंगानुपात	887 (प्रति 1000 पुरुष)
साक्षरता दर (कुल)	70.25%
पुरुष साक्षरता	78.5%
महिला साक्षरता	61.2%
अनुसूचित जाति (SC) जनसंख्या	36.58% (राज्य में सर्वाधिक में से एक)
अनुसूचित जनजाति (ST) जनसंख्या	0.68%

स्रोत : जनगणना 2011 और IndiaStat अनुमान

सारणी 3. श्रीगंगानगर में ग्रामीण विकास योजनाओं का वित्तीय विश्लेषण (एक झलक)

योजना	मुख्य गतिविधियां	टिप्पणी
PMKSY (सिंचाई)	डिग्गी निर्माण, ड्रिप/स्प्रिंकलर अनुदान	जल बचत और उत्पादकता वृद्धि में सबसे प्रभावी।
MGNREGA	जल संरक्षण, पौधारोपण, ग्रामीण संपर्क	2024-25 में करोड़ों का व्यय; महिला भागीदारी उच्च।
BADP	सीमावर्ती अवसंरचना, सुरक्षा दीवारें	निधियों के उपयोग और गुणवत्ता पर अधिक निगरानी की आवश्यकता।
PMAY-G	पक्के आवास	बीपीएल परिवारों के जीवन स्तर में सुधार।

संदर्भ निर्देश : इस प्रतिवेदन में प्रस्तुत सभी तथ्य और आँकड़े उपलब्ध शोध सामग्री 1 पर आधारित हैं। विश्लेषण को जिले की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप ढाला गया है।

Works cited

1. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम क्या है? IRDP upsc pdf in hindi - Testbook, accessed February 10, 2026, https://testbook.com/hi/ias-preparation/integrated-rural-development-programme-irdp
2. DISTRICT - SRI GANGANAGAR - rajasthan Gov, accessed February 10, 2026, https://foundation.rajasthan.gov.in/rf/pdf/Sri%20Ganganagar.pdf
3. Sri Ganganagar: Rajasthan's Food Basket | PDF - Scribd, accessed February 10, 2026, https://www.scribd.com/document/528063690/Ganganagar
4. Modernisation of Agriculture Pattern in Gang Canal ... - ijirset, accessed February 10, 2026, https://www.ijirset.com/upload/2023/october/35_Modernisation.pdf

5. Pradhan MantriKrishiSinchayeeYojana (PMKSY), accessed February 10, 2026, https://pmksy.gov.in/mis/Uploads/2017/20171017104346456-1.pdf
6. District Profile - Krishi Vigyan Kendra, Sri Ganganagar, accessed February 10, 2026, https://sriganganagar.kvk2.in/district-profile.html
7. Sri Ganganagar kinnow sector faces yield swings and market limits - FreshPlaza, accessed February 10, 2026, https://www.freshplaza.com/asia/article/9803209/sri-ganganagar-kinnow-sector-faces-yield-swings-and-market-limits/
8. Financial Statement, accessed February 10, 2026, https://mnregaweb4.nic.in/netnrega/citizen_Html/funddisreport.aspx?flag_debited=S&lflag=eng&page=d&is_statefund=Y&district_code=2701&fin_year=2024-2025&district_name=SRI+GANGANAGAR&state_name=RAJASTHAN&Digest=J7//9T6+IcZQuHquzssMLw
9. Year End Review 2024: Achievement of the Department of Rural Development - Press Release: Press Information Bureau, accessed February 10, 2026, https://www.pib.gov.in/PressReleseDetailm.aspx?PRID=2088996
10. STATE PERFORMANCE REPORT (2024 - 25) - Department of Rural Development, accessed February 10, 2026, https://www.dord.gov.in/static/uploads/2025/09/d81193f25cde78b36f36b559ffabbb18.pdf
11. समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (irdp) - YouTube, accessed February 10, 2026, https://www.youtube.com/watch?v=UgjhdNL0Duw
12. Progress Report: Rajeevika Department of Rural Development Government of Rajasthan-Jaipur | PDF | Economies - Scribd, accessed February 10, 2026, https://www.scribd.com/document/860115356/5841d9fa-378e-44f5-ae6d-e5bdecfa6659
13. CHAPTER-ll PERFORMANCE AUDIT FINDINGS ON ... - CAG, accessed February 10, 2026, https://cag.gov.in/uploads/download_audit_report/2022/6-Chapter-II-063ff2102359cf8.46642959.pdf

पृथ्वीराज चौहानकालीन सिक्कों का अध्ययन

डॉ. नीलम शर्मा
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,
राजकीय कॉलेज, रूपनगढ़

सारांश (Abstract)

भारतीय राजवंशों के वैभव व पराक्रम की पहचान के ऐतिहासिक स्त्रोतों के रूप में सिक्कों का विशेश महत्व है। कई राजवंशों जैसे भारतीय यवनों के इतिहास को सिक्कों के आधार पर पुनर्रचित किया गया।[1] पृथ्वीराज चौहानकालीन दो प्रकार के ऐतिहासिक सिक्के प्राप्त हुए है, जिनमें से एक पर तो केवल पृथ्वीराज का नाम ही मुद्रित है जबकि दूसरे प्रकार के सिक्कों पर पृथ्वीराज के साथ मुहम्मद-बिन-साम अंकित है। पृथ्वीराज चौहान के दूसरे प्रकार के सिक्के उसके पिता सोमेश्वरकालीन सिक्कों के सदृश है, क्योंकि पृथ्वीराज ने भी अपने सिक्कों पर आसावरी शब्द का प्रयोग किया। आकार एवं प्रकार तथा तौल में समानता होने पर भी तुलनात्मक रूप से पृथ्वीराज के सिक्के अच्छे ढंग से निर्मित हुए। यह शोधपत्र दिल्ली और अजमेर के शासक राजपूत राजा पृथ्वीराज चौहान के नाम पर जारी किए गए सिक्कों की ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करता है।

बीज शब्दः- पृथ्वीराज, ऐतिहासिक स्त्रोत, सिक्के, मध्यकालीन इतिहास

परिचय (Introduction)

पृथ्वीराज चौहान, जिन्हें पृथ्वीराज तृतीय के नाम से भी जाना जाता है, चौहान वंश के सबसे शक्तिशाली शासक थे। उनका शासनकाल 1178 से 1192 तक रहा। पृथ्वीराज चौहान कालीन सिक्के चांदी और तांबे के मिश्रण से बनी बिलन धातु के होते थे। इन सिक्कों पर लक्ष्मी और वृषभ घुड़सवार जैसे हिन्दू प्रतीकों और देवी-देवताओं के चित्र अंकित होते थे। इन सिक्कों को बनाने में चांदी की दुर्लभता के कारण तांबे को मिलाया जाता था। बागपत जिले के काठा गांव से उनके शासनकाल के दुर्लभ सिक्के मिले है। इन सिक्कों को रासायनिक विधि से साफ करने पर उन पर लिखे गए राजा के नाम और भारतीय देवी-देवताओं के प्रतीक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है।

पृथ्वीराज के सिक्कों पर पृष्ठ भाग से मुद्रित आसावरी श्री सामन्त देव[2] अंकित है।[3] इसका विश्लेषण टामस[4] के अनुसार दुर्गा की उपाधि एवं महत्व का विश्लेषण माधव शब्द से किया जिसका प्रयोग गहड़वाल वंश के मदनपाल देव के सिक्कों पर भी है जबकि लल्लन जी गोपाल[5] ने इसका विश्लेषण पृथ्वीराज चौहान की कुलदेवी आसापुरी के रूप में किया है, जिसका कार्य सांभर झील की रक्षा करना था। यह मत अधिक संभव भी लगता है। कलकत्ता स्थित भारतीय संग्रहालय का मुद्रा नं. 1 सिक्का स्मिथ[6] के अनुसार रजत (चांदी) धातु का है जबकि पी.सी. राय के मतानुसार यह तांबें पर चांदी की परत चढ़ा हुआ सिक्का प्रतीत होता है। इसका आगे का भाग रजत तथा पीछे का भाग तांबे जैसा लगता है, आगे के भाग व किनारे पर तांबे व कहीं-कहीं रजत चिन्ह दिखते है जबकि पृष्ठ भाग पर चांदी के चिन्ह अधिक दिखते है। अतः यह रजत पत्तर

सिक्का होने की पुष्टि करता है।[7] इसी संग्रहालय के आठ सिक्के मिश्रित धातु के बताए गए है।[8] कनिंघम[9] ने मिश्रित धातु के और टामस ने ताम्र मिश्रित रजत सिक्के प्रकाशित किए है।[10] दिल्ली संग्रहालय के पृथ्वीराज के सिक्के को हाइट हेड ने मिश्रित धातु का प्रकाशित किया है।[11] आसाम संग्रहालय के पृथ्वीराज के सिक्के को बोथम ने मिश्रित धातु का माना है।[12] शार्ट ने भी पृथ्वीराज के सिक्के मिश्रित रजत धातु के बताए।[13] पृथ्वीराज के संयुक्त शासन के सिक्के मिश्रित धातु[14] एवं ताम्र मिश्रित रजत का है।[15] सारांशतः पृथ्वीराज के सिक्के मिश्रित रजत मिश्रित धातु (बिलन) रजत पत्तर और तांबे के ही है। रजत पत्तर मुद्राओं के प्रमाण गुप्तों की मुद्राएं भी है।[16] उपरोक्त सभी प्रथम प्रकार के सिक्के है, जिनके प्रतिस्थलों की जानकारी नहीं है।

उद्देश्य (Objectives)

पृथ्वीराज चौहान एवं उनके सिक्कों पर शोध करने का प्रमुख उद्देश्य उनके शासनकाल, राजनीतिक सैन्य गतिविधियों, तत्कालीन आर्थिक-व्यापारिक गतिविधियों, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन तथा पुरातात्विक जानकारी को समझना है।

1. आर्थिक और व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी
2. ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व
3. राजकीय प्रभुत्व और शासन का प्रमाण

इस प्रकार पृथ्वीराज चौहान के जीवन वृत्तांतों से उनके चरित्र, वीरता और तत्कालीन इतिहास को समझने में मदद मिलती है। कनिंघम द्वारा प्रकाशित सिक्के कुतानवाला से प्राप्त है, जिनका तौल 52.0 ग्रेन है। भारतीय संग्रहालय के रजत पत्तर सिक्कों की तौल 52 ग्रेन है, जबकि मिश्रित ताम्र मुद्राएं लगभग 47.4, 50, 50.6, 51, 52, 52.8, 53 व 53.8 ग्रेन है। जबकि मिश्रित रजत सिक्कों का वजन 52 व 52.3 ग्रेन है। ये सिक्के दम्म[17] तौल पर आधारित है। आकार में रजत पत्तर सिक्के 6" जबकि बिलन ताम्र सिक्के 6" से 65" औसतन है। पृथ्वीराज के सिक्के उसके विस्तृत साम्राज्य[18] एवं आर्थिक व व्यापारिक सम्पन्नताओं तथा पूर्वजों से अधिक संख्यात्मक मुद्रण के प्रमाण है।

प्रथम प्रकारः

जिन सिक्कों के आगे भाग पर दाहिने मुँह किये अश्वारोही की आकृति व पृष्ठ भाग पर दाहिने मुँह किये अश्वारोही की आकृति व पृष्ठ भाग पर बायीं तरफ मुख किये आसीन वृषभ एवं त्रिशूल है, वे प्रथम प्रकार के सिक्के है। परन्तु लेखनी (मुद्रण) अंतर के कारण इनके निम्न उप प्रकार हैः-

उप-प्रकार - 1 - आगे श्री पृथ्वीराजदेव (वर्तुलाकार) पृष्ठ पर आसावरी श्री सामन्त देव अंकित है।[19]

उप-प्रकार - 2 - आगे भाग में सीधा लिखा लेख श्री पृथ्वीराजदेव[20]

उप-प्रकार- 3- पुरो भाग में केवल पृथ्वी अंकित है जबकि शेश आकार-प्रकार में उपरोक्त सिक्कों के ही प्रकार से।[21]

उप-प्रकार - 4 - पुरो भाग पर लेख पृथ्वीराज अंकित जबकि शेश उपरोक्त के समान ही।[22]

द्वितीय प्रकार

कनिंघम[23] टामस[24] और राइट[25] द्वारा प्रकाशित 6 सिक्के प्राप्त है। इनके एक ओर अश्वारोही व दूसरी ओर वृषभ की आकृतियां है। इनके पुरो भाग पर अंकित पृथ्वीराज नाम को कनिंघम ने श्री पृथ्वीराजदेव, राइट ने पृथ्वीराजदेव जबकि टामस ने श्री पृथ्वी ही पढ़ा है। जबकि सभी के पृष्ठ भाग पर श्री महमद साम उत्कीर्ण है।

सिक्कों के मुद्रण हेतु विद्वानों के मत

कनिंघम के अनुसार, पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी का सामन्त था।[26] नेल्सन राइट के अनुसार, सिक्के के एक ओर

मुहम्मद बिन साम, दूसरी और विजित पृथ्वीराज का नाम अंकित है।[27] परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार, सिक्के बैसर (म्यूल) है[28] जिसका अर्थ है मुद्रण में दो अलग प्रान्तों के सांचे एक ही टकसाल में मुद्रित होने पर टकसाल कर्मियों की गलती के परिणामस्वरूप एक ओर पृथ्वीराज के सांचे व दूसरी ओर सुल्तान की उपाधि हम्मीर वाला सांचा मुद्रित हुआ। परन्तु यह मत असमंजस भरा है।[29] पी.सी.राय इस मत से असहमत थे, क्योंकि उनके अनुसार मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज का 1193 ई. में हराया। अतः इन सिक्कों को उसने जानबूझ कर जारी किया। मुस्लिम शासक सिक्कों के मुद्रण पर विशेष ध्यान देते थे, जो साधारणतया एक शासक के सिंहासनारोहण के समय होता था। सिंहासनारोहण के तुरन्त बाद खुत्बा (सार्वजनिक प्रार्थना) की जाती और सिक्के जारी किए जाते थे। सिक्के सम्राट के अस्तित्व, शासन के प्रारम्भ की तिथि और विजित देश के आधिपत्य के प्रत्यक्ष प्रमाण थे।[30]

प्रो. अल्तेकर का कहना है कि पृथ्वीराज का पराजित करने के बाद मोहम्मद गोरी भारतीय जनता के लिए ऐसे सिक्कों को जारी करना चाहता था, जिसके एक ओर वृषभ का चित्रण हो। उनके अनुसार यह भी हो सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जबकि सांचों को टकसाल से न हटाया गया हो और किसी कर्मचारी की गलती से इन सिक्कों के पुरो भाग और पृष्ठ भाग पर इस नवीन राजा के सिक्कों का सांचा लग गया हों। किन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि इन सिक्कों पर पृथ्वीराज के एक ही प्रकार के पुरो भाग के सांचे का प्रयोग नहीं किया गया है।

अतः ऐसी स्थिति में इन विद्वानों के विचारों में बल नहीं दिखलायी पड़ता है। इन सिक्कों के पुरो भाग पर तीन प्रकार के लेख मिलते है, पृथ्वीराज देव, श्री पृथ्वीराज देव और श्री पृथ्वी। निःसन्देह इनमें से दो लेख श्री पृथ्वीराज देव और श्री पृथ्वी, पृथ्वीराज द्वारा जारी किए गए सिक्कों (उप प्रकार प्रथम और द्वितीय) पर मिलता है, अब तक प्राप्त ज्ञात स्त्रोतों के अनुसार, पृथ्वीराजदेव पूर्णतः नवीन है। अनेक उपप्रकारों के सांचों का इन सिक्कों के निर्माण के लिए प्रयोग और नवीन लेख श्री विहीन, केवल पृथ्वीराजदेव का अंकन स्वयं इस बात का प्रमाण है कि ये सिक्के गलती से नहीं, बल्कि जानबूझ कर निर्मित किए गए सांचे से मुद्रित किए गए थे।[31]

अल्तेकर[32] के अनुसार, मोहम्मद गोरी के अश्वारोही और वृषभ प्रकार के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर महमदसाम के स्थान पर सामन्तदेव लिखना चाहिए था। उनके अनुसार, पुरोभाग का सामन्तदेव शब्द पृष्ठ भाग पर गलती से अंकित हुआ है, परन्तु परमेश्वरी लाल गुप्त[33] के अनुसार, ऐसा परिवर्तन मोहम्मद गोरी के टकसाल के अधिकारी द्वारा जानबूझकर किया गया था। किन्तु मोहम्मद गोरी के किसी भी सिक्के पर सामन्तदेव शब्द नहीं मिलता है।[34] अतः इन विद्वानों का यह विचार आधाररहित प्रतीत होता है। अल्तेकर का यह कहना कि इन सिक्कों का कम संख्या में प्राप्त होना स्वयं इस बात का द्योतक है कि ये सिक्के बेसर है[35] स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि प्राचीन काल में और विशेश रूप से इस युग में अनेक राजाओं के सिक्के बहुत कम संख्या में प्राप्त हुए है। क्या इसके आधार पर हम इन राजाओं के अस्तित्व से इन्कार कर सकते है? स्वयं अल्तेकर ने गुप्तकाल के कई गुप्त राजाओं के अस्तित्व को यद्यपि उनके सिक्कों की संख्या कम है, स्वीकार किया है।[36]

दिनेश चन्द्र सरकार ने हसन निजामी का उल्लेख करते हुए कहते है कि पृथ्वीराज जब बन्दीगृह में था तो संभवतः उसके एक पुत्र ने अपने पिता और उसके स्वामी के नाम से संयुक्त सिक्का जारी किया। उनका यह भी कहना है कि उसका शासन अल्प होने के कारण ये सिक्के कम संख्या में प्राप्त हुए है।[37] लेकिन यदि इन सिक्कों को पृथ्वीराज के किसी पुत्र ने जारी किया होता तो निश्चय ही प्रचलनकर्ता का नाम उस पर अंकित होता। कनिंघम[38] का कहना है कि मिनहाज के अनुसार, मोहम्मद गोरी ने 587 हि. में दिल्ली में आधिपत्य स्थापित किया और इसी समय पृथ्वीराज मोहम्मद गोरी का सामन्त बना। ऐबक, जो हांसी वापस चला गया था, ने 589 हि. (1193 ई.) में पुनः दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उनके अनुसार, ये संयुक्त सिक्के हि. (1192 ई.) में युद्ध करने के पश्चात् उसकी प्रभुता स्वीकार की और उसने तराईन के दूसरे युद्ध के पूर्व इन सिक्कों को मुद्रित किया। इससे यह निश्कर्श निकलता है कि पृथ्वीराज प्रथम युद्ध में भी मोहम्मद गोरी के हाथों पराजित हुआ। किन्तु यह निष्कर्ष ऐतिहासिक तथ्य के विरूद्ध है। वास्त में मोहम्मद गोरी ही पृथ्वीराज द्वारा परास्त किया गया।

दिनेश चन्द्र सरकार[39] यह भी कहते है कि इन सिक्कों को निजी संस्थाओं ने मुद्रित किया है और अपने तर्क के समर्थन में अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत करते है। निश्चय ही निजी संस्थाएं प्राचीन और मध्य युग में सिक्कों के टंकण का कार्य करती थी। किन्तु इन संयुक्त सिक्कों के सन्दर्भ में यह बात उचित प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि निजी संस्थाओं द्वारा मोहम्मद बिन साम और पृथ्वीराज का एक साथ अंकन का कोई आधार ही मौजूद नहीं था। पी.सी. राय का कहना है कि[40] संयुक्त सिक्के अपने टकसाल में मोहम्मद गोरी ने मुद्रित किया। विजित चौहान क्षेत्रों के लिए उसने अश्वारोही और वृषभ प्रकार के सिक्के चौहान सिक्कों के आधार पर जारी किए। उसने यह महसूस किया कि एकाएक वर्तमान सिक्कों में पूर्ण रूप से परिवर्तन उसे जनप्रियता प्रदान नहीं कर सकता है। इसलिए पृष्ठ भाग का लेख वैसे ही रहने दिया। उनका यह भी कहना है कि इन सिक्कों का मुद्रण पृथ्वीराज की पूर्ण पराजय और गृह युद्ध में मृत्यु के बाद हुआ। किन्तु उनका यह मत सबल नहीं है। मोहम्मद बिन साम ने न केवल पृथ्वीराज के सिक्कों पर विद्यमान लेखों को ही अपनाया बल्कि कुछ सिक्कों पर केवल पृथ्वीराजदेव ही अंकित किया। हम कुंवर देवीसिंह[41] के इस सहमत है कि पृथ्वीराज तराईन के द्वितीय युद्ध में मारा नहीं गया, बल्कि उसने पराजित होने के उपरान्त अपने को स्वतंत्र कराने हेतु उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार की तत्पश्चात् अपने और अधिपति मोहम्मद बिन साम के नामों में सिक्कों को जारी किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रो. अवधकिशोर नारायण, द इण्डोग्रीक्स।
2. पी.सी. राय, हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर 1978, पृ.सं. 246
3. शॉर्ट, हिस्ट्री ऑफ न्यू क्रोनोलॉजी, 1956 पृ.सं. 315
4 क्रोनोलॉजी ऑफ पठान किंग्स पृ.सं. 61
5. अ.भि.क्वा. 1966, पृ.सं. 48
6. कै.क्वा.इ.म्यू. कलकत्ता, जि.1, पृ.सं. 261
7. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 246
8. कै.क्वा.इ.म्यू. कलकत्ता, जि.1, पृ.सं. 262
9. क्वा.मि.ई. पृ.सं. 10 (3 मुद्रा कनिंघम संग्रह)
10. क्रो.पै.कि. डेल्ही, पृं.सं. 64, सि.सं.10 (3 मुद्रा कनिंघम संग्रह)
11. कैटलॉग ऑफ द कलेक्षन ऑफ क्वायन्स इलस्ट्रेटिभ ऑफ द हिस्ट्री ऑफ द रूलर्स ऑफ डेल्ही अप टू 1958 ई., द डेल्ही म्यूजियम ऑफ आर्कलॉजी, कलकत्ता, 1910 पृ.सं. 4
12. कैटलॉग ऑफ द प्रोविंशियल क्वायन कैबिनेट, आसाम 1930, पृ.सं. 38
13. म्यू.क्रो., 1956, पृ.सं. 322
14. क्वा.मि.ई. पृ.सं. 86, सिक्का सं. 11, द क्वायनेज एण्ड मेट्रोलॉजी ऑफ द सुल्तान ऑफ डेल्ही, पृ.सं. 12, सि. सं. 37, 38
15. क्रो.पै.कि. डेल्ही, पृ.सं. 18, सि.सं. 15
16. अल्तेकर, क्वायनेज ऑफ द गुप्त एम्पायर, पृ.सं. 232-234
17. एपि.ई., जि. 11, पृ.सं. 32, 44, 47 एवं 56
18. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 246-247
19. केटलॉग ऑफ द कलेक्षन ऑफ क्वाईन्स द डेली म्यूजियम ऑफ आर्कलॉजी कलकत्ता, जि. 1 पृ.सं. 261, सिक्का सं. 1

20. कै.क्वा.इ.म्यू. जि.1, कलकत्ता, पृ.सं. 262 सिक्का सं.2
21. कै.क्वा.इ.म्यू. जि., कलकत्ता, पृ.सं. 262 सिक्का सं.3-9, हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 246
22. आ.सि.रि.जि. 5 पृ.सं. 93
23. क्वा.मि.इ. फलक 9,11
24. क्रो.पै.कि. डेल्ही, पृं.सं. 18
25. द क्वायनेज एण्ड मेट्रोलॉजी ऑफ द सुल्तान ऑफ डेल्ही, पृ.सं. 12-67 सि. सं. 36
26. क्वा.मि.इ. पृ.सं. 86
27. क्वा.मि.इ.सु. डेल्ही, पृ.सं. 67
28. ज.म्यू.सो.ई, जि.21, पृ.सं 22, ना.प्र.प., जि.57, पृ.सं. 270-273
29 उपर्युक्त
30. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 247
31. ज.म्यू.सो.ई.जि.15, पृ.सं. 234-235
32. ना.प्र.प., जि.57, पृ.सं. 271
33. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 249
34. ज.म्यू.सो.ई. जि.15, पृ.सं. 235
35. अल्तेकर, क्वायनेज ऑफ द गुप्त एम्पायर, पृ.सं. 264 से आगे (कुमारगुप्त द्वितीय, घटोत्कच और वैन्यगुप्त के सिक्कों की संख्या)
36. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 249
37. ज.न्यू.सो.ई., जि.15, पृ.सं. 230
38. क्वा.मि.ई., पृ.सं. 86, पाद टिप्पणी
39. ज.न्यू.सो.ई., जि.15, पृ.सं. 229 और आगे
40. हेरिटेज ऑफ इण्डिया, सं. उपेन्द्र ठाकुर, 1978, पृ.सं. 252
41. ना.प्र.प., जि.57, पृ.सं. 59-60

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

कोरोना त्रासदी : विभीषिका का साहित्यिक दस्तावेज (‘अमर देसवा’ के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. कुँवर संजय विक्रम सिंह
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, पी एस जी कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस कोयंबटूर तमिलनाडु

सारांश

कोराना महामारी के दूसरी लहर के आतंक को समेटती हुई एक संवेदनशील, संयत और एक सार्थक रचना है ‘अमर देसवा’ उपन्यास। यह सिर्फ सूचनात्मक न होकर बल्कि महामारी की विभीषिका में ऐसे प्रश्नों की पड़ताल करने वाला उपन्यास है जो नागरिकता, राज्यतंत्र, भ्रष्ट शासन प्रशासन, राजनीति केन्द्रित क्रूर धार्मिकता और विकराल संकटों के बीच बदलते मानवीय रूपों से संबंध रखते हैं। असली की खोज करने वाला यह उपन्यास मानवीय संवेदना के वाहक मनुष्यों एवं संवेदन हीन लोगों के बीच की फाँक को निर्दिष्ट करता है।

बीज शब्द - संवेदनशील, ख्वाहिश, काल्पनिकता, यथार्थबोध, नागरिकता, मनुष्यता, असली की खोज, अघोरी बाजार, महंत, मसान।

प्रस्तावना

कोई भी देश हो समय-समय पर महामारियों का दंश झेलता ही रहता है। जब भी ये महामारी आती है तो देश के समूचे नागरिक को हिला कर रख देती है। चारों तरफ भय का माहौल बन जाता है। अभी हाल फिलहाल में कोरोना नाम की महामारी ने विश्व के तमाम हिस्सों को अपने चपेट में लिया था जिसमें हमारा अपना देश भारत भी शामिल था। इस महामारी के समय में भय और हाहाकार को बहुत नजदीक से प्रत्यक्ष देखा गया। समाज में फैली दुर्दशा और अव्यवस्था के आगोश से कोई भी जन सामान्य न बच सका। सारे नियम, कानून, सरकार, अस्पताल, नागरिक, मनुष्य सब इस महामारी के प्रभाव में बेबस हो गए।

चूँकि साहित्य समाज का दर्पण होता है तो यह निश्चित है कि इस तरह की घटनाओं की साहित्यिक उपस्थिति होनी अनिवार्य है। युवा कथाकार प्रवीण कुमार का उपन्यास ‘अमर देसवा’ इसी, भय हाहाकार, अव्यवस्था, संकट के समय में नागरिकता और मनुष्यता आदि के सम्मुख उठने वाले प्रश्नों का जीवंत दस्तावेज बनकर सामने आता है। यह उपन्यास इस महामारी के समय में समाज का एकदम यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है।

‘अमर देसवा’ उपन्यास में मूल रूप से जिन बातों का पटाक्षेप हुआ है उनमें नकली बनाम असली, मनुष्यता बनाम नागरिकता, स्वार्थ बनाम परार्थ, भ्रष्ट शासन प्रशासन, राज्यतंत्र के द्वंद्व को स्पष्ट करने की कोशिश हुई है। बहुत सारे ऐसे सिद्धांत जिन्हें नागरिकों की सुरक्षा हेतु बनाया जाता है वे सब कैसे इन विषम परिस्थितियों में सिर्फ किताबी बनकर रह जाते हैं यह उपन्यास उसका यथार्थ दस्तावेज जान पड़ता है।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र डॉ मण्डल, वकील एस अमृत, रामायण, महंत, रजत, डॉ. सी पी मण्डल, ताकियो हाशीगवा इत्यादि देश के किसी न किसी सिद्धान्त को निरूपित करते नजर आते हैं। साथ ही साथ अघोरी बाजार, मसान, मठ, पुल, बनारस शहर ये सभी स्थान समाज की बड़ी ताकतों से निर्मित स्थान को निर्दिष्ट करते नजर आते हैं।

इस उपन्यास की कथा कोविड की पहली लहर के समाप्त होने और दूसरी लहर की सुगबुगाहट के साथ आरम्भ होती है पर इसका अन्त दूसरी लहर के कहर के शीर्ष पर पहुंचने के साथ होता है। इस दौरान जनता, मजदूर, डॉक्टर, श्रमिक, धनिक , पुलिस, प्रशासन सब असहाय दिखते हैं पर ऐसी परिस्थिति में भी बाज़ार पूंजी के बल पर अधिक क्रूर और ताकतवर बनकर सामने आती है। गौरतलब यह है कि ऐसे महामारी के प्रभाव में जब जनता के बीच त्राहि माम त्राहि माम मची रहती है तब धर्म और पूंजी के गठजोड़ का अत्याचार देखते ही बनता है।

लगभग 231 पृष्ठों का यह उपन्यास मानवीय संवेदना का दहकता आख्यान है। प्रत्येक व्यक्ति भय और आतंक से ग्रसित एवं सशंकित है। पर इस आतंक के प्रसार से पूर्व नगरपालिका का जो सरकारी आतंक है वह कम कष्टकारी नहीं है। अघोरी बाजार के नजदीक प्रवाहित हो रही गंगा में उस नाले का पानी गिराने को नगर पालिका के अधिकारी तैयार है जिसकी खुदाई बस्तियों के बीच से हो रही है जो सामान्य जनों के लिए साक्षात् दुखों का पहाड़ जान पड़ता है। एक भ्रष्टाचारी जो मठ का महन्त है उसके आगे सभी सरकारी कर्मचारी नतमस्तक हैं और उसकी ताकत के आगे झुके हुए हैं। जहाँ और जैसा महंत कहते हैं वहीं नक्शा तैयार कर लिया जाता है और मूल नक्शे को लुप्त कर दिया जाता है। वकील एस अमृत नागरिकता नियमों के आधार पर इस नाले और महंत के विरुद्ध कानूनी लड़ाई का बिगुल फूँक चुके हैं। निकट ही वकील के बहुत अच्छे मित्र डॉ मण्डल का क्लीनिक है। हालांकि दोनों में उम्र और समझ का पर्याप्त अन्तर है पर दोनों के बीच रोज की घंटो की बैठकी उनके संबंधों की प्रगाढ़ता को ही प्रकट करती है। लेखक इनके संबंधों को जिन शब्दों में व्यक्त करता है वह इस प्रकार है–

वकील की बौद्धिक खुराक डॉक्टर है और डॉक्टर की आत्मिक खुराक वकील। [1]

डॉक्टर मण्डल के पास अपने कार्यक्षेत्र का लंबा अनुभव है। उन्होंने मरीजों को देखते देखते उनकी नब्ज टटोलते टटोलते मनुष्य, मनुष्यता और मानव समाज की परख में अपने आप को पारंगत कर लिया है, लिहाजा उनके विचार में मनुष्यता सर्वोपरि है। वकील एस अमृत की नजर में नागरिकता ही सर्वोपरि है और वे नागरिक अधिकारों हेतु सदैव अपना सब कुछ दांव पर लगाकर उसे स्वतंत्र कराने में तत्पर रहते हैं। इस बात को लेकर डॉक्टर और वकील के बीच लम्बी बहस होती। कई बार वकील साहब चिड़चिड़ा जाते, बहस में आक्रामक हो जाते पर अपनी धीर गंभीर टिप्पणी के साथ डॉक्टर मण्डल हर बार इस बहस में भारी पड़ते। मामला तूल न पकड़े इसलिए डॉ का कम्पाउडर रमायन जो कि पढ़ा लिखा तो नहीं है पर बीच बीच में हस्तक्षेप करता। पढ़े लिखे न होने के बावजूद डॉ की संगत ने रामायन को इतना कढ़ा बना दिया है कि छोटे मोटे डॉक्टर भी उसके सामने न ठहरते। हालाँकि डॉक्टर की संगत के साथ साथ उसकी अपनी नियमितता, मेहनत, लगन, काम के प्रति ईमानदारी ने भी उसकी इस निपुणता को प्रौढ़ बनाया है। डॉक्टर साहब मनुष्यता के पक्ष में बस बोलते ही नहीं हैं बल्कि उसका निर्वहन भी करते हैं। कम्पाउडर समेत उनकी पत्नी और मित्र के दबाव में भी क्लीनिक की फीस न बढ़ाना उनके इसी ज्यादा मनुष्य होने का परिचायक है। डॉक्टर साहब बहस मुवायशा में ही गंभीर नहीं दिखते बल्कि वे हैं क्योंकि वे समय के साथ चलने को ज्यादा श्रेयस्कर मान लेते हैं। जब वकील साहब को पता चलता है कि रामायन कहीं और जा रहा है और डाक्टर का बेटा सीपी अंतर्जातीय विवाह के लिए इच्छुक है तो वकील साहब डर जाते हैं कि ये सब डॉक्टर कैसे बर्दाश्त करेंगे पर डॉक्टर साहब को सब पता था और वे कहते हैं–

ख्वाहिशों के लिए हकीकत पर पत्थर नहीं मारते। [2]

इस उपन्यास में कुछ पात्र ऐसे हैं जिन्हें अपनी जिम्मेदारियों का एहसास कुछ इस कदर है कि वे इसे निभाने में अपना सर्वस्व देने को तैयार है जैसे डॉक्टर मंडल, वकील एस अमृत, राही तो कुछ ऐसे पात्र हैं जो धन के पीछे भाग रहे भले वह धन प्राप्ति किसी को परेशान करके ही मिले जैसे महंत, रामायन आदि। यह उपन्यास हमें दिखाता है कि कैसे महामारी के

इस दौर में मरीजों के साथ खिलवाड़ होता रहा यहां तक कि मरीजों की मृत्यु हो जाने के बाद भी उन्हें इंजेक्शन लगाते रहना और अपना पैसा बनाते रहना।

इस उपन्यास में जाति धर्म के उन बंधनों को भी निर्दिष्ट किया गया है जिनकी कट्टरता सामान्य जनों को पीड़ा पहुंचाती है। रज्जाक और इशा का रजत और इशा बनना इसी बात का परिचायक है। रज्जाक और इशा एक दूसरे से विवाह कर भागते हैं क्योंकि एक हिन्दू और एक मुसलमान थे। इस अर्थ में दोनों धर्मों के लोग बिल्कुल एक मत थे कि दोनों रज्जाक और इशा को जान से मार देना चाहते थे अतएव दोनों को अपनी पहचान छुपाकर रहना पड़ा और रज़्ज़ाक से वह रजत शर्मा बन जाता है।

वकील का मित्र कजरौटा भी लगभग इसी तरह दूसरे सम्प्रदाय की लड़की से विवाह कर भागता है और उसके भागने के पीछे भी यही वजह थी कि उन्हें भी अपने लोगों से जान का खतरा था। कोरोना के बढ़ते प्रकोप ने ऐसा कहर बरपाया की सब असहाय से नजर आने लगे।

जापान से रिसर्च करने आए प्रो तकिओ हाशिगावा से जब वकील साहब की भेंट हुई और पहली ही बातचीत में जापानी ने वकील साहब को सोचने पर मजबूर कर दिया। महंत और जापानी की मुलाकात पर जब वकील ने कहा कि वो नकली है तब जापानी कहता है—

“कुस अस्ली हे ...... तबी कुस... नक्ली हे। अस्ली क्या हे.....खोजना हे।”[3]

रज्जाक एक हिन्दू लड़की से विवाह करता है तो उसे जिन चुनौतियों का सामना पड़ता है लेखक ने कुछ इस प्रकार दर्ज किया है—

“लड़की के घरवाले खून ही पीना चाहते थे ... बी ए तक की डिग्री में इनके असली नाम थे पर मैरिज सर्टिफिकेट पर उनके असली नाम नहीं थे।अगर कहीं नौकरी करनी होती तो असली डिग्रियां दिखानी पड़ती। किराए का मकान लेना हो तो पहचान पत्र के साथ साथ शादी का प्रमाण पत्र भी दिखाना पड़ता।....दोनों के घर वाले बड़े जल्लाद निकले। उन्हें अब इन दोनों की लाश चाहिए।”[4]

महामारी के इस दौर में बंदी के दौरान कोट कचहरी में लंबित मुकदमों का हाल अजीब हो गया था। यदि कोई निर्दोष भी फंस गया है तो उसके पास भी एकमात्र उपाय इंतजार था। कोर्ट के ऑनलाइन खुलने के बावजूद सुनवाई हो नही पा रही थी जिसके पीछे अपनी निजी समस्याएं थीं। एक सुनवाई का शाब्दिक चित्र कथाकार ने खींचा है। प्रस्तुत है वह संवाद—

“जज साहब ने कहा उस रिश्तेदार को पेश कीजिए जिसने गवाही दी थी और सिग्नेचर पर एस अमृत को ऑब्जेक्शन है। प्रतिपक्ष के वकील की हवाइयां उड़ने लगीं, सरकार उसके पास लैपटॉप नहीं है। गांव में रहते हैं वे लोग। जज चिढ़ गए, तो यह अदालत की जिम्मेदारी है जी? अब अदालत लैपटॉप मुहैया कराए?.....हाकिम गांव में कनेक्शन की भी तो दिक़्क़त है।”[5]

गरीब लोगों का मुकदमेबाजी में किस प्रकार सब कुछ लूट जाता है पर उन्हें वकील की फीस तो देनी ही पड़ती है। इस फीस के लिए क्या क्या करना पड़ता है उसका एक नजारा पेश किया है लेखक ने जो प्रस्तुत है—

एक बुजुर्ग फीस देने के लिए कहता है—

“आप मांगिए या न मांगिए। हम अपना धर्म निभा रहे हैं, यह कहते हुए बुजुर्ग ने अमृत की कलाई जोर से पकड़ी और उसकी उंगली में अंगूठी पहनाने लगे।...... अमृत ने सोने की वह अंगूठी अपने उंगली से निकाली और हाथ से ही तौलने लगा।”[6]

डॉक्टर मंडल अपने पेशे के प्रति जितना ईमानदार है उतना ही ज्यादा मनुष्यता उनमें दिखती है। जब उन्हें सूचना मिलती है कि उनका बेटा बीमार है वह शून्य पड़ जाते हैं किन्तु 2 मिनट के भीतर ही मित्र को सूचना देकर पुनः मरीज देखने लगते हैं। इस संवेदना को समेटती हुई कुछ पंक्तियां निर्दिष्ट हैं—

“जल्दी आइए पापाजी। आपका बेटा बहुत बीमार है।...अपनी कांपती देह को डॉक्टर मंडल ने जैसे - तैसे नियंत्रित

किया और कहा, बस पहुंच रहा हूं बेटा। बस एड्रेस बता दो। ..... डॉक्टर मंडल ने अपने सिर को जोर से झटका और झांककर मरीजों की कतार देखने लगे। पचास से कम न थे।उन्हें जल्दी निपटाना था पर पहले अमृत को फोन किया, सी पी इस सीरियस। आई एम लीविंग फिर बनारस, राइट नाउ। ...फोन करने के बाद मरीज देखने में व्यस्त हो गए।"[7]

महामारी के इस आतंक के बीच सर्वाधिक संवेदनहीनता कहीं दिखी तो वो सिर्फ प्राइवेट अस्पतालों में थी। पैसे पर पैसे जमा कराए जा रहे थे और मरीज जीवित है या मृत यह भी बताने को कोई तैयार नहीं था। जीवन भर बतौर चिकित्सक डॉ मण्डल बड़ी ईमानदारी से मरीजों की देखभाल कर रहे थे पर आज वही डॉक्टर एक अस्पताल में बेबस नजर आ रहे हैं। उनका बेटा संक्रमित है। अस्पताल वाले बिल पर बिल थमाए जा रहे हैं पर डॉक्टर द्वारा अपने बेटे की हाल पूछने पर हॉस्पिटल के कर्मचारी भड़क जा रहे हैं। इस अमानवीयता को उपन्यास में बड़े सफगोई से प्रस्तुत किया गया है। कुछ संवाद प्रस्तुत हैं–

"बेड नं 17 कुछ पेमेंट रह गया है। जी अभी कर देता हूं। यहां नही नीचे ग्राउंड फ्लोर पर है कैश काउंटर, वहां। पर अमृत उबल गया, चार दिन में पौने तीन लाख के पेमेंट के बाद कुछ बचता है क्या? ...हमें मरीज देखना है अभी के अभी।. ... आपको भरोसा नहीं तो ले जाइए अपने मरीज को।"[8]

कुछ देर के बाद ही हॉस्पिटल प्रशासन ने डॉक्टर मंडल और अमृत को हाल में बुलाया गया और हॉस्पिटल के मैनेजर ने डॉक्टर से कहा–

"मुझे अभी पता चला सर आप भी डॉक्टर हैं। आप तो समझ सकते हैं।

नहीं नहीं साफ साफ कहिए। डॉ मण्डल ने हकलाते हुए कहा। मैनेजर ने कहा बात यह है सर कि हम नहीं बचा पाए...वी आर एक्सट्रीमली सॉरी...हमने बहुत कोशिश की।"[9]

संवेदनहीनता की पराकाष्ठा तो तब पार होती है जब काफी प्रयास के बाद बॉडी मिलती है डॉक्टर ने अपने बेटे को देखा तो भौचक्का रह गए क्योंकि सूचना शाम को दी गई शाम से पहले तक बिल भरवाया जाता रहा जबकि उनका बेटा तो सुबह ही मर गया था। जैसे तैसे धैर्य रखकर लाश को ले चलने की तयारी हुए। कोई साधन न मिलने की वजह से अपनी गाड़ी पर शव को रखकर निकल पड़े। रास्ते में पुलिस की संवेदहीनता सामने आती है। पंक्तियाँ देखिए–

"थानेदार ने कहना शुरू किया, आप लोग समझदार हैं ऐसी गलती करेंगे? कुछ हो हवा जाए तो हमारी नौकरी पर बन आयेगी। समझते नहीं हैं आप लोग।... डॉ साहब थानेदार को जिप्सी की दूसरी ओर ले गए और झट से दो हजार रुपए उसकी मुट्ठी में थमा दिए। थानेदार ने बिना देरी उन्हें जेब में रख लिया।"[10]

सारा संसार इस महामारी के आगोश में दुखमय है। रोग तो है ही पर दुख है कि मिटता ही नहीं।लेखक इन भावनाओं को व्यक्त करते हुए लिखता है–

"रोग से मर जाओ लेकिन दुख से नहीं। दुख केवल सुख की अनुपस्थिति का नाम नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी उपस्थिति है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान को एक साथ सलते रहना है।रोग की स्मृति उतनी गहरी नहीं होती जितनी कि दुःख की।"[11]

इस महामारी में डॉ मण्डल के बेटे सी पी, रजत उर्फ रज्जाक, कजरौटा का बेटा आदि कई लोग अपने जीवन से हार गए और स्वर्गवासी हो गए। महंत के हॉस्पिटल में हो रही अमानवीयता से वकील अमृत परेशान हैं वे लगातार उसके विरोध में लड़ने को तैयार है और उसे सबक सिखाना चाहते हैं। पर रामायण के नेतृत्व में महंत का हॉस्पिटल पैसे की मशीन बना पड़ा है। लोग वहां से ठीक वही हो रहे हैं और मर भी रहे हैं। राही के नेतृत्व में एक टीम सांस लोगों की मदद के लिए बनाया गया, जिसने जापानी प्रोफेसर और उनके शिष्यों की जान अपनी जान जोखिम में डालकर बचायी। इस टीम ने खूब मदद की पर पैसे के अभाव और टीम के सदस्यों के लगातार संक्रमित होने से यह दल भी ठप पड़ गया। किरायेदार रजत की मृत्यु के बाद उसकी बेटी की देखभाल करते करते वकील एस अमृत की सांस भी थमने लगी। डॉ मण्डल ने पुरजोर कोशिश की पर वकील की हालत बिगड़ती जा रही थी। डॉ मण्डल अंत में भागते हुए ऑक्सीजन की तलाश में महंत के हॉस्पिटल

जाते हैं और रमायान के आगे हाथ जोड़ लेते हैं। गुरु अपने शिष्य के सामने हाथ जोड़कर अपने मित्र की जन बचाने के लिए अनुनय विनय करता है पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

"रामायण अस्पताल में मरीज देख रहा था। अचानक ही रामायण के कमरे का दरवाजा धड़ाम करके खुला और एक आदमी हांफता हुआ उसके सामने दिखा। आदमी ने अपना मास्क हटाया। अरे?डॉ साहब? रामायण अपनी कुर्सी से उछल गया।उसे भरोसा ही नहीं हो रहा था।.... रामायण कांपने लगा।उसका देवता उसके सामने हाथ जोड़े बिलख रहा था।''[12]

वकील एस अमृत को रामायण अपना सब कुछ जान पर लगाकर बचा लेता है। जब वह अपने सामने देखा तो असमंजस में डूब गया। आंख बंद कर लिया उसने देखा कि एक आदमी गाते हुए कह रहा है। कथाकार लिखता है–"वह आदमी अब हंस रहा है।लगातार हंसता जा रहा है।फिर रोने भी लगा। हंसी और रुदन के बीच के अंतराल में वह गए जा रहा था, जहंवा से आयो...जहंवा से आयो अमर वह देसवा।''[13]

अमर देसवा उपन्यास का कथानक कोविड 19 जैसी महामारी में देश के भीतर की व्यवस्था को यथार्थ रूप में प्रकट किया है। उस समय यह समाज दो ही वर्गों में बंटा जान पड़ता है एक अत्यंत संवेदनशील समाज जो अपने भीतर बसी मानवता के आधार पर अपनी जान जोखिम में डालकर लोगों की मदद कर रहा था और दूसरा संवेदन हीन समाज जो इसे धन उगाही का अवसर मानकर निचले से निचले स्तर पर चला जाता है। कुछ नागरिक अधिकारों की लड़ाई के लिए अपना सर्वस्व त्याग रहे हैं तो कुछ इन अधिकारों को ताख पर रखकर अपनी ताकत और संपत्ति बढ़ा रहे हैं। आश्चर्य इस बात का है कि सरकार, प्रशासन, अधिकारी वर्ग सभी ऐसे समय में जनता की सुरक्षा हेतु नियम बना रहे थे उनका पालन कर रहे थे पर इन नियमों का पालन भाषणों में शायद ज्यादा हुआ धरातल पर तो इनकी संवेदनहीनता के कई उदाहरण मिले जिनका पटाक्षेप यह उपन्यास करता है।

सीधी एवं सपाट भाषा में यह उपन्यास लिखा गया है जो किसी के हृदय को भी स्पर्श करने में सक्षम हैं। इस उपन्यास के सभी पात्र अपनी योग्यता और नाम के अनुरूप उपन्यास की कथा को उत्कर्ष पर पहुंचाते हैं और इस उपन्यास के उद्देश्य को पूरा करते हैं। इन पात्रों का संवाद अत्यन्त सहज एवं संप्रेषणीय है। कथ्य एवं शिल्प दोनों स्तरों पर यह उपन्यास एक सफल उपन्यास है।

निष्कर्ष

इस उपन्यास के मार्मिक प्रसंग पाठकों के हृदय को अंदर तक स्पर्श करते हैं। निस्संदेह इस उपन्यास की कथा हमारे आस पास पड़ोस की कथा कई बार तो अपनी कथा जान पड़ती है। इस उपन्यास यथार्थ को चित्रित करने वाला उपन्यास है। देश की ये सभी घटनाएं यथार्थ से जुड़ी हैं लेखक इसकी भूमिका में ही कहता है कि इसके कोई भी पात्र एवं घटनाएं काल्पनिक नहीं है यह लेखक का साहस और उसकी संवेदना को ही प्रस्तुत करता है। ये सभी पात्र और घटनाएं अमर हो गए हैं जो इस उपन्यास के शीर्षक 'अमर देसवा' को सर्वथा प्रमाणित करते हैं।

जिस प्रकार इस उपन्यास में महामारी के प्रभाव में चारों तरफ भय और आतंक का माहौल है। आसपास या यों कहें पूरे देश भर में हाहाकार मचा हुआ है। अस्पतालों में बेड नहीं, श्मशानों में लाशों का ढेर, ऑक्सीजन सिलिंडर की कमी, प्रत्येक घर में चीख पुकार का जो चित्रण इस उपन्यास में है वह उस समय को आंख के सामने लाकर खड़ा कर देता है। इसके कथानक के आधार पर यह कहना ठीक ही है कि 'अमर देसवा' उपन्यास विभीषिका का साहित्यिक दस्तावेज़ है।

सन्दर्भ सूची

1. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (13)।

2. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (70)।
3. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (22)।
4. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (45)।
5. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (81)।
6. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (84)।
7. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (157)।
8. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (165)।
9. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (167)।
10. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (172)।
11. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (219)।
12. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (225)।
13. देसवा, अमर - कुमार, प्रवीण (2022), ('अमर देसवा '),द्वितीय संस्करण 2023, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या (232)।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र (2017) हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
2. मधुरेश (2014) हिन्दी उपन्यास का विकास, लोकभरती प्रकाशन इलाहाबाद।
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ (2019) हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

महिलाओं की स्थिति सुधार में बुद्धिजीवी वर्ग का योगदान : एक अध्ययन

कमला
शोध छात्रा, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, काण्डा बागेश्वर,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा
मो0 7248733814
ईमेल : borakammu53@gmail.com

शोध सारांश

उन्नीसवी शताब्दी भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण शताब्दी मानी जाती है। यह परिवर्तन व नवजागरण की शताब्दी मानी जाती है, जिस प्रकार 16वीं सदी में यूरोप में पुनर्जागरण ने यूरोप के समाज, धर्म, साहित्य को प्रभावित किया था, उसी प्रकार 19वीं सदी के सामाजिक, धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन किए। उस समय भारतीय समाज में ऐसी कुरीतियाँ फैली हुई थी जो भारतीय समाज को अंधकार की तरफ धकेल रही थी। इसी समय शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिन्होंने इन कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई और अनेक सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारंभ किए।

विभिन्न समय काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति भिन्न-भिन्न रही है। इस प्रकार बुद्धिजीवी वर्ग ने भारतीय समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति पर ध्यान केन्द्रित किया और महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए जिससे सदियों से शोषित दमित महिलाओं की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आया और उन्हें एक नवजीवन प्राप्त हुआ व समाज में वो दर्जा प्राप्त हुआ जिसकी वे हकदार थी। यह सब बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा प्रारम्भ किए गए सामाजिक सुधार आंदोलन द्वारा ही संभव हो पाया। इस आलेख के माध्यम से सामाजिक सुधार आंदोलनों से स्त्रियों की स्थिति में आए सकारात्मक परिवर्तन का विश्लेषण किया जायेगा।

प्रस्तावना

उन्नीसवी सदी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिलता है। शिक्षित लोगों ने पुरानी रूढ़ीवादी सामाजिक प्रथाओं का विरोध किया, ये शिक्षित लोग अब असम्माननीय व्यवहार को सहने को तैयार नहीं थे इन नवशिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयो पर प्रहार किया जो समाज को पीछे की तरफ धकेल रही थी जैसे जाति प्रथा, सती प्रथा, दास प्रथा, नर बलि, स्त्रियों की खराब दशा आदि के विरूद्ध समय-समय पर भारत के बुद्धिजीवी वर्गों ने सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारम्भ किए। सामाजिक सुधार आंदोलनों का सबसे ज्यादा प्रभाव स्त्रियों की स्थिति पर पड़ा भारतीय समाज में अन्य कुरीतियों के समान ही महिलाओं की स्थिति भी अत्यधिक दयनीय थी। भारतीय महिलाएं चौतरफा शोषण का शिकार हो रही थी उन्हें उन सभी अधिकारों से वंचित किया जा रहा था जिनकी वे हकदार थी।

महिलाएं घर की चार दीवारी तक ही सीमित थी ना ही उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता थी और न ही उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था थी, जिससे भारतीय समाज अंधकार की तरफ जा रहा था। कोई भी राष्ट्र या समाज तभी प्रगति कर सकता है जब महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो, प्रगति के समान अवसर हो अन्यथा हम किसी राष्ट्र या समाज की प्रगति की कल्पना भी नहीं कर सकते है। उस समय भारतीय समाज में प्रचलित सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों ने स्त्रियों की दशा अत्यधिक शोचनीय कर दी थी।

उन्नीसवी सदी में ही भारत में ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग सामने आया जिसने स्त्रियों की इस शोचनीय स्थिति के खिलाफ आवाज उठाई और अनेक आंदोलन किए, संगठन बनाए जिससे धीरे-धीरे स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया। इन महान व्यक्तियों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे महापुरुष शामिल थे। इनके प्रयासों से ही स्त्री शिक्षा को बल मिला, विधवा पुनर्विवाह, एक पत्नी विवाह, सती प्रथा की समाप्ति, बाल विवाह की समाप्ति जैसे महत्वपूर्ण कार्य हुए।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार संबंधी आंदोलनों के प्रादुर्भाव के कारण

महिलाओं की स्थिति प्रत्येक काल में भिन्न-भिन्न रही है या परिवर्तनशील रही है। भारत में प्राचीनकाल में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी जैसे वैदिककाल में महिलाओं की स्थिति सम्मानजनक थी, उन्हें शिक्षा का अधिकार प्राप्त था, वे यज्ञों में बैठती थी, वाद-विवाद में प्रतिभाग करती थी, उन्हें सैन्य शिक्षा दी जाती थी परंतु जैसे-जैसे समय बीतते गया स्त्रियों की स्थिति में गिरावट देखी गई। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति दयनीय हो गई थी जिस कारण समाज सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। ऐसे क्या कारण थे जिसकी वजह से बुद्धिजीवी वर्ग को महिलाओं के लिए आंदोलन करने पड़े इनका वर्णन करना आवश्यक हो जाता है।

सती प्रथा : सती का शाब्दिक अर्थ है पवित्र साध्वी स्त्री। यह शब्द उस स्त्री के लिए प्रयोग किया जाता था जो अपने पति के साथ शाश्वत रूप से जन्म जन्मान्तर तक रहना चाहती थी और अपने पति के मृत्यु पर जीवित ही चिता पर जल जाती थी। सती प्रथा एक प्राचीन प्रथा थी यह सारे भारत में समान रूप से प्रचलित नहीं थी, बंगाल, राजपूताना, दक्षिण भारत में यह प्रथा बहुत प्रचलित थी। सती होने वाली स्त्री को एक उच्च्य चरित्र वाली स्त्री समझा जाता था। स्त्रियों को सती होने के लिए मजबूर किया जाता था कि वह अपने पति के साथ स्वयं को जला दे। विधवा स्त्रियों के पास कोई और विकल्प भी नहीं था क्योंकि समाज में विधवाओं की स्थिति दयनीय थी, न उन्हें अच्छा भोजन दिया जाता था न पहनने को अच्छे कपड़े, न बिस्तर और अन्यायपूर्ण व्यवहार भी किया जाता था और सिर भी मुडवाना पड़ता था। इस प्रकार समाज में विधवाओं का जीवन अत्यधिक दुःखदायी था। स्त्रियों को इस दयनीय स्थिति से बाहर निकालना आवश्यक था जिस कारण बुद्धिजीवी वर्ग आगे आया और इस अमानवीय प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई और आंदोलन किए।

शिशु हत्या/बालिका शिशु हत्या : भारतीय समाज में अन्य कुप्रथाओं में एक कुप्रथा थी बालिका शिशु हत्या जो राजपूतों व बंगालियों में अधिक प्रचलित थी। इस कुप्रथा में बालिका शिशु को जन्म लेते ही मार दिया जाता था व बालिकाओं को परिवार में बोझ समझा जाता था जिसका प्रमुख कारण था विवाह न होना या विवाह के समय दहेज की समस्या, जिस कारण कन्याओं को बाल्यकाल में ही मार दिया जाता था। भारतीय प्रबुद्ध वर्ग ने इस घृणित प्रथा की आलोचना की तथा 1795 व 1804 के नियम के तहत शिशुहत्या को हत्या के बराबर मान लिया।

स्त्रियों में शिक्षा का अभाव : उन्नीसवी सदी में भारतीय समाज में यह मनगढंत कहानी प्रचलित थी कि शास्त्रों में स्त्री शिक्षा की अनुमति नहीं है और जो स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती है उनको ईश्वर वैधव्य का दण्ड देता है, इस कारण स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थी जो किसी भी समाज या राष्ट्र की प्रगति में बाधक था। ईसाई धर्म प्रचारक पहले ऐसे लोग थे जिन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए कलकत्ता में तरूण स्त्री समाज स्थापित किया, साथ ही ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बंगाल में 35 बालिका विद्यालयों की स्थापना की।

बाल विवाह : उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज में बाल विवाह व्यापक रूप से प्रचलित थी जो एक सामाजिक बुराई थी छोटी सी उम्र में ही बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता था जिससे बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रह जाती थी और शोषण और अज्ञानता का शिकार हो जाती थी। बाल विवाह के कारण कई बालिकाएं बहुत कम उम्र से ही पुरुषों के अधीन तथा शोषित रही। समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा प्राप्त नहीं हो पाया इस कारण हमारे बुद्धिजीवी समाज सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रमुख समाज सुधारक व उनके सुधारवादी कार्यों का वर्णन

राजा राममोहन राय : राजा राममोहन राय आधुनिक भारत के पिता माने जाते है, इन्होंने देश के सामाजिक, बौद्धिक, राजनीतिक उत्थान के लिए अत्यधिक कठिन परिश्रम किए। भारतीय समाज की जड़ता से उनको अत्यधिक पीड़ा होती थी, भारतीय समाज अंधविश्वासों के अंधकार से घिरा हुआ था, जिसका फायदा भ्रष्ट पुरोहित उठाते थे। राजा राममोहन राय प्राचीन दार्शनिक विचारधाराओं का सम्मान करते थे साथ ही वे यह भी महसूस करते थे कि पश्चिमी संस्कृति से ही भारतीय समाज का उत्थान हो सकता है। इन्होंने भारतीय समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों पर प्रहार किया जिनमें से प्रमुख सुधारवादी कार्य था सती प्रथा का अंत।

उन्नसवी शताब्दी का प्रमुख समााजिक सुधार था सती प्रथा अथवा हिंदु विधवाओं को पति की चिता के साथ जलाए जाने की प्रथा का अंत होना। राजा राममोहन राय ने इस क्रूर प्रथा पर भारी प्रहार किया और वे सफल भी हुए। इनके प्रयासों के कारण ही 1829 में विलिमय बैंटिक ने कानून बनाकर सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। इस प्रकार सदियों से चली आ रही इस कुप्रथा का अंत करने में राजा राममोहन राय सफल रहे, इसके साथ ही राममोहन राय स्त्रियों के पैतृक सम्पत्ति को भी स्त्रियों को दिलाना चाहते थे, ये विधवा पुनर्विवाह के समर्थक व बहुविवाह के विरोधी थे।

स्वामी दयानंद सरस्वती : उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रमुख स्थान है, ये आर्य समाज के प्रवर्तक थे। आर्य समाज ने भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों को दूर करके सामाजिक क्षेत्र में सराहनीय योगदान दिया, स्त्रियों की स्थिति को सुधारने का कार्य भी उनका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आर्य समाज ने विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया, कई विधवाओं के विवाह भी किये और आर्य युवक इसके लिए आगे आये। दयानंद सरस्वती जी ने लड़कों के विवाह के लिए 24 वर्ष व लड़कियों की विवाह के लिए 16 वर्ष निर्धारित किया। आर्य समाज के प्रयत्नों से विवाह की उम्र धीरे-धीरे बढ़ती गयी। स्त्रियों की स्थिति से संबंधित सुधारवादी कार्यो में आर्य समाज का एक महत्वपूर्ण कार्य था दहेज प्रथा का विरोध, जो हमारे भारतीय समाज के लिए कलंक है।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर : भारतीय समाज सुधारकों में ईश्वर चंद्र विद्यासागर का भी महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यासागर महान विद्वान और समाज सुधारक थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन समाज सुधार में लगा दिया। इनका जन्म 1820 में एक गरीब परिवार में हुआ था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए इन्होंने अत्यधिक संघर्ष किया और अंत में 1851 में संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल के पद पर पहुँचे। भारतीय समाज आज भी विद्यासागर जी को नारियों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए याद करता है। इन्होंने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए लंबा संघर्ष चलाया, इन्होंने शास्त्रों से उदाहरण लेकर यह सिद्ध किया कि उनमें विधवा पुनर्विवाह का निषेध नहीं किया गया है। विधवा पुनर्विवाह की वकालत करने के कारण समाज के कट्टरपंथियों के विरोध का भी इनको सामना करना पड़ा, कभी-कभी जान लेने की धमकिया भी दी जाती थी, परंतु ये घबराये नहीं और आगे बढ़ते गये। इनके प्रयासों से 1855 से 1860 के बीच 25 विधवा पुनर्विवाह हुए। इन्होंने अत्यधिक संख्या में हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थना पत्र सरकार को भेजे, अंत में हिंदु विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 पास हुआ और विधवा विवाह को वैध मान लिया गया और उस विवाह से उत्पन्न हुए बालको को भी वैध मान लिया। विद्यासागर ने बहुपत्नी प्रथा के विरोध में भी आवाज उठायी साथ ही बहुविवाह व बाल विवाह पर भी प्रहार किया। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी विद्यासागर ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। नारी शिक्षा के लिए इन्होंने स्वयं के प्रयत्नों से 25 बालिका विद्यालयों की स्थापना की।

कुण्डूकुरी वीरेशलिंगम पंतुलू : ईश्वर चंद्र विद्यासागर के समान वीरेशलिंगम पंतुलू ने आंध्र प्रदेश में स्त्री शिक्षा व विधवा पुनर्विवाह के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। इसी कारण इन्हें महादेव गोविंद रानाडे ने दक्षिण भारत का ईश्वरचंद्र विद्यासागर कहा है। विधवा पुनर्विवाह के लिए इन्होंने 1878 में समाजसुधार संगठन की स्थापना की। इस क्षेत्र में इन्हें विरोध का भी सामना करना पड़ा, परंतु सुधार के लिए धीरे-धीरे समर्थन बढ़ता गया और अन्य सुधारवादियों के सहयोग से 1891 में विधवा पुनर्विवाह संगठन (विडो रिमेरिज एसोसिएशन) की स्थापना हुई। 1881 में इन्होंने राजमुंदरी में एक स्वर्ण विधवा का विवाह कराया जो आंध्र प्रदेश में प्रथम विधवा विवाह था। इन्होंने विधवाओं के निवास के लिए 1897 में मद्रास में और 1905 में राजमुंदरी में आवास गृह बनवाया। इनकी मासिक पत्रिका सतीहित बोधिनी स्त्रियों के हितों से संबंधित है। इन्होंने अवकाश प्राप्त करके कुछ और आवास गृह बनाए जो अनाथ असहाय व विधवा स्त्रियों के लिए थे। वीरेशलिंगम ने देवदासी प्रथा व वेश्यावृत्ति का भी विरोध किया, इस प्रकार इन्होंने जीवन पर्यन्त स्त्री संबंधी कुरीतियों को दूर करने तथा उनकी शिक्षा और स्त्रियों में जागृति लाने संबंधी कार्य किए। इस कारण इनको महान समाजसुधारकों में सम्मिलित किया जाता है और 1893 में सरकार ने इनको रायबहादुर की पदवी प्रदान की।

डी0के0 कर्वे : प्रोफेसर डी0के0 कर्वे फर्ग्युसन कॉलेज के प्रोफेसर थे जिन्होंने विधवा पुनर्विवाह के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। डी0के0 कर्वे ने विधुर होने पर 1893 ई0 में एक विधवा से विवाह किया। इन्होंने 1893 में वर्धा में विधवा विवाह संघ की स्थापना की और 1896 में पूना में स्थापित हिंदू विधवा आश्रम संघ के सचिव बने। कर्वे ने महिला शिक्षा के लिए भी कार्य किये जिसमें इन्होंने जापानी महिला विश्वविद्यालय के मॉडल पर प्रथम भारतीय विश्वविद्यालय के रूप में पूना में श्रीमती नाथी बाई दामोदर ठाकरसी महिला विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में की।

स्त्रियों की स्थिति पर सुधारवादी कार्यों का प्रभाव

उन्नीसवी सदी का काल भारतीय समाज का पुनर्जागरण काल कहलाता है। इस समय भारतीय समाज अंधविश्वासों व कुप्रथाओं के जाल में जकड़ा हुआ था, उसी समय भारतीय समाज में बुद्धिजीवी वर्ग सामने आया और उन्होनें महसूस किया कि राष्ट्र के विकास के लिए समाज को इस अंधकार से बाहर निकालना आवश्यक हैं, इस समय प्रचलित अनेक कुप्रथाओं में एक थी महिलाओं की दयनीय स्थिति। महिलाओं की स्थिति को सुधारने में समाज सुधारकों ने अपनो महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे महिलाओं की स्थिति में अभूतपूर्व प्रगति हुई और उनके कानून भी बने जिनका वर्णन इस प्रकार है -

सती प्रथा निषेध : 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक के समय 1829 के नियम 17 (XVII) द्वारा सती प्रथा को समाप्त कर दिया। प्रारम्भ में यह केवल बंगाल में लागू हुआ लेकिन बाद में बंबई व मद्रास प्रेसीडेन्सियों में भी लागू हुआ। इस नियम को पारित करने में राजारामोहन राय का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

शिशु वध : भारतीय बुद्धिजीव वर्ग व प्रबुद्ध व्यक्तियों ने इस घृणित प्रथा की निंदा की और 1795 में बंगाल नियम 1804 के नियम 3 से शिशु हत्या को हत्या के बराबर मान लिया गया।

विधवा पुनर्विवाह की अनुमति : विधवाओं के पुनर्विवाह के संबंध में ईश्वर चंद्र विद्यासागर, डी के कर्वे, वीरेशलिंगम पंतुलू एवं विष्णुशास्त्री पंडित का नाम महत्वपूर्ण है इनके प्रयासों से 26 जुलाई 1856 ई0 को विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित कर दिया।

बाल विवाह निषेध : भारत में बाल विवाह की समस्या प्रारम्भ से ही रही है, बाल विवाह को रोकने के लिए तीन अधिनियम पारित किये।

सिविल मैरिज एक्ट (1872) : इस अधिनियम द्वारा लड़कियों के विवाह की आयु 14 वर्ष और लड़कों की 18 वर्ष निर्धारित की गई।

सम्मति आयु अधिनियम (1892) : यह अधिनियम भारतीय समाज सुधारक बहराम जी मालाबारी के प्रयत्नों से पारित हुआ। इस अधिनियम द्वारा 12 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया।

शारदा अधिनियम (1930) : अजमेर के प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ0 हरविलास शारदा के प्रयत्नों से यह बाल विवाह निषेध कानून बना। इन्हीं के नाम पर इसे शारदा अधिनियम कहा गया इस अधिनियम द्वारा लड़कियों के विवाह की आयु 14 वर्ष और लड़कों की 18 वर्ष निर्धारित की गई।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्नीसवी सदी में समाज सुधारकों ने महिलाओं की शोचनीय व दयनीय स्थिति को समझा और उन्हें दयनीय स्थिति से बाहर निकालने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वर्तमान समय में स्त्रियों की जो अच्छी स्थिति है, इसका श्रेय भारतीय समाज सुधारकों व बुद्धिजीवी वर्ग को जाता है। इनके प्रयासों के कारण ही स्त्रियों की स्थिति मजबूत हुई वे अंधकार भरे जीवन से बाहर आयी और वर्तमान समय में स्त्रियों की जो संतोषजनक स्थिति है, उसमें समाजसुधारकों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। कोई भी राष्ट्र जिसमें स्त्रियों का शोषण, दमन होता है वह राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता। आज महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे है परिवार संभालने से लेकर राष्ट्र संभालने तक के क्षेत्र में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. बंधोपाध्याय शेखर : प्लासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राईवेट लिमिटेड, 2013, नवीन संस्करण।
2. शर्मा एल0पी : आधुनिक भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2018 (2441)।
3. महाजन विद्याधर : आधुनिक भारत का इतिहास, एस0चंद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993 (ग्वारहवा संस्करण)।
4. सिंह डॉ0 जे0पी : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, प्रैटिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा0लि0 नई दिल्ली, 2005।
5. चंद्र विपिन : आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, प्रा0लि0 नई दिल्ली 2008।
6. भास्कर अरविंद : भारत का स्वतंत्रता संग्राम, कलाम पब्लिकेशन, सीकर (राजस्थान), 2022।
7. ग्रोवर बी0एल0 : आधुनिक भारत का इतिहास, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0नई दिल्ली, 2018।
8. पाण्डे एस0के0 : आधुनिक भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, 2014।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि का विकास और उसका सामाजिक प्रभाव

आशा कुमारी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
शोध निर्देशक, प्राध्यापक, हिन्दी
डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार

सार

आधुनिक हिंदी कहानी भारतीय समाज के बदलते यथार्थ और सामाजिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से विकसित प्रगतिशील विचारधारा ने हिंदी कहानी को सामाजिक अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध एक सशक्त स्वर प्रदान किया। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि के विकास का विश्लेषण करना तथा उसके सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करना है। इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार प्रगतिशील चेतना से प्रेरित हिंदी कहानियाँ समाज की जटिल संरचनाओं को उजागर करती हैं और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान करती हैं।

शोध का मुख्य केंद्र उन आधुनिक हिंदी कहानियों का अध्ययन है, जिनमें जातिवाद, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक असमानता, स्त्री-विमर्श, शोषण, हाशिए के समुदायों की पीड़ा तथा मानवीय गरिमा जैसे विषय प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। प्रगतिशील हिंदी कहानीकारों ने साहित्य को केवल सौंदर्यपरक अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उनकी रचनाओं में समाज की विद्रूपताओं के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि के साथ-साथ एक मानवीय और परिवर्तनकारी दृष्टिकोण भी दिखाई देता है।

इस अध्ययन में यह भी विश्लेषित किया गया है कि आधुनिक हिंदी कहानियों में प्रयुक्त साहित्यिक तकनीकें- जैसे यथार्थवाद, प्रतीकात्मकता, संवादात्मक शिल्प और कथात्मक संरचना-सामाजिक संवेदनाओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने में किस प्रकार सहायक रही हैं। प्रगतिशील दृष्टि से लिखी गई कहानियाँ पाठकों में सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करने, रूढ़ मान्यताओं पर प्रश्न उठाने और समाज के दबे-कुचले वर्गों के प्रति सहानुभूति विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

अध्ययन का भौगोलिक क्षेत्र मुख्यतः भारत तक सीमित है तथा कालखंड आधुनिक युग को समाहित करता है, जिसमें तीव्र सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। साथ ही, यह शोध इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि पाठकों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कहानियों के प्रभाव और अर्थग्रहण को प्रभावित करती है।

कुंजी शब्द : आधुनिक हिंदी कहानी, प्रगतिशील दृष्टि, सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, नारी विमर्श, सामाजिक चेतना।

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी कहानी का विकास भारतीय समाज के उस ऐतिहासिक चरण से जुड़ा हुआ है, जब परंपरागत सामाजिक

संरचनाएँ तेजी से टूट रही थीं और नए सामाजिक-आर्थिक संबंध आकार ले रहे थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारत औपनिवेशिक शासन, सामंती अवशेषों और नवोदित पूँजीवादी व्यवस्था के दबावों से गुजर रहा था। इस संक्रमणकालीन स्थिति ने समाज में गहरी असमानताओं, वर्गीय विभाजन और मानवीय शोषण को जन्म दिया। साहित्य, विशेषकर कहानी विधा, इन परिवर्तनों की संवेदनशील अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। आधुनिक हिंदी कहानी ने समाज को केवल घटनाओं के स्तर पर नहीं, बल्कि उसकी संरचनात्मक समस्याओं के रूप में समझने का प्रयास किया। कहानीकारों ने सामाजिक जीवन के यथार्थ को साहित्यिक रूप देते हुए उन परिस्थितियों को उजागर किया, जिनमें आमजनता का जीवन संचालित हो रहा था। इस प्रकार आधुनिक हिंदी कहानी सामाजिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज बन जाती है।

1. प्रगतिशील दृष्टि : वैचारिक पृष्ठभूमि और साहित्यिक प्रतिबद्धता

प्रगतिशील दृष्टि का उदय केवल साहित्यिक आंदोलन के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक वैचारिक चेतना के रूप में हुआ। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधाराओं और अंतरराष्ट्रीय मार्क्सवादी चिंतन के प्रभाव से साहित्य में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना सशक्त हुई। वर्ष 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना ने हिंदी साहित्य को एक संगठित वैचारिक मंच प्रदान किया। इस आंदोलन का मूल उद्देश्य साहित्य को 'कला के लिए कला' की संकीर्ण अवधारणा से मुक्त कर 'समाज के लिए साहित्य' की दिशा में अग्रसर करना था। प्रगतिशील लेखकों ने साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया कि साहित्य समाज से अलग कोई स्वायत्त सत्ता नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संबंधों, वर्गीय संरचनाओं और सत्ता-संतुलन से निर्मित होता है। इस दृष्टि ने आधुनिक हिंदी कहानी को वैचारिक स्पष्टता और सामाजिक प्रतिबद्धता प्रदान की।

2. आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील चेतना का क्रमिक विकास

आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील चेतना का विकास एक निरंतर और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में हुआ। प्रेमचंद को इस परंपरा का आधार स्तंभ माना जाता है, जिनकी कहानियों में ग्रामीण समाज, किसान, मजदूर और निम्नवर्गीय जीवन की समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। प्रेमचंद की कहानियाँ सामाजिक अन्याय, नैतिक संघर्ष और मानवीय मूल्यों के संकट को केंद्र में रखती हैं। उनके बाद यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर जैसे कथाकारों ने प्रगतिशील चेतना को नए सामाजिक संदर्भों में विस्तारित किया। इन लेखकों की कहानियाँ वर्ग-संघर्ष, सत्ता-संरचनाओं की आलोचना और सामाजिक विघटन के प्रश्नों को अधिक तीव्र और आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करती हैं। इस क्रमिक विकास ने हिंदी कहानी को केवल साहित्यिक विधा नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम बना दिया।

3. सामाजिक यथार्थ, वर्गीय संरचना और नारी विमर्श का विश्लेषण

प्रगतिशील हिंदी कहानी का केंद्रीय सरोकार सामाजिक यथार्थ का विश्लेषणात्मक चित्रण है। इन कहानियों में जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता, श्रमिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न को संरचनात्मक समस्याओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से नारी विमर्श ने प्रगतिशील कहानी को नई वैचारिक दिशा प्रदान की। स्त्री को केवल सहनशील और त्यागमयी पात्र के रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा को तोड़ते हुए प्रगतिशील कहानीकारों ने स्त्री की अस्मिता, संघर्ष और चेतना को केंद्र में रखा। स्त्री-उत्पीड़न, लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना इन कहानियों का महत्वपूर्ण पक्ष है। इस प्रकार प्रगतिशील हिंदी कहानी सामाजिक संरचनाओं की आलोचना का सशक्त माध्यम बनती है।

4. कथा-शिल्प, भाषा और वैचारिक संप्रेषण की भूमिका

प्रगतिशील हिंदी कहानी की प्रभावशीलता केवल उसकी विषयवस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके कथा-शिल्प और

भाषा-प्रयोग में भी निहित है। यथार्थवादी शैली, प्रतीकात्मकता, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और संवादात्मक भाषा सामाजिक यथार्थ को अधिक सजीव और विश्वसनीय बनाते हैं। प्रगतिशील कहानीकारों ने सरल और सहज भाषा का प्रयोग करते हुए जटिल सामाजिक समस्याओं को पाठकों के लिए बोधगम्य बनाया। कथानक की संरचना में नाटकीयता के स्थान पर सामाजिक सच्चाइयों को प्राथमिकता दी गई, जिससे कहानी एक साहित्यिक रचना के साथ-साथ सामाजिक दस्तावेज का रूप ग्रहण करती है। इस शिल्पगत संरचना ने कहानी को वैचारिक रूप से अधिक प्रभावी बनाया।

5. सामाजिक प्रभाव और अध्ययन की समकालीन प्रासंगिकता

आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि का सामाजिक प्रभाव दूरगामी और बहुआयामी रहा है। इन कहानियों ने पाठकों को केवल भावनात्मक रूप से प्रभावित नहीं किया, बल्कि उन्हें सामाजिक अन्याय के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की। साहित्य और समाज के इस अंतःसंबंध ने हिंदी कहानी को सामाजिक चेतना के निर्माण का एक प्रभावी माध्यम बना दिया। समकालीन संदर्भ में, जब सामाजिक असमानताएँ, पहचान की राजनीति और वैचारिक संघर्ष पुनः उभर रहे हैं, तब प्रगतिशील हिंदी कहानी का अध्ययन और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। यह शोध साहित्य के माध्यम से समाज की जटिलताओं को समझने और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

उद्देश्य

1. आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि के वैचारिक विकास का विश्लेषण करना : जिससे यह स्पष्ट किया जा सके कि किस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन, समाजवादी विचारधारा और बदलती सामाजिक संरचनाओं ने कहानी-साहित्य को वैचारिक रूप से प्रभावित किया तथा उसे सामाजिक यथार्थ के सशक्त अभिव्यक्ति-माध्यम के रूप में स्थापित किया।

2. आधुनिक हिंदी कहानियों में सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष : जातिगत असमानता एवं नारी विमर्श के चित्रण का समालोचनात्मक अध्ययन करना, ताकि यह समझा जा सके कि प्रगतिशील कहानीकारों ने किस प्रकार साहित्यिक शिल्प और कथानक के माध्यम से समाज की जटिल समस्याओं को उजागर किया है।

3. प्रगतिशील हिंदी कहानियों के सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करना : विशेषतः यह परीक्षण करना कि इन कहानियों ने सामाजिक चेतना के निर्माण, रूढ़ मान्यताओं की आलोचना और समाज में परिवर्तनकारी सोच के विकास में किस सीमा तक योगदान दिया है।

अनुसंधान पद्धति

शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। अध्ययन में आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि के विकास तथा उसके सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन

वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से किया गया है। शोध का सैद्धांतिक आधार प्रगतिशील साहित्य सिद्धांत, मार्क्सवादी आलोचना और सामाजिक यथार्थवाद पर आधारित है।

अनुसंधान के अंतर्गत चयनित आधुनिक हिंदी कहानियों का पाठ-विश्लेषण किया गया है, जिसमें कथानक, पात्र, भाषा-शैली और सामाजिक संदर्भों का समालोचनात्मक अध्ययन शामिल है। साथ ही, विभिन्न लेखकों एवं कालखंडों की कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा प्रगतिशील चेतना के विकासात्मक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों- जैसे साहित्यिक ग्रंथ, आलोचनात्मक अध्ययन, शोध-पत्र और पत्रिकाओं पर आधारित है। कहानियों को उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में रखकर विश्लेषित किया गया है, जिससे साहित्य और समाज के अंतःसंबंध को समझा जा सके। इस प्रकार, यह अनुसंधान पद्धति अध्ययन को अकादमिक विश्वसनीयता और वैचारिक

स्पष्टता प्रदान करती है।

परिणाम एवं चर्चा

आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि का विकास केवल साहित्यिक परिवर्तन नहीं, बल्कि गहन सामाजिक चेतना का परिणाम है। अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि प्रगतिशील हिंदी कहानियाँ समाज की यथार्थ परिस्थितियों जैसे वर्ग-संघर्ष, जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता, नारी उत्पीड़न और मानवीय अधिकारों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। इन कहानियों ने साहित्य को मनोरंजन की सीमा से निकालकर सामाजिक हस्तक्षेप का सशक्त माध्यम बनाया है।

शोध के परिणाम दर्शाते हैं कि प्रेमचंद के बाद की हिंदी कहानी में प्रगतिशील चेतना अधिक स्पष्ट, मुखर और वैचारिक रूप से संगठित होती गई। यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत और राजेंद्र यादव जैसे कहानीकारों की रचनाओं में शोषित वर्ग, मजदूर, किसान, दलित और स्त्री के जीवन-संघर्ष को केंद्रीय विषय बनाया गया है। इन कहानियों में पात्र केवल व्यक्तिगत समस्याओं तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे सामाजिक संरचनाओं की विसंगतियों को उजागर करने वाले प्रतीक बन जाते हैं।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि आधुनिक हिंदी कहानी में नारी-विमर्श प्रगतिशील दृष्टि का एक महत्वपूर्ण आयाम है। स्त्री पात्रों को अब सहनशील और मौन स्वीकारकर्ता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्षशील इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह परिवर्तन सामाजिक चेतना के विस्तार और स्त्री अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता को दर्शाता है।

परिणाम यह भी संकेत करते हैं कि प्रगतिशील कहानियों की भाषा और शिल्प में सरलता, यथार्थवाद और प्रतीकात्मकता का संतुलित प्रयोग हुआ है। कथ्य की गंभीरता के बावजूद भाषा आम जनमानस से जुड़ी हुई है, जिससे सामाजिक संदेश अधिक प्रभावी रूप में पाठकों तक पहुँचता है। इससे यह सिद्ध होता है कि साहित्यिक सौंदर्य और सामाजिक प्रतिबद्धता एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं।

चर्चा के स्तर पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि आधुनिक हिंदी कहानी ने सामाजिक मानदंडों और सत्ता संरचनाओं की आलोचना करते हुए पाठकों को वैचारिक रूप से सक्रिय किया है। इन कहानियों का प्रभाव केवल साहित्यिक जगत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इन्होंने सामाजिक चेतना, आलोचनात्मक सोच और परिवर्तनकारी दृष्टि को भी सुदृढ़ किया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि का विकास सामाजिक परिवर्तन और वैचारिक जागरूकता की सशक्त अभिव्यक्ति है। यह कहानियाँ केवल साहित्यिक सृजन नहीं हैं, बल्कि समाज की जटिल संरचनाओं, अंतर्विरोधों और संघर्षों का यथार्थपरक दस्तावेज़ भी हैं। प्रगतिशील दृष्टि ने हिंदी कहानी को भावुकता और मनोरंजन की सीमाओं से निकालकर सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रगतिशील हिंदी कहानियों में वर्ग-संघर्ष, आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव, शोषण और नारी उत्पीड़न जैसे मुद्दों को केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ है। इन कहानियों में चित्रित पात्र सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों से जूझते हुए दिखाई देते हैं, जो पाठक को समाज की वास्तविक स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार, आधुनिक हिंदी कहानी सामाजिक चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

शोध यह भी दर्शाता है कि प्रगतिशील कहानीकारों ने भाषा और शिल्प में सरलता, यथार्थवाद और प्रतीकात्मकता का संतुलित प्रयोग किया है। इससे कहानियाँ जनसाधारण तक सहज रूप से पहुँच सकीं और उनका सामाजिक संदेश अधिक प्रभावशाली बना। साहित्यिक सौंदर्य और सामाजिक प्रतिबद्धता का यह समन्वय आधुनिक हिंदी कहानी की एक प्रमुख

विशेषता के रूप में उभरता है।

निष्कर्ष रूप में यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी कहानी में नारी-विमर्श ने प्रगतिशील दृष्टि को और अधिक व्यापक बनाया है। स्त्री पात्रों की चेतना, आत्मसम्मान और संघर्षशीलता ने सामाजिक सोच को चुनौती दी है और स्त्री अधिकारों के प्रश्न को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया है।

समग्रतः, यह अध्ययन सिद्ध करता है कि आधुनिक हिंदी कहानी में प्रगतिशील दृष्टि साहित्य और समाज के बीच सशक्त सेतु का कार्य करती है। यह कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ परिवर्तनकारी चेतना को भी जन्म देती हैं, जिससे साहित्य का सामाजिक दायित्व स्पष्ट होता है।

सुझाव

1. आधुनिक हिंदी कहानियों के अध्ययन में प्रगतिशील दृष्टि के साथ-साथ समकालीन सामाजिक संदर्भों को और अधिक व्यापक रूप में शामिल किया जाना चाहिए।

2. प्रगतिशील हिंदी कहानी पर अंतःविषयक शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे साहित्य और समाज के संबंधों को गहराई से समझा जा सके।

3. स्त्री, दलित और वंचित वर्गों के दृष्टिकोण से लिखी गई कहानियों पर स्वतंत्र और विशिष्ट अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।

4. प्रगतिशील हिंदी कहानियों को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में अधिक स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना का विकास हो सके।

5. भविष्य के शोधों में आधुनिक मीडिया और समाज पर प्रगतिशील हिंदी कहानी के प्रभाव का विश्लेषण किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य, रामविलास. (2018), आधुनिक हिंदी कहानी का सामाजिक यथार्थ. दिल्ली : राष्ट्रीय हिंदी संस्थान।
2. शर्मा, पी. एन. (2020), प्रगतिशील लेखक संघ और हिंदी साहित्य में उसका योगदान. प्रयाग : साहित्य अकादमी।
3. गुप्ता, वी. के. (2017), प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक चेतना. लखनऊ : साहित्य मंथन।
4. यादव, राजेंद्र. (1965), अर्धसत्य और सामाजिक यथार्थ : हिंदी कहानी का विश्लेषण. नई दिल्ली : लोकभारती।
5. सिंह, भीष्म. (1972), ग्रामीण समाज और हिंदी कहानी. दिल्ली : हिन्दुस्थान पब्लिकेशन।
6. मिश्रा, अमरकांत. (1980), आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का विकास. पटना : साहित्यमाला।
7. रॉय, शशि. (2019), नारी विमर्श और हिंदी कहानी. कोलकाता : ज्ञानदीप प्रकाशन।
8. खन्ना, सुरेश. (2015), प्रगतिशील हिंदी कहानीरू आलोचनात्मक दृष्टि. जयपुर : हिंदी साहित्य संस्थान।
9. त्रिपाठी, रामानंद. (2008), सामाजिक असमानता और हिंदी साहित्य. दिल्ली : राष्ट्रीय प्रकाशन।
10. जैन, विनोद. (2012), मार्क्सवाद और हिंदी कहानी में वर्ग संघर्ष. भोपाल : मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय प्रकाशन।
11. श्रीवास्तव, अजय. (2016), आधुनिक हिंदी कहानी और सामाजिक परिवर्तन. वाराणसी : काशी विद्यापीठ प्रकाशन।
12. कुमार, हरीश. (2004), प्रगतिशील दृष्टि और हिंदी कथा साहित्य. दिल्ली : प्रज्ञा पब्लिकेशन।
13. चतुर्वेदी, रीता. (2011), आधुनिक हिंदी साहित्य में यथार्थवाद. लखनऊ : साहित्य दर्शन।
14. वर्मा, दीपक. (2009), हिंदी कहानी में सामाजिक चेतना का विकास. इलाहाबाद : हिन्दी भवन।
15. मेहता, अंशु. (2021), समकालीन हिंदी कहानी और प्रगतिशील विचारधारा. जयपुर : हिंदी अकादमी।

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

साहित्य का सामाजिक विवेक : रामचन्द्र शुक्ल का आलोचनात्मक अवदान

रेमीसा सी.यु.
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय कालड़ी, केरल
Email: remeesacu7@gmail.com

शोध सारांश

रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि की स्थायित्वशक्ति इस बात में निहित है कि उन्होंने साहित्य को न तो केवल भावनाओं की उद्‌भावना माना, न ही मात्र बौद्धिक चिंतन का उपकरण। उन्होंने 'कारयित्री' और 'भावयित्री' प्रतिभाओं के बीच एक सृजनात्मक समन्वय रचते हुए आलोचना को जीवन के जटिल यथार्थ से जोड़ने का यत्न किया। उनका सौंदर्यबोध शब्दों की सजावट से नहीं, बल्कि समाज की चेतना, मानवीय पीड़ा और संघर्ष के गहरे अनुभव से जन्मा था। यह एक आलोचनात्मक दुर्भाग्य रहा है कि उनके कवित्व को मात्र एक साहित्यिक कौतुक के रूप में देखा गया, और उनके भावक रूप को विचारधारात्मक व्याख्याओं ने ढँक दिया। आज जब साहित्य को पुनः समाज के केंद्र में लाने की ज़रूरत है, तब शुक्ल जी की आलोचना-दृष्टि हमें यह स्मरण कराती है कि साहित्य केवल शास्त्र नहीं, संवेदना और समाज के बीच की संवाद-धारा है। उनका लेखन इस बात का प्रमाण है कि वे हिन्दी आलोचना के केवल प्रवर्तक नहीं, बल्कि साहित्य के माध्यम से इतिहास और समाज को पढ़ने की एक सम्यक और प्रासंगिक पद्धति के रचयिता थे—जो आज के समय में पहले से कहीं अधिक जरूरी और प्रेरक बन गई है।

प्रस्तावना

'भारतेंदु युग के आलोचकों ने आलोचना की जिस जनवादी परंपरा को जन्म दिया था और पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जिसका विकास किया, उसकी चरम परिणिति आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना में हुई।'[1] दरअसल, शुक्ल जी की आलोचना-दृष्टि केवल साहित्य तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह उनके व्यापक जीवन-दर्शन और राष्ट्रबोध से गहराई से जुड़ी हुई थी। साम्राज्यवाद के खिलाफ वे लिखते हैं—'यूरोप के देश इस धुन में लगे कि व्यापर के बहाने दुसरे देश से जहाँ तक धन खिंचा जा सके बराबर खींचता जाता रहे। पुरानी लड़ाईयों कि लूट का सिलसिला आक्रमण काल —तक ही जो बहुत दीर्घ नहीं हुआ करता था, रहता था। पर यूरोप के अर्थोमादियों ने ऐसी गूढ़, जटिल और स्थायी प्रणालियाँ प्रतिष्टित की जिनके द्वारा भूमंडल की न जाने कितनी जनता का कम से कम रक्त चूसता चला जा रहा है।'[2] शुक्ल जी का विश्वास था कि देशप्रेम केवल एक भावनात्मक अनुभूति नहीं, बल्कि व्यापक प्रेम का विस्तार है, जिसका केन्द्र सम्पूर्ण देश है - उसकी नदियाँ, जीव-जंतु, पर्वत, वन-प्रांतर और उसमें बसने वाला प्रत्येक प्राणी। इस समग्र और जीवन-सापेक्ष दृष्टिकोण से युक्त देशप्रेम की अवधारणा हिन्दी साहित्य में मध्यकालीन भक्ति काव्य के पश्चात पहली बार उनके विचारों में साकार रूप में दिखाई देती है।

उन्होंने आत्मीय राष्ट्रबोध की एक संवेदनशील व्याख्या प्रस्तुत की। शुक्लजी का राष्ट्रबोध नकल या पश्चिमी प्रतिरूपों पर आधारित नहीं था। वे देश और जाति के रूपात्मक भेदों को पहचानते हुए आत्मीयता की वास्तविक स्थिति खोजते हैं। 'वे राष्ट्रिय आकृति के अलग अलग अंगों के रूप में जातीय विशेषताओं की पहचान पर बल देते, चिरकाल व्यापी, शुद्ध मनुष्यत्व से युक्त देशबद्धता की वकालत करते। उनकी राष्ट्रीयता कि अवधारणा थी - संसार की जातियों के बीच अपनी जाति के स्वतंत्र अनुभव, रूप की स्वतंत्र सत्ता की रक्षा और उससे सानिध्य का आभास।'[3]

इस अर्थ में वे एक अनुभववादी विचारक हैं, जो निजता और आकृति के स्वाभाविक संबंधों को प्राथमिकता देते हैं। वे किसी एकांगी आत्मत्याग या त्यागवाद के पक्षधर नहीं थे, बल्कि व्यक्ति की स्वाभाविक इच्छाओं के भीतर ही देशप्रेम की संभावनाएं देखते थे। वे अपनी जाति की विशिष्टताओं को राष्ट्रीय संरचना के विभिन्न तत्वों के रूप में देखते हुए, मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण, दीर्घजीवी और सच्चे देशप्रेम के समर्थक थे। उनके लिए राष्ट्रीयता कोई संकीर्ण राजनैतिक विचार नहीं थी, बल्कि यह आत्मीय अनुभवों और सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता की रक्षा का नाम था। उनका मानना था कि, 'इतिहास का अध्ययन और प्राचीन गाथाओं का श्रवण हमें वर्तमान को टूटने से बचाने वाला एक सजीव और प्रेरणादायक अतीत सौंपता है, जो हमारे भावों को क्षणिकता से ऊपर उठाकर एक व्यापक दृष्टि प्रदान करता है।'[4]

जब शुक्लजी भारतीय समाज के रूप की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो उनका ध्यान वर्ण-व्यवस्था की ओर स्वतः ही जाता है। वे स्वीकार करते हैं कि भारत की आर्य सभ्यता - जो सरस्वती और दृशद्वती की घाटियों में विकसित हुई - उसमें धर्म केवल आत्मा या मोक्ष तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक दायित्वों और भूमिकाओं का विस्तृत संहिता था, जिसे वर्णाश्रम धर्म कहा गया। उनका मानना था कि इस प्रणाली में समाज का संचालन ज्ञान-शक्ति, बाहुबल, संपत्ति और सेवा जैसे चार आधारों के सामंजस्य पर निर्भर था। यह व्यवस्था केवल बाह्य कर्मों तक सीमित नहीं थी, अपितु वाणी और भावों को भी अनुशासित करने वाली थी।

शुक्लजी का साहित्य-दर्शन केवल काव्य-रूपों की व्याख्या नहीं, बल्कि सभ्यता की आत्मा की थाह लेने का प्रयत्न है। वे साहित्य को एक युग की मानसभूमि पर अंकित सांस्कृतिक छवि मानते हैं - और यह छवि स्थिर नहीं, बल्कि सतत परिवर्तनशील है। वे लिखते हैं कि हर देश का साहित्य उसकी जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है। समय के साथ जब जनता के मनोबल, संकल्प और सामाजिक वृत्तियाँ बदलती हैं, तो साहित्य भी उसी अनुरूप ढलता जाता है। इस सतत बहाव की पहचान और उसके सौंदर्य-बोध को समझने का नाम हैरू साहित्य का इतिहास।

शुक्लजी जिस प्रकार समाज की संरचना और उसकी सांस्कृतिक गतिशीलता को समझने में रुचि रखते हैं, उसी गहराई से वे साहित्य को भी उस सामाजिक चेतना का भावात्मक प्रतिबिंब मानते हैं। शुक्लजी साहित्य को भावात्मक संरचना मानते हैं, जो अपनी रूपरेखा उस विविधरंगी और विषम यथार्थ से खींचती है जिसमें मानव जीता है। लेखक का काम है - इस अराजक जगत में से एक प्रतीकात्मक अनुभव को गढ़ना, जो समस्त समाज की नब्ज पर उंगली रख सके। उनके लिए यह भावात्मक रूप, केवल निजी कल्पना नहीं होता, वह सामूहिक प्रतिनिधित्व है - एक ऐसा रूप, जो लोक-व्यवहार का निचोड़ बन जाता है। परन्तु यह प्रतिनिधित्व भी शुक्लजी के लिए नैतिकता से रहित नहीं हो सकता। वे स्पष्ट रूप से मानते हैं कि साहित्य को नैतिक धरातल पर भी कसा जाना चाहिए। वे कहते हैं कि मनुष्य का संसार सत् और असत्, पुण्य और पाप, सज्जन और दुर्जन का समन्वय है। यही द्वैत, यही संघर्ष साहित्य को जीवित बनाता है। इसलिए साहित्य में केवल उजाले की खोज करना शुक्लजी के लिए आधे सत्य को पकड़ना है। वे उस साहसिक आलोचक की तरह हैं जो मानता है कि जीवन की पूर्णता संघर्ष और विरोधों की उपस्थिति से ही जन्मती है।

शुक्ल जी प्राकृत, अपभ्रंश और आरंभिक हिन्दी की मुक्तक रचनाओं में व्यक्त औसत जनता की चित्तवृत्तियों की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान देते हैं। जहाँ वे ध्यान भी देते हैं, वहाँ भी उन्हें उनमें कोई कलात्मक या आत्मसात करने योग्य ताजगी नहीं दिखती। 'फावड़े वाले' जैसे श्रमशील जन की अनुभूतियों से उत्पन्न भाव-क्षेत्र उन्हें आंदोलित नहीं करता - शायद इसलिए कि वहाँ कोई काव्यात्मक उठान, कोई भाव-संवेदन की विलक्षणता नहीं मिलती। यदि शुक्लजी इन परतों की ओर भी उसी

गहनता से झुकते, तो संभवतः उनका साहित्य-दर्शन सामाजिक धरातल पर और अधिक व्यापक, और अधिक उदात्त हो सकता था। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि, चक्रों की तरह घूमती हुई, अक्सर पौराणिकता की ओर लौट जाती है - वे घटनाओं को निरंतर विकास की रेखा में नहीं, बल्कि पुनरावृत्ति के संकेतों में देखते हैं। यह उन्हें तुलसीदास की तरह ठोस सामाजिक दृष्टि से दूर और सूरदास की कविता के अनुभूतिपरक संकेतों के समीप ले जाता है। वे कविता को वस्तु की तरह पकड़ते हैं, भावना की तरह नहीं। समाज और काव्य के बीच के सूक्ष्म रिश्तों को समझने में वे कहीं-कहीं चूकते भी हैं - शायद इसीलिए जनता की चित्तवृत्तियों की गहराई तक पहुँचने में वे पूरी तरह सफल नहीं हो पाते। लेकिन यही कोशिश कभी-कभी उनके भीतर टकराव भी पैदा करती है। वे वर्तमान के साथ भावनात्मक रिश्ता रखते थे, लेकिन उनका कर्म-बोध एक आचार्य की सीमा में बंध गया था - और यह सीमा उनके भीतर के संभावित क्रांतिकारी को संयमित कर देती है। वे देशप्रेम को देश-परिचय से जोड़ते थे, लेकिन देश के नए ढाँचे की कल्पना में कहीं असहज लगते हैं।

फिर भी, इसी असहजता और सीमाओं के भीतर से एक ऐसा आलोचक आकार लेता है, जो अतीत और आधुनिकता के बीच सेतु बनाते हुए भारतीय साहित्य के इतिहास को एक नई वैचारिक दृष्टि से देखने की कोशिश करता है। शुक्ल हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन चरण के लिए कोई ठोस, समकालीन दृष्टि वाला ढाँचा निर्मित नहीं कर सके। उनके द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक रूपरेखा में अनुभव की दुनिया का विस्तार नहीं, बल्कि एक सीमित कल्पनात्मक विमर्श ही दिखाई देता है - जैसे चेतना की आँखें बंद हों और केवल अनुमान के सहारे भीतर के दृश्य गढ़े जा रहे हों। वे उस काल के भावात्मक संबंधों को विश्लेषण की कसौटी पर खड़ा करने में सफल नहीं हो पाए। दूसरी ओर, आधुनिक युग की ऐतिहासिक संरचना कहीं अधिक ठोस और दृष्टिगोचर है - जिसमें सामाजिक यथार्थ की ज़मीन पहचानने योग्य है, भले ही संदर्भ-सामग्री सीमित क्यों न हो। उनको उस बौद्धिक परंपरा का वाहक माना जा सकता है जो यथार्थ और विचार के बीच संतुलन साधती है। उन्होंने भारतीय साहित्यिक परंपरा को नए ढंग से देखने की प्रेरणा दी - न तो केवल अतीत में खोए रहने की प्रवृत्ति को अपनाया, न ही बिना जड़ों के आधुनिकता की अंधी दौड़ को स्वीकारा। उनकी आलोचना में इतिहास की गहराई है, और भविष्य की दृष्टि भी। उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक ऐसी परंपरा से जोड़ा जो सामाजिक परिवर्तन को आत्मसात करती है और मानवीय मूल्यों को पुनर्परिभाषित करती है। इस रूप में शुक्ल जी आधुनिक भारतीय यथार्थवाद की एक निर्णायक कड़ी बन जाते हैं - जो परंपरा के भीतर से आधुनिकता का मार्ग खोलते हैं और साहित्य को विचार का नहीं, बल्कि कर्तव्य का दर्पण बनाते हैं।

शुक्ल जी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक परिवर्तन की ऊर्जा भरने का प्रयास किया। वे साहित्य को केवल सौंदर्य या रहस्य की चीज़ नहीं मानते थे। उनके लिए वह एक जिम्मेदारी भरी साधना थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से व्यक्तिवादी और कलावादी प्रवृत्तियों की वही आलोचना की और साहित्य को जनजीवन की सच्चाइयों से जोड़ने की कोशिश की। उनका मानना है - 'सच्चा कवि वही है जिसे लोक-हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रसदशा है।'[5] उनके भीतर एक रचनात्मक राष्ट्रभक्ति थी - जो केवल भाषणों में नहीं, बल्कि सृजन की गहराइयों में पनपती है। उन्होंने साहित्य को परंपरा की नयी रेखा पर रखा - जहाँ विचार और संवेदना दोनों एक साथ गतिशील होते हैं। उनके लिए परंपरा कोई निष्क्रिय धरोहर नहीं थी, बल्कि एक जीवंत प्रक्रिया थी जिसे वर्तमान की चुनौतियों के आलोक में पुनर्संयोजित किया जा सकता है। इसी जीवंत परंपरा को देखने और गहराई से समझने के लिए शुक्ल जी ने साहित्य को केवल भावों की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि इतिहासबद्ध समाज की चित्तवृत्तियों का रूपांतरण माना।

कुछ आलोचक शुक्लजी के जीवन-दर्शन को अद्वैतवादी या आत्मवादी कहकर सीमित कर देना चाहते हैं, जिससे न केवल उनकी सौंदर्य-दृष्टि, बल्कि उनके ऐतिहासिक और व्यावहारिक आलोचना-सिद्धांतों को भी अप्रासंगिक बना दिया जाता है। ऐसे निष्कर्ष, दरअसल, गहरे चिंतन की जगह एक प्रकार की विचारात्मक सुविधा का परिचायक हैं। यदि शुक्ल जी की समग्र दृष्टि को समझना है, तो हमें उस बौद्धिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना होगा जिसमें उन्होंने साहित्य, समाज और इतिहास को परखा। उनकी आलोचना-दृष्टि न केवल काव्य-सौंदर्य तक सीमित थी, बल्कि उसमें एक गहरी ऐतिहासिक

चेतना भी थी - जो यह जानती थी कि साहित्य को केवल भावों का प्रदर्शन नहीं, बल्कि यथार्थ की आलोचना बनना चाहिए। आधुनिक साहित्येतिहास की धारा क्या है, खड़ीबोली के सृजनात्मक आंदोलन की गति और उसका सामाजिक-सांस्कृतिक आधार क्या है, और नवजागरण काल की ऐतिहासिकता किस तरह साहित्यिक प्रवृत्तियों को दिशा देती है - ये सभी मूल प्रश्न शुक्ल जी की आलोचना-चेतना के केंद्र में हैं। इसलिए उन्हें समझने के लिए पारंपरिक आध्यात्मिक रूढ़ियों से परे जाना होगा और एक सक्रिय, विचारशील आलोचक के रूप में देखना होगा, जो अपने समय के यथार्थ से आँखें नहीं मूँदता।

शुक्ल जी की साहित्यिक दृष्टि इसी यथार्थ-बोध से जन्म लेती है और केवल रचना की बाह्य रचनाशीलता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह उसकी अंतर्निहित ज्ञान-शक्ति को इतिहास और सौंदर्य-बोध के परिप्रेक्ष्य में परखती है। उनके लिए साहित्यिक परंपरा कोई जड़ मिथक नहीं, बल्कि जीवन की चौतन्य धारा थी, जिसे वे सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में देखते थे। यही कारण है कि शुक्ल जी 'लोकबद्ध प्राणी' के समीक्षक हैं - वे व्यक्ति नहीं, समाज की चित्तवृत्ति और उसकी ऐतिहासिक मानसिकता का विश्लेषण करते हैं। उनका प्रयास केवल काव्यालंकारों की व्याख्या नहीं था, बल्कि उन्होंने साहित्य को मनुष्य के ऐतिहासिक रूप के उद्घाटन का एक सशक्त माध्यम माना। वे मानते थे कि साहित्य का विकास किसी जाति के आत्मबोध और सामाजिक अनुभव की परंपरा में ही संभव है। इसी क्रम में वे स्पष्ट कहते हैं- 'साहित्य किसी जाति की रक्षित वाणी की वह अखंड परम्परा है जो उसके जीवन के स्वतंत्र स्वरूप की रक्षा करती हुई जगत की गति के अनुरूप उत्तरोत्तर उसका अन्तर्विकास करती चलती है। उसके भीतर प्राचीन के साथ नवीन का इस मात्रा में और इस सफ़ाई के साथ मेल होता चलता है कि उसके दीर्घ इतिहास में कालगत भिन्नताओं के रहते हुये भी यहाँ से वहाँ तक एक ही वस्तु के प्रसार की प्रतीति होती है।'[6]

निष्कर्ष

रामचन्द्र शुक्ल का आलोचनात्मक दृष्टिकोण केवल हिन्दी साहित्य की व्याख्या नहीं करता, बल्कि भारतीय बौद्धिक परम्परा के भीतर एक विवेकशील और सर्जनात्मक हस्तक्षेप भी करता है। वे न तो यूरोपीय आलोचना पद्धतियों की निजीव नकल के पक्षधर थे और न ही भारतीय परम्परा की अंधभक्ति के प्रवक्ता। उनके लिए आलोचना एक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसमें साहित्य, समाज और समय के आपसी संबंधों की पड़ताल आवश्यक थी। उन्होंने न केवल साहित्येतिहास की परंपरा को व्याख्यायित किया, बल्कि उसे जनता की चित्तवृत्ति, सामाजिक यथार्थ और ऐतिहासिक संदर्भों से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी आलोचना में 'भावात्मक रूप' और 'प्रातिनिधिक व्यवहार रूप' की जो अवधारणा मिलती है, वह साहित्य और जीवन के बीच अन्तःसंबंधों को समझने की एक मौलिक पद्धति निर्मित करती है।

सन्दर्भ सूची

1. नन्दकिशोर नवल, हिंदी आलोचना का विकास(1981), राजकमल प्रकाशन, पृ.97
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग -1, पृ.129
3. कमला प्रसाद, आलोचक और आलोचना(2002), आधार प्रकाशन, पृ.86
4. रस मीमांसा , पृ. 118
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग -1, पृ.227
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि, भाग - 3, पृ.239
7. कृष्णदत्त पालीवाल, हिंदी आलोचना का सैद्धांतिक आधार(2004), वाणी प्रकाशन
8. डॉ. शिवकुमार मिश्र, हिंदी आलोचना कि परंपरा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल (2002), वाणी प्रकाशन

Address - Remeesa CU

Chundakkadan House, Thandekkad, Mudickal Po, Perumbavoor - 683547, PH - 8089260731

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

BRICS Expansion 2024: Impact on Global Power Balance

Pratyush Meher
MA in Political Science, University of Delhi
Mohantypara, Sundargarh, Odisha, 770001
E-mail: pratyush.meher02@gmail.com
Ph. No.: 7008201932

Abstract

BRICS is an intergovernmental organisation and geopolitical bloc which represent major emerging economies. The founding members of BRICS are Brazil, Russia, India and China. In 2010, South Africa joined the group making it BRICS from BRIC. In 2024, BRICS further expanded which included Egypt, Ethiopia, Iran and UAE. In January 2025, Indonesia joined the BRICS as a full member. BRICS represents one of the most significant geopolitical developments of the post-cold war era. This study tries to analyse how the expansion of BRICS impact the global power balance and how it alters the dynamics of the global power structure particularly in relation to western dominated institutions like World Bank, G7 and IMF. This paper tries to analyse the BRICS's enhanced economic weight and geopolitical influence after the expansion using qualitative method of research and an analytical framework supported by secondary data from various multilateral reports, official BRICS declaration and global economic indicators. It further assesses how the expansion reshapes alignments in the global south. The findings of the paper emphasises that while BRICS is emerging as an influential organisation, its internal asymmetries and competing national interests may limit its transformative potential. Overall, the research contributes to contemporary debates on multi-polarity and provides insights into the future trajectory of global power balancing.

Keywords: BRICS, Intergovernmental organisation, expansion, global power balance, global south, multi-polarity, transformative potential.

Introduction

BRICS is an intergovernmental organisation which initially included four members- Brazil, Russia, India and China. Later on in 2010, South Africa joined the organisation making it BRICS from BRIC. In 2024, BRICS further expanded which included Egypt, Ethiopia, Iran and UAE. In January 2025, Indonesia joined the BRICS as a full member. According to Ministry of External Affairs, BRICS brings together major emerging economies of the world, representing around 49.5 % of the global population, around 40 % of the global GDP and around 26% of global trade. The acronym BRIC was first used in 2001 by Goldman Sachs in their Global Economics Paper, "The World Needs Better Economic BRICs" on the basis of econometric analyses projecting that the

four economies would individually and collectively occupy far greater economic space and would be amongst the world's largest economies in the next 50years or so. (MEA, 2025)

The objectives of BRICS include strengthening the economic, political and social cooperation among its member nations and also to increase the influence of Global South countries in international governance. The group seeks to improve the legitimacy, equity in participation, and efficiency of global institutions such as the UN, IMF, World Bank, and WTO. Moreover, it aims to bolster sustainable social and economic development and promote social inclusion. ("About the BRICS," n.d.)

Now the question came why the expansion matters? According to Amandine Afota and et al, the expansion of the BRICS gives it greater economic and demographic weight. The expansion mainly serves the interests of the developing countries which see it as a forum for expression for the "Global South". It also helps to establish the enlarged group as a major force in global economic governance. According to the Johannesburg Declaration (15th BRICS Summit, 2023), the enhanced group ie the BRICS+ will promote collaboration, solidarity and strategic partnerships in the 'Global South' in a spirit of commitment to inclusive multilateralism. However the heterogeneity within the group members and low trade integration between them hinders the group's ability to influence world trade and the international monetary system. (Afota Amandine et al, 2024)

BRICS Expansion 2024 Member Profiles

In 2024, the BRICS has expanded to officially include four members in its grouping- Egypt, Ethiopia, Iran and United Arab Emirates. This section provides the profiles of these member countries and their importance in the BRICS.

(i) Egypt

Egypt is located in the northern part of the Africa continent and it provides an important link between Africa, Asia and the Middle East. According to the Kazelko and Semeghini, despite the current unstable economic situation of Egypt, its membership is highly beneficial to BRICS especially to its energy sector for various reasons.

"Egypt is the largest non-OPEC oil producer in Africa and the second largest gas producer on the continent, with its total proven oil reserves of 4.4 billion barrels and natural gas reserves of 63 trillion cubic feet. Apart from this, Egypt possesses 48 million tons (mmt) of tantalite, making it straight to the top-4 largest producers, and also possesses 79.45 million tons of gold and 18 million tons of coal. Also, Egypt is one of the Arab world leaders in clean energy transition, which tends to increase the supply of electricity generated from renewable sources to 60% by 2040." (Kazelko & Semeghini, 2024)

Egypt is also the second largest economy in Africa which has a diverse industrial base including chemicals, electronics, textiles, automotive and petrochemicals. The Suez Canal in Egypt plays an important role in global trade routes and logistics connecting the South Asia to the Middle East and the Mediterranean Sea regions. Egypt's inclusion to BRICS opens decent economic and energetic possibilities for the other members of the group, positively impacting both tradition and renewable energy markets.

(ii) Ethiopia

Ethiopia is located in the East Africa. It is also one of the member countries of the Horn of Africa. It is one of the Africa's fastest growing economies, being the sixth largest economy of Africa (Kazelko & Semeghini, 2024) and a major population center.

Ethiopia possesses vast mineral resources. The Abbai River basin in Ethiopia which covers 20% of its land area has significant deposits. As per Kazelko and Semeghini, it includes over 190 metallic deposits including gold, iron, copper and zinc and over 75 non-metallic deposits including limestone, marble, and lignite. (Kazelko & Semeghini, 2024)

The government of Ethiopia has also taken several initiatives to enhance the performance of the energy export sector. Being Africa's second most populous country, it strengthens BRICS' demographic and developmental footprints and adds to South-South cooperation naratives.

(iii) Iran

Iran is one of the countries in the Middle East and it is one of the major energy producers with geopolitical influence in the West Asia.

"Petroleum industry is one of the key sectors of the Iranian's economy, with Iran's oil reserves ranking the fourth in the world and accounting for about 9.5% of the world's total deposits. Apart from, oil Iran has some of the largest natural gas reserves, amounting to 12% of the world's total reserves and pushing the country to the top three natural gas holders. The country has 68 different minerals with reserves totaling 43 billion tons worth an estimated $700 billion, according to Iran's state-owned mines and metal holding company IMIDRO. Among those riches the main minerals are gold, copper, steel, zinc and iron ore. Also, Iran is yet to unlock its renewable energy potential (Valizadeh & Houshialsadat, 2013): Different regions of Iran have high wind, solar and geothermal energy potential." (Kazelko & Semeghini, 2024) The inclusion of Iran to the BRICS will boost the development of its energy markets which will be beneficial to both Iran and the BRICS countries.

(iv) United Arab Emirates

The United Arab Emirates is also one of the countries in the Middle East. It is one of the wealthy Gulf States with extensive global trade and investment links. Possessing vast oil deposits, the UAE occupies the 8th place in the world's top 10 largest oil producers ranking. The UAE produce an average of 3.2 million barrels of petroleum and liquids per day. It also holds the seventh largest proven reserves of natural gas in the world of over 215 trillion cubic feet. It also possesses large aluminium deposits ranking the 5th place in the world. This enormous energy potential is key factor in driving UAE's plan to boost cooperation with its eastern partners, India and China which are the major importers of mineral resources. (Kazelko & Semeghini, 2024) the inclusion of the UAE to the BRICS will help in the development of both the BRICS as well as the UAE.

Impact of BRICS Expansion 2024 on Global Power Balance

BRICS expansion in 2024 has various significant realignments in global politics. This expansion strengthens BRICS economically, geopolitically, strategically and ideationally, reshaping the global power balance in multiple ways.

(i) Shift from Unipolarity to Multipolarity

Since the end of cold war, for the first time, an expansion is taking place outside the West with global economic and strategic weight. Expansion of BRICS helps in accelerating multipolarity in the global order. The expansion adds major energy producers like Iran and UAE in its group. The expansion also helps building connectivity between the Asia, the Middle East and the Africa and to be precise it helps connect three major regions i.e. West Asia, North Africa and sub-Saharan Africa. The 2024 expansion of BRICS helps in creating a stronger bloc that can balance the US- led order. This expansion challenges the post-1991 US-centric global order, pushing the world closer to multiplex or polycentric order. (Naidu & Carvalho, 2025)

(ii) Strengthening the Global South's Bargaining Power

According to Ministry of External Affairs, BRICS brings together major emerging economies of the world, representing around 49.5 % of the global population, around 40 % of the global GDP and around 26% of global trade. Apart from this, the group has major oil and gas exporter countries and critical chokepoints like Suez Canal and Strait of Hormuz. This gives the Global South major negotiating power in IMF and World Bank reforms with increased leverage in climate, trade and investment talks and ability to coordinate South-South cooperation.

(iii) Challenge to G7 and Western Institutions

The G7 has traditionally dominated the global finance (IMF & World Bank), technology and security alliances (NATO). BRICS expansion challenges this traditional domination by increasing global GDP share closer to G7 parity, enhancing energy market influence, promoting non-dollar trade mechanisms and expanding the New Development Bank (NDB) reach. This group does not replace the Western order but it provides parallel structures that challenge the Western hegemony.

(iv) Increased Influence in Africa and the Middle East

The inclusion of Egypt, Ethiopia, Iran and the UAE into the group reshapes regional balances. China gains deeper influence in Gulf geopolitics. BRICS offers an alternative to US security arrangements and Iran's presence in the group challenges Western sanctions architecture. Inclusion of Egypt helps in establishing connections of the North Africa to the Arab World. Ethiopia becomes a representative of Sub- Saharan Africa. This expands BRICS' developmental reach on the continent. The expansion of BRICS diversifies he global power centers beyond US-Europe-China.

(v) Weakening of Dollar Dominance

BRICS 2024 expansion has strengthens move towards settling trade in local currencies, expanding New Development Bank (NDB) lending, developing cross-border payments (BRICS Pay) and reducing reliance on SWIFT. While the dollar will remain dominant, its absolute monopoly is challenged by de-dollarization, marked by strategic shift away from US Dollar (USD) as the dominant global reserve currency. ("De-dollarization and the Rise of Alternative Currency Alliances in BRICS: Prospects and Challenges," 2025)

Conclusion

The 2024 expansion of BRICS has made a significant impact in the global world order. It made a shift from unipolar world to multipolar world, strengthens the Global South and weakens the Western dominance and creates an alternative economic and political institution. Despite internal asymmetries and competing national interest among the members of the group, its rising assertiveness provides a

parallel bloc to the west. It significantly alters the balance of power and drives the world towards a more decentralised and multi- centered global system.

References

1. About the BRICS. (n.d.). Retrieved from https://brics.br/en/about-the-brics
2. Afota, A., Burban, V., Diev, P., Grieco, F., Iberrakene, T., Ishii, K., ... & Valadier, C. (2024). Expansion of BRICS: what are the potential consequences for the global economy. *Bulletin de la Banque de France*, *250*(2), 2024-02.
3. De-dollarization and the rise of alternative currency alliances in BRICS: Prospects and challenges. (2025). *International Journal of Development and Sustainability*, *14*(11). https://doi.org/10.63212/ijds25071802
4. India Foundation. (2025, January 2). BRICS 2024: Paving the path for economic growth and trade cooperation. Retrieved from https://indiafoundation.in/articles-and-commentaries/brics-2024-paving-the-path-for-economic-growth-and-trade-cooperation/
5. Kazelko, A., & Semeghini, U. S. (2024). Expansion of brics: Implications for global energy markets. *BRICS Journal of Economics*, *5*(1), 53–67. https://doi.org/10.3897/brics-econ.5.e117048
6. Kiyala, J. C. K. (2025). BRICS expansion: geopolitical, geostrategic and geoeconomic implications. In *Sustainable development goals series* (pp. 43–63). https://doi.org/10.1007/978-981-96-6986-8_3
7. Lissovolik, Y. (2024). BRICS expansion: new geographies and spheres of cooperation. Editorial for special Issue. *BRICS Journal of Economics*, *5*(1), 1-12.
8. NAIDU, S., & DE CARVALHO, G. (2025). *BRICS Expansion: Redefining Global Structural Power in a Changing World Order*. South African Institute of International Affairs. http://www.jstor.org/stable/resrep67381
9. Unknown. (2025). *Brief on BRICS*. Retrieved from https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/BRICS-2025.pdf

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

उत्तराखंड राज्य के किशोरों के सामाजिक व्यवहार में सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Km Preeti
Research Scholar, Department of Sociology and Social Work,
Hemvati Nandan Bahuguna Garhwal University, Srinagar Garhwal, Uttarakhand
Jeaneetamta@gmail.com
Lucy Kumari
Research Scholar, Department of Sociology and Social Work,
Hemvati Nandan Bahuguna Garhwal University, Srinagar Garhwal, Uttarakhand
lucymahi@gmail.com
Astha
Research Scholar, Department of Sociology and Social Work,
Hemvati Nandan Bahuguna Garhwal University, Srinagar Garhwal, Uttarakhand
Tripathiastha1998@gmail.com

सारांश

किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण विकासात्मक अवस्था हैं जिसमें तीव्र सामाजिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विकास होता है। डिजिटल युग में सामाजिक नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म किशोरों के आपसी संवाद और आत्म-प्रस्तुति के तरीकों को तेजी से प्रभावित कर रहे हैं। यह अध्ययन उत्तराखंड के किशोरों के सामाजिक व्यवहार पर एसएनएस के प्रभाव का विश्लेषण करता हैं। यह शोध द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है और वर्णनात्मक शोध पद्धति को अपनाता है। यह उत्तराखंड के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के 14-19 आयु वर्ग के किशोरों पर केंद्रित हैं। साहित्य की समीक्षा से पता चलता है कि सामाजिक नेटवर्किंग साइटें किशोरों के संचार पैटर्न, आत्म-अभिव्यक्ति, सामाजिक संबंधों और भागीदारी को प्रभावित करती हैं, जहां सीमित उपयोग सामाजिक जुड़ाव, संचार कौशल और पहचान निर्माण को बढ़ाता है, वहीं अत्यधिक उपयोग चिंता, सामाजिक अलगाव, आमने-सामने की बातचीत में कमी और शैक्षणिक व्यवधान से जुड़ा है। उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत को लागू करते हुए यह अध्ययन इस बात पर जोर डालता है कि किशोर सामाजिक संबंध, मनोरंजन और स्व-अभिव्यक्ति के लिए सोशल मीडिया के माध्यम से सक्रिय रूप से संतुष्टि की तलाश करते है जो उनके ऑनलाइन और ऑफलाइन व्यवहार को आकार देता है।

निष्कर्ष एसएनएस के उपयोग के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों आयामों को उजागर करता हैं। यह शोध किशोरों के स्वस्थ सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल साक्षरता, माता-पिता के मार्गदर्शन और संतुलित उपयोग की आवश्यकता पर बल देता है।

कीवर्ड्स : किशोरावस्था, सोशल नेटवर्किंग साइटें, सामाजिक व्यवहार

1. प्रस्तावना

किशोरावस्था मानव जीवन का वह विशेष चरण है, जिसमें व्यक्ति बचपन से व्यस्कता की ओर बढ़ता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह केवल जैविक परिवर्तन की अवस्था नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना और पहचान निर्माण की एक प्रकिया भी है। इस अवधि में व्यक्ति सामाजिक मानदंडों, सांस्कृतिक मूल्यों और पारिवारिक अपेक्षाओं के बीच अपनी भूमिका तथा पहचान स्थापित करने का प्रयास करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (2022) के अनुसार, किशोर वे व्यक्ति हैं जिनकी आयु 10 से 19 वर्ष के बीच होती है। यह जीवन का एक संक्रमणकाल है, जिसमें तीव्र शारीरिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस अवस्था को बचपन और युवावस्था के बीच का चरण माना जाता है, जो व्यक्तिगत पहचान और मूल्यों के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सामाजिक नेटवर्किंग साइट वेब आधारित मंच हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति समान रूचियों सामाजिक पृष्टभूमि अथवा वास्तविक जीवन के संबंधों के आधार पर परस्पर संपर्क स्थापित करते हैं। ये प्लेटफॉर्म उपयोगकर्ताओं को अपनी एक सार्वजनिक या अर्ध-सार्वजनिक प्रोफाइल निर्मित करने, अन्य उपयोगकर्ताओं के साथ संबंधों का नेटवर्क विकसित करने तथा विविध प्रकार की सूचदाओं, विचारों और संसाधनों का आदान-प्रदान करते हैं। बियोड और एलिसन (2007) के अनुसार, सामाजिक नेटवर्किंग साइटों की मुख्य विशेषता यह है कि वे व्यक्तियों को (1) अपनी सार्वजनिक अथवा अर्ध-सार्वजनिक डिजिटल पहचान प्रस्तुत करने (2) अन्य उपयोगकर्ताओं के साथ संबंधों की सूची तैयार करने तथा (3) उन संबंधों को नेटवर्क संरचना के भीतर देखने और समझने का अवसर प्रदान करती है।

सोशल नेटवर्किंग साइट एक ऐसी वेबसाइट है जो उपयोगकर्ताओं को सार्वजनिक प्रोफाइल बनाने और अन्य उपयोगकर्ताओं के साथ संवाद करने की अनुमति देती है। आधुनिक युग में सामाजिक नेटवर्किंग साइटें संचार का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई है। एसएनएस पर उपयोगकर्ता स्वतंत्र रूप से बातचीत करते है, वे तस्वीरों, वीडियों और ऑडियों के माध्यम से व्यक्तिगत और व्यावसायिक बातचीत कर सकते हैं। लोग नेटवर्किंग साइटों पर सामान्य से अधिक समय बिताते हैं ताकि तस्वीरें डाउनलोड कर सके, अपडेट पढ़ सकें और दोस्तों से संपर्क में रह सकें। (खुराना, 2015)

सामाजिक व्यवहार में प्रभाव

सोशल नेटवर्किंग साइट किशोरों के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई हैं, जो उनके संवाद करने बातचीत करने और सामाजिक संबंधों को समझने के तरीके को गहराई से प्रभावित करती हैं। एक और यह मंच संवाद कौशल सामाजिक पूंजी और जागरूकता को बढ़ावा देते है, वहीं दूसरी ओर अत्यधिक उपयोग सामाजिक अलगाव, आभासी निर्भरता तथा व्यवहारिक परिवर्तन का कारण भी बनता जा रहा हैं। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने किशोरों के सामाजिकरण की परपंरा परिभाषा को बदल दिया हैं, परम्परागत रूप से सामाजिक व्यवहार का निर्माण परिवार, विद्यालय और प्रत्यक्ष सामाजिक अंतःक्रियाओं के माध्यम से होता था, किंतु अब यह प्रक्रिया आंशिक रूप से डिजिटल स्पेस द्वारा संचालित होने लगी है। सोशल नेटवर्किंग साइटों के प्रभाव से किशोरों की भाषा-शैली अभिव्यक्ति के तरीके पहचान-बोध तथा रूचि-प्राथमिकताओं में परिवर्तन देखा जा रहा है। वैश्वीकरण और डिजिटल संपर्क के कारण उनके व्यवहार में एक प्रकार की वैश्विक एकरूपता विकसित हो रही है वे अपने भौतिक परिवेश की अपेक्षा आभासी समुदायों से अधिक जुड़ाव महसूस करने लगे वर्तमान किशोरों का सामाजिक व्यवहार डिजिटल सत्यापन जैसे-लाइक, कमेंट और फॉलोवर्स पर निर्भर होता जा रहा है, यह प्रवृत्ति उनके आत्मविश्वास, सामाजिक स्वीकृति की भावना तथा पारस्परिक संबंधों की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती हैं। इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म व्यापक रूप से सुलभ होने के कारण किशोर अपना काफी समय ऑनलाइन बिताते हैं, जो अक्सर उनके सामाजिक कौशल, आत्म-सम्मान और व्यवहारिक पैटर्न को प्रभावित करता है। एसएनएस जहां जुड़ाव, सहयोग के अवसर प्रदान करते है वहीं वे साइबरबुलिंग, सामाजिक तुलना और आमने-सामने की

बातचीत में कमी जैसी चुनौतियां भी प्रस्तुत करते है।

2. सैद्धातिक आधार

प्रस्तुत अध्ययन का वैचारिक ढांचा इस केंद्रीय मान्यता पर आधारित है, कि सोशल नेटवर्किंग साइट किशोरों के सामाजिक व्यवहार और पारस्परिक संबंधों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

उपयोग और संतुष्टि सिंधात (काट्ज, ब्लूमलर, और गुरेविच,1973) बताता है कि किशोर सामाजिक संपर्क, मनोरंजन सूचना और आत्म-अभिव्यक्ति जैसी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सोशल नेटवर्किंग साइटों का सक्रिय रूप से उपयोग करते हैं। उत्तराखंड में, किशोर अपने साथियों के साथ संबंध बनाए रखने, सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने और अपनी पहचान व्यक्त करने के लिए इंस्टाग्राम, फेसबुक और व्हाट्सएप जैसे प्लेटफॉर्मों का प्रयोग करते हैं। यह सिंधात यह बताता है कि एसएनएस का प्रयोग संपर्क और संचार कौशल में सुधार करके उनके सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता है, लेकिन अत्यधिक निर्भरता किशोरों के बीच आमने-सामने की बातचीत और पांरपरिक सामाजिक बंधन को कम कर सकती हैं।

3. साहित्य समीक्षा

ओबेर्स्ट और सहयोगी 2007 ने किशारों में सोशल नेटवर्किंग साइट के उपयोग के मनैवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन किया। जिसमें मुख्य रूप से कुछ छुट जाने के डर (फोमों) और सोशल नेटवर्किंग साइट उपयोग की तीव्रता पर ध्यान केंद्रित किया गया। इस अध्ययन में 16-18 वर्ष की आयु के 1,468 लैटिन अमेरिकी किशारों का सर्वेक्षण किया गया, जिसमें चिंता, अवसाद, फोमो और मोबाइल (सोशल नेटवर्किंग साइट) उपयोग के नकारात्मक परिणामों के लिए मानकीकृत पैमानों का उपयोग किया गया। शोध से यह पता चला कि फोमो ने किशोरों में सोशल नेटवर्किंग साइट प्लेटफॉर्म से लगातार जुड़े रहने की इच्छा को बढ़ा दिया था, जिससे भावनात्मक तनाव और व्यवहार संबंधी समस्याएं उत्पन्न हुई। लिंग भेद भी देखा गया, क्योंकि अवसादग्रस्त लक्षण लड़कियों में अधिक सोशल नेटवर्किंग साइट गतिविधि की भविष्यवाणी करते थे, जबकि चिंता लड़कों में सोशल नेटवर्किंग साइट के बढ़ते उपयोग से जुड़ी थी।

बासित और सहयेगी (2025) ने पाकिस्तान में किशारों के व्यवहार पर सोशल नेटवर्किंग साइटों के बढ़ते प्रभाव का अध्ययन किया। इस शोध में यह पता लगाया गया कि फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और टिकटोक जैसे प्लेटफॉर्म मनोवैज्ञानिक कल्याण, पहचान निर्माण और सामाजिक व्यवहार को कैसे प्रभावित करते है। शोध मे पाकिस्तानी शहरों के 13-19 वर्ष के आयु के 30 किशोरों के साथ छह महीने की अवधि में किए गए अर्ध-संरचित गहन साक्षात्कारों के माध्यम से, शोध ने किशोरों के बीच बदलते सांस्कृतिक मूल्यों, मानदंडों और सामाजिक धारणाओं को उजागर किया। निष्कर्षों से एसएनएस के उपयोग के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव सामने आए, विशेष रूप से आत्म-बोध, मानसिक स्वास्थ्य और सांस्कृतिक परिवर्तन के संदर्भ में, परिणाम ये भी बताते है कि किशोरों में एसएनएस की लत, पश्चिमी संस्कृति के कथित प्रभाव, रूझानों के दवाब, एल्गोरिदम-संचालित जोखिम, पारिवारिक संपर्क में कमी, सांस्कृतिक भ्रम औश्र आमने-सामने की बातचीत के स्थान पर ऑनलाइन बातचीत के कारण समय प्रबधंन में कठिनाई का सामना करना पड़ा।

मीना और सहयोगी (2012) ने शहरी स्कूली किशोरों में सोशल नेटवर्किंग साइटों के समस्याग्रस्त उपयोग की जांच करने के लिए क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन किया। इस शोध में 200 प्रतिभागियों को शामिल किया गया, जिनका मूल्याकंन यंग के इंटरनेट एडिक्शन टेस्ट के संशोधित संस्करण का उपयोग करके किया गया। निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि 24 प्रतिशत छात्रों को एसएनएस के उपयोग से संबंधित कभी-कभी या अक्सर समस्याएं होती हैं, जबकि 2 प्रतिशत छात्रों को ऑनलाइन अत्यधिक समय बिताने के कारण गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। शोध में इस पर भी प्रकाश डाला गया कि एसएनएस की बढ़ती लोकप्रियता और आसान पहुंच ने छात्रों के समय-उपयोग के पैटर्न को बदल दिया है। अत्यधिक उपयोग शैक्षणिक प्रदर्शन में कमी, वास्तविक जीवन में सामाजिक भागीदारी में कमी और किशोरों में लत के संभावित लक्षणों से जुड़ा

हुआ था।

मल्होत्रा और सहयोगी (2014) ने किशोरों और युवाओं में सोशल नेटवर्किंग साइटों के उपयोग का विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि सोशल नेटवर्किंग साइट उस समय किशोरों के लिए संचार का एक प्रमुख माध्यम बन चुकी थी। शोध में पाया गया कि अधिकांश प्रतिभागियों ने लगभग 14 वर्ष की आयु में नेटवर्किंग का उपयोग प्रारंभ किया, जिस पर लिंग तथा पारिवारिक संरचना का प्रभाव देखा गया। औसतन प्रतिदिन 3.6 घंटे सोशल नेटवर्किंग साइट पर व्यतीत किए जाते थे, जो अभिभावकीय नियंत्रण के स्तर से प्रभावित था। फेसबुक को चौटिंग और मित्रता स्थापित करने के लिए सबसे अधिक पसंद किया गया। अध्ययन में यह भी पाया गया कि कई प्रतिभागी रात के समय सोशल नेटवर्किंग साइट का उपयोग करते थे, विपरीत लिंग के साथ संवाद करते थे, दैनिक गतिविधियों की उपेक्षा करते थे तथा अपने ऑनलाइन व्यवहार को परिवार से छिपाते थे। सोशल नेटवर्किंग साइट की उपस्थिति में निराश की भावना देखी गई।

बेरी और सहयोगी (2017) ने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि, व्यक्तित्व और समग्र विकास पर सोशल नेटवर्किंग साइटों के प्रभाव का अध्ययन किया। शोध यह बताता है कि तकनीकी प्रगति, विशेष रूप से इंटरनेट ने व्यक्तिगत, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है, छात्र संचार और सूचना आदान-प्रदान के लिए एसएनएस पर तेजी से निर्भर होते जा रहे हैं, जिससे यह उनके दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। शोध में इस बात पर जोर दिया गया कि एसएनएस के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव पाए गए तथा छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन के साथ-साथ उनकी सामाजिक और भावनात्मक बुद्धिमता और सामाजिक विकास पर भी असर पड़ा है।

मेधा राज और सहयोगी (2018) ने सिलीगुड़ी पश्चिम बंगाल भारत के स्कूली छात्रों के बीच ऑनलाइन सोशल नेटवर्किंग साइटों का उपयोग का अध्ययन किया। इस शोध का मुख्य उद्देश्य स्कूली छात्रों द्वारा सोशल नेटवर्किंग साइटों के इस्तेमाल के पैर्टन और उनके शैक्षणिक प्रदर्शन पर इसके प्रभाव का पता लगाना था। शोध पत्र से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि 87. 1 प्रतिशत छात्रों ने सोशल सोशल नेटवर्किंग साइटों का इस्तेमाल किया और इन नेटवर्कों पर ज्यादा समय बिताया। 70. 7 प्रतिशत में लत देखी गई और 17 वर्ष उससे अधिक आयु वर्ग में ज्यादा थी।

परवेज और सहयोगी (2019) द्वारा अपने शोध पत्र में यह देखा कि किस प्रकार किशारों के बीच पारस्परिक संबंधों पर सोशल नेटवर्किंग साइटों का प्रभाव पड़ रहा हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य मोल्लाहट उपजिला में छात्रों के बीच सोशल नेटवर्किंग साइट के उपयोग पर एक अध्ययन ने पारस्परिक संबंधों पर विशेष रूप से उनके परिवार और दोस्तों के साथ क्या प्रभाव पड़ता है कि जांच करना था। डिग्री कॉलेज गर्ल्स हाइस्कूल और सेकेंडरी स्कूल के छात्रों 14-18 वर्ष के आयु वर्ग को संभाव्यता निदर्शन द्वारा चुना गया, तथा प्रश्नावली के माध्यम से प्राथमिक आंकड़े एकत्र किए गए। शोध परिणामों से पता चला कि सोशल नेटवर्किंग साइट ने किशारों के बीच मित्रवत संबंधों को बेहतर बनाने में मदद की है, लेकिन इनके नकारात्मक प्रभाव हुए जैसे समय की बर्बादी, अपराध और अनैतिक कृत्यों में वृद्धि और मासिक व्यय में वृद्धि थी।

सविता और सहयोगी (2021) ने किशोरों की सामाजिक क्षमता पर सोशल नेटवर्किंग साइटों के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि फेसबुक, व्हाटसप इंस्टाग्राम स्नैपचेट जैसे प्लेटफॉर्म संचार के शक्तिशाली साधन और किशोर के समीकरण का प्राथमिक मंच बन गए है। इस शोध में सामाजिक दक्षता को सामाजिक अंतःक्रियाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया और सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक और संज्ञानात्मक कौशल के विकास में इसकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया। शोध के निष्कर्ष बताते है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स के उपयोग का किशोरों की सामाजिक दक्षता पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता हैं, और एसएनएस के अत्यधिक उपयोग से आमने-सामने की बातचीत और माता-पिता और बच्चे के बीच का संबध कम हो गया।

गुप्ता और सहयोगी (2024) ने अपने अध्ययन में भारतीय किशोरों पर सोशल नेटवर्किंग साइटों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अध्ययन करना था इस शोध का उद्देश्य किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में सोशल नेटवर्किंग साइट से पड़ने वाले नकारात्मक व सकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करना था। यह शोध द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित था। जिसमें सहकर्मी-समीक्षित पत्रिकाएं,

पुस्तकें और विश्वसनीय ऑनलाइन स्त्रोत शामिल हैं। शोध के निष्कर्षो से ज्ञात हुआ कि भारतीय किशोरों में सोशल ने नेटवर्किंग साइट की अत्यधिक उपयोग से उनमें चिंता, अवसाद और सामाजिक अलगाव शामिल था।

सिन्हा और सहयोगी (2025) ने पश्चिम बंगाल के उत्तर 24 परगना जिले में 13-16 वर्ष आयु वर्ग के किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल नेटवर्किंग साइटों के उपयोग के प्रभाव का अध्ययन किया। मात्रात्मक सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग करते हुए लिंग और निवास स्थान के आधार पर समान रूप से विभाजित 100 छात्रों से डेटा एकत्र किया गया। स्वतंत्र नमूना टी-परीक्षणों से पता चला कि उच्च एसएनएस उपयोगकर्ताओं ने कम उपयोगकर्ताओं की तुलना में खराब मानसिक स्वास्थ्य की जानकारी दी हांलाकि लिंग या निवास स्थान के आधार पर कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया। अध्ययन से यह परिणाम ज्ञात हुआ कि एसएनएस का अत्यधिक उपयोग किशोरों के मनोवैज्ञानिक कल्याण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और संतुलित डिजिटल प्रथाओं की आवश्यकता पर बल देता हैं।

4. उद्देश्य

नेटवर्किंग साइट के उपयोग के संदर्भ में किशोरों के सामाजिक संबधों, आत्म-अभिव्यक्ति तथा सामाजिक सहभागिता में होने वाले परिवर्तनों का मूल्यांकन करना।

नेटवर्किंग साइट के उपयोग से सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का मूल्यांकन करना।

5. शोध पद्धति

यह शोध वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखंड में किशोरों के सामाजिक व्यवहार पर सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रभाव का अध्ययन करना है, जिसके लिए द्वितीयक आंकड़ों के मौजूदा स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। इस शोध का भौगोलिक क्षेत्र उत्तराखंड राज्य है, जिसमें ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के किशोरों 14-19 वर्ष आयु वर्ग पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

6. चर्चा और निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तराखंड राज्य के किशोरों के बीच सोशल नेटवर्किंग साइट्स के उपयोग और उनके सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया। साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म किशोरों के सामाजिक संबंधों संवाद शैली, आत्म-अभिव्यक्ति तथा सामाजिक सामाजिक सहभागिता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर रहे है। शोध में सम्मिलित अधिकांश किशोर 14-19 वर्ष आयु वर्ग से संबंधित पाए गए है जो नियमित रूप से एसएनएस का उपयोग करते हैं। अध्ययन में 87 प्रतिशत छात्रों द्वारा एसएनएस के उपयोग की पुष्टि की गई, जबकि 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं में लत के लक्षण पाए गए। एक अन्य शोध में 24 प्रतिशत किशोरों में कभी-कभी समस्यात्मक उपयोग और 2 प्रतिशत में गंभीर स्तर की समस्या देखी गई। उपयोग की अवधि के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि अधिकांश किशोर प्रतिदिन 1-3 घंटे सोशल मीडिया (एसएनएस) पर व्यतीत करते हैं, जिससे उनके दैनिक जीवन, समय प्रबंधन तथा अध्ययन की दिनचर्या प्रभाव पड़ता है, इसके विपरीत अत्यधिक उपयोग से आमने-सामने संवाद में कमी, पारिवारिक समय में गिरावट तथा सामाजिक गतिविधियों में कमी देखी गई, कुछ किशोरों में चिंता, चिड़चिड़ापन तथा ध्यान भटकाव जैसी समस्याएं प्रकट हुई है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव मौजूद हैं। मानसिक स्वास्थ्य में आए परिवर्तन सामाजिक व्यवहार को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है, जिससे किशारों के पारस्परिक संबंध और सामाजिक सहभागिता में बदलाव देखा जाता हैं। यदि इनका उपयोग संतुलित और और जागरूक तरीके से किया जाए तो यह सामाजिक विकास में सहायक हो सकती है, परंतु अनियंत्रित उपयोग मानसिक और सामाजिक

समस्याओं को बढ़ा सकता हैं। अतः डिजिटल साक्षरता, समय प्रबंधन और अभिभावकीय मार्गदर्शन अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. boyd, D. M., & Ellison, N. B. (2007). Social Network Sites: Definition, History, and Scholarship. Journal of Computer-Mediated Communication, 13(1), article 11. Retrieved 2012-01-30
2. Baker, R. K., & White, K. M. (2010). Predicting adolescents' use of social networking sites from an extended theory of planned behaviour perspective. Computers in Human Behavior, 26(6), 1591-1597. https://doi.org/10.1016/j.chb.2010.06.011.
3. Greenfield, P. M. (2004). Developmental considerations for determining appropriate Internet use guidelines for children and adolescents. Applied Developmental Psychology, 25, 751- 762.
4. Lenhart, A., Madden, M., & Hitlin, P. (2005). Teens and technology. Retrieved October 20, 2008, from http://www.pewinternet.org/pdfs/PIP_Teens_Tech_July2005web.pdf.
5. Oberst, U., Wegmann, E., Stodt, B., Brand, M., & Chamarro, A. (2017). Negative consequences from heavy social networking in adolescents: The mediating role of fear of missing out. Journal of Adolescence, 55, 51-60. https://doi.org/10.1016/j.adolescence.2016.12.008
6. Basit, A., Shah, K. U. D. A., Kashif, M., Ali, K., & Akhtar, S. (2025). The impact of social networking sites on teenagers' behavior and their influence on Pakistani culture. Journal of Management Practices, Humanities and Social Sciences, 9(2), 12-22. https://doi.org/10.33152/jmphss-9.2.2
7. Gupta, D., & Izgi, F. D. (2024). Psychological impact of social networking sites on Indian adolescents. Edu Consilium: Jurnal Bimbingan dan Konseling Pendidikan Islam, 5(2), 13-23. https://doi.org/10.19105/ec.v5i2.12643.
8. Katz, E., Blumler, J. G., & Gurevitch, M. (1973). Uses and gratifications research. Public Opinion Quarterly, 37(4), 509-523.
9. Meena, P. S., Mittal, P. K., & Solanki, R. K. (2012). Problematic use of social networking sites among urban school adolescents. Industrial Psychiatry Journal, 21(2), 94-97. https://doi.org/10.4103/0972-6748.119615.
10. Raj, M., Bhattacherjee, S., & Mukherjee, A. (2018). Usage of online social networking sites among school students of Siliguri, West Bengal, India. Indian Journal of Psychological Medicine, 40(5), 452-457. https://doi.org/10.4103/IJPSYM.IJPSYM_70_18'.
11. Parvez, M. S., Rahaman, M. A., Fatema, K., & Mondal, D. R. (2019). Impact of Social Networking Sites on Interpersonal Relationship among Teenager: A Sociological Analysis in the District of Bagerhat. British Journal of Arts and Humanities, 1(5), 14-27. https://doi.org/10.34104/bjah.019.1427.
12. Beri, N. (2017, July). Impact of social networking sites on adolescence: A review. International Journal of Research Culture Society, 1(5). ISSN: 2456-6683.
13. Malhotra Bhola, R., & Mahakud, G. C. (2014). A qualitative analysis of social networking usage. International Journal of Research in Social Sciences, 2(1), 34-44.
14. Savita, A. (2021). Influence of social networking sites on social competence of adolescents. International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 9(10), 123-130.
15. Sinha, A. (2025, July). Kishoron ke mansik swasthya par social networking sites ke upyog ka prabhav. Bhartiya Bahuvishayak Anusandhan Patrika, 2(1). https://doi.org/10.70798/IJOMR/020040032

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

Dr. Anupama
Assistant Professor, Department of Hindi
Mount Carmel College, Autonomous,
#58, Palace Road, Abshot Layout,
Vasanth Nagar, Bangalore-560001.
Phone Number-8105566341
Email.Id- pa.anupama09@gmail.com

प्रस्तावना

स्त्री विमर्श का अर्थ केवल स्त्री-समस्याओं का वर्णन नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर स्त्री की स्थिति, उसके अधिकारों और उसकी अस्मिता की आलोचनात्मक पड़ताल करना है। हिन्दी साहित्य में प्रारंभिक काल में स्त्री को आदर्श नारी, गृहिणी या प्रेमिका के रूप में देखा गया, परंतु आधुनिक काल में विशेषतः स्वतंत्रता के बाद स्त्री लेखन ने नई चेतना के साथ जन्म लिया। महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान से लेकर मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और मैत्रेयी पुष्पा तक, स्त्री लेखन की एक सुदृढ़ परंपरा विकसित हुई। इस परंपरा में स्त्री अब सहनशील पात्र नहीं, बल्कि प्रश्न करनेवाली, संघर्षशील और आत्मनिर्णय की आकांक्षी इकाई बनकर उभरी। स्त्री विमर्श ने साहित्य को सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकार के प्रश्नों से जोड़ा। समकालीन हिन्दी उपन्यास में यह परिवर्तन विशेष रूप से स्पष्ट दिखाई देता है, जहाँ स्त्री अपने जीवन, शरीर, संबंधों और निर्णय पर स्वयं अधिकार चाहती है। इसी संदर्भ में प्रभा खेतान का साहित्य एक सशक्त स्त्री-दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। वे केवल उपन्यासकार ही नही, बल्कि दार्शनिक दृष्टि से भी समृद्ध लेखिका थीं। जर्मन दर्शन और अस्तित्ववाद से प्रभावित प्रभा खेतान के लेखन में स्त्री के अकेलेपन, उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा और उसके अस्तित्वगत संकट की गहरी छाया दिखाई देती है। जर्मन दार्शनिकों- कांट, हेगेल और विशेषतः नीत्शे- की वैचारिक परंपरा तथा अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके उपन्यास छिन्नमस्ता, तालाबंदी और पीली आँधी स्त्री अस्मिता, प्रेम-संबंधों की असमानता और सामाजिक दबावों की सशक्त अभिव्यक्ति है। उन्होंने स्त्री को न तो पूर्णतः पीड़िता के रूप में चित्रित किया और न ही आदर्श रूप में, बल्कि एक संघर्षशील, त्रुटिपूर्ण और संवेदनशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया। इस कारण समकालीन हिन्दी साहित्य में उनका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट हैं।

स्त्री विमर्श : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

स्त्री विमर्श का प्रमुख उद्देश्य पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देना, लैंगिक असमानता को उजागर करना और स्त्री को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना है। इसका लक्ष्य यह भी हैं कि, स्त्री अपनी पहचान स्वयं गढ़े न कि समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं में सीमित रहे। पितृसत्तात्मक समाज वह सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें सत्ता, निर्णय और संसाधनों पर पुरुष का प्रभुत्व होता है। इस व्यवस्था में स्त्री को प्रायरू द्वितीय दर्जा दिया जाता है और उससे आज्ञाकारिता, त्याग और

सहनशीलता की अपेक्षा की जाती है। परिवार, विवाह, संपत्ति, शिक्षा और कार्य क्षेत्र- हर स्तर पर पितृसत्ता स्त्री के अधिकारों और स्वतंत्रता को सीमित करती है। पितृसत्तात्मक संरचना केवल बाहरी नियंत्रण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह स्त्री के मानसिक संसार में भी प्रवेश कर जाती है। स्त्री स्वयं को हीन समझने लगती है और अपनी इच्छाओं को दबाने को विवश होती है। स्त्री विमर्श में देह, मन और आत्मसम्मान की अवधारणा को विशेष महत्व दिया गया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री देह को अक्सर उपभोग या नियंत्रण की वस्तु के रूप में देखा जाता है। इससे स्त्री की यौनिकता, सौंदर्य और आचरण पर सामाजिक पहरे बिठा दिए जाते हैं। स्त्री विमर्श इस दृष्टिकोण का विरोध करता है और स्त्री को अपनी देह पर स्वायत्तता का अधिकार देता है। इसके साथ ही, स्त्री के मनोवैज्ञानिक संसार- उसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, भय और सपने- को भी सम्मान देने की आवश्यकता पर बल देता है। "आज स्त्री-विमर्श ने नारी के दमन के विरुद्ध नारी के प्रतिकार के स्वर को विकसित करने में अभूतपूर्ण सफलता अर्जित की है। यहाँ प्रतिकार का स्तर प्रतिशोधात्मक नहीं है बल्कि इसके मूल में सामाजिक न्याय, समानता, शांतिपूर्ण, सह अस्तित्व की ही भावना निहित है। यह विमर्श समाज के नज़रिए को बदलने की माँग करता है।"(1)

आत्मासम्मान स्त्री विमर्श का केंद्रीय तत्व है, क्योंकि बिना आत्मसम्मान के कोई भी स्वतंत्रता नहीं हो सकती। आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री विमर्श की आधारशिला है। जब तक स्त्री आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर रहती है, तब तक उसकी स्वतंत्रता अधूरी रहती है। शिक्षा, रोज़गार और स्वरोज़गार के अवसर स्त्री को न केवल आर्थिक शक्ति प्रदान करते हैं, बल्कि आत्मविश्वास और निर्णय क्षमता भी बढ़ाते हैं। यह स्त्री को नेतृत्व, भागीदारी और समान अवसर प्रदान करने की माँग करती है। इस सशक्तिकरण को एक दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखा है। आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना स्त्री सशक्तिकरण अधूरा है और सामाजिक चेतना के बिना आर्थिक प्रगति अर्थहीन। इसीलिए स्त्री विमर्श का अंतिम उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जहाँ स्त्री और पुरुष समान गरिमा, समान अधिकार और समान अवसरों के साथ जीवन जी सकें।

प्रभा खेतान : जीवन और साहित्यिक पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य में प्रभा खेतान का नाम एक ऐसी सशक्त स्त्री लेखिका के रूप में लिया जाता है, जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से स्त्री स्वतंत्रता, आत्म सम्मान और अस्तित्वगत संघर्ष को गहराई से उकेरा। वे केवल उपन्यासकार ही नहीं थी, बल्कि एक गंभीर दार्शनिक, अनुवादक और चिंतक भी थीं। उनके साहित्य में जीवन के यथार्थ, स्त्री के आंतरिक द्वंद्व और आधुनिक समाज की विसंगतियों का साहसिक चित्रण मिलता है। प्रभा खेतान का जन्म 1942 में राजस्थान में हुआ। उनका जीवन प्रारंभ से ही संघर्षों से भरा रहा। पारिवारिक परिस्थितियों, सामाजिक दबावों और आर्थिक चुनौतियों के बीच उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और आत्मनिर्भर बनने का मार्ग चुना। उन्होंने दर्शनशास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त की और आगे चलकर एक सफल उद्यमी तथा लेखिका बनीं। उनका निजी जीवन भी अनेक मानसिक और भावनात्मक संघर्षों से गुज़रा, जिसका प्रभाव उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे अपने जीवनानुभवों को छिपाने के बजाय उन्हें लेखन का आधार बनाती हैं, जिससे उनका साहित्य अत्यंत प्रामाणिक और संवेदनशील बन पड़ता है। 2008 में उनका निधन हुआ, परंतु उनका साहित्य आज भी स्त्री चेतना का एक सशक्त दस्तावेज़ है।

प्रभा खेतान के उपन्यास हिन्दी स्त्री लेखन की एक महत्वपूर्ण धारा का निर्माण करते हैं। उनके प्रमुख उपन्यासों में छिन्नमस्ता, तालाबंदी, अग्निसंभवा, आओ पे पे घर चले और पीली आँधी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता और चुनाव को लेकर गहरी द्वंद में दिखाई देते हैं। वे अपने जीवन के अर्थ की खोज में अकेलेपन, पीड़ा और असंतोष से गुज़रती है। उन्होंने स्वीकार किया है- "मैंने दुख झेला है, पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ, जिस दिन मैंने खुद को एक बड़ी गैरज़रूरी लड़ाई से बचा लिया। कुछ के प्रति मेरा यह समर्पण था। सारे ज़ुल्मों के सामने .... सलीब पर लटकते, मैंने पाया कि अब पूरी तरह ज़िन्दगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।"(2)

प्रभा खेतान के पात्र यह मानते हैं कि मनुष्य अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी है और उसे अपने जीवन के निर्णय

स्वयं लेने चाहिए, चाहे उनके परिणाम कितने ही कष्टदायक क्यों न हों। यह दृष्टि पूरी तरह अस्तित्ववादी दर्शन से जुड़ी हुई है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री जीवन के उन पहेलुओं को उजागर किया, जिन पर बोलना सामाजिक रूप से वर्जित माना जाता था- जैसे स्त्री की यौनिकता, प्रेम में असमानता, अविवाहित स्त्री की पीड़ा और आत्मनिर्णय की चाह। उनका लेखन अतिवैयक्तिक होते हुए भी व्यापक सामाजिक अर्थ रखता है। प्रभा खेतान के अनुसार, "जन्म से लेकर मृत्यु तक पग-पग पर स्त्री जिस यौन उत्पीड़न को झेलती है और जिसके बारें में हमेशा खामोश रहती है या यों कहें कि, व्यवस्था उसे ऐसा करने पर मज़बूर करती है, स्त्री की उसी खामोशी को मुझे शब्द देना है। मेरे अक्षर की शुरुआत यहीं से हुई।"(3)

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री पात्रों का स्वरूप

प्रभा खेतान के उपन्यासों के प्रमुख विशेषताएँ यह हैं कि, उनके स्त्री पात्र केवल पारंपरिक पीड़ित या आदर्श नारी के रूप में नहीं दिखाए गए, बल्कि संघर्षशील और चेतनशील व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं। वे अपने जीवन, प्रेम, देह, परिवार और समाज के दबावों से जुड़े सवालों का सामना करते हैं। उदाहरण के तौर पर छिन्नमस्ता की नायिका अपनी यौनिक इच्छाओं और आत्मसम्मान के बीच संतुलन बनाने के लिए लगातार संघर्ष करती है। वह पारंपरिक सीमाओं को चुनौती देती है, परंतु सामाजिक आलोचनाओं और आत्मासंदेह के कारण मानसिक द्वंद्व का अनुभव भी करती है। इसी प्रकार, पीली आंधी की नायिका अपने अकेलेपन और मानसिक संघर्ष के माध्यम से स्त्री चेतना की गहराई को दर्शाती है।

प्रभा खेतान की स्त्री अक्सर परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व से जूझती हैं। वे पुराने रीति-रिवाज़, पितृसत्तात्मक सामाजिक नियम और पारिवारिक अपेक्षाओं के विरुद्ध अपने आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता की तलाश करती है। तालाबंदी में नायिका के संघर्ष में यह द्वंद्व स्पष्ट है- जहाँ एक ओर उसे सामाजिक संरचना और परंपराओं का पालन करना होता है, वहीं दूसरी ओर वह अपने व्यक्तिगत अधिकार और स्वतंत्रता की खोज में लगी रहती हैं। यह द्वंद्व स्त्री पात्रों के मनोवैज्ञानिक यथार्थ और सामाजिक संघर्ष का केंद्र बनता है। यहाँ स्त्री केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों से प्रभावित एक जागरूक नागरिक के रूप में उपस्थित है।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में विवाह और प्रेम संबंधों में स्त्री की स्थिति को यथार्थपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उनकी नायिकाएँ विवाह में केवल उपस्थिति या पालनहार के रूप में नहीं हैं, वे भावनाओं, अधिकारों और आत्मसम्मान के सवाल उठाती हैं। विवाह संबंधों में असमानता, पति-पत्नी के मध्य शक्ति संतुलन, प्रेम में स्वतंत्रता और प्रतिबंध- ये सभी उनके उपन्यासों में प्रमुख मुद्दे हैं। छिन्नमस्ता में नायिका प्रेम और यौनिकता में अपनी स्वतंत्रता चाहती है, परंतु सामाजिक मानदण्डों और आलोचनाओं के कारण मानसिक द्वंद्व अनुभव करती है। उसे समाज की कठोर प्रतिक्रियाओं और अपने अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। "उनके उपन्यासों में स्त्री-विमर्श को पुख्ता नींव प्रदान की गई है। दमित-शोषित, प्रताड़ित और कुंठित स्त्री का संघर्ष और अपने व्यक्तित्व निर्माण के प्रति ललक उनके उपन्यासों में प्रधानता से उभरी है।"(4)

प्रभा खेतान के स्त्री पात्रों के आकांक्षाएँ और इच्छाएँ केवल सामाजिक या पारिवारिक स्तर तक सीमित नहीं है। वह अपने जीवन, करियर, प्रेम संबंधों और आत्मनिर्णय में पूर्णता की तलाश करती है। उनका मानसिक द्वंद्व मुख्यतः समाज द्वारा थोपे गए बंधनों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आकांक्षा के बीच उत्पन्न होती है। उपन्यासों में यह द्वंद्व न केवल भावनात्मक स्तर पर, बल्कि अस्तित्ववादी दृष्टि से भी दर्शाया गया है। स्त्री पात्र अपने आत्मसम्मान, इच्छाओं और कर्तव्यों के बीच संतुलन बनाने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। प्रभा खेतान के स्त्री पात्र अक्सर मध्यम् और उच्च मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि से आते हैं। उनका सामाजिक और आर्थिक परिवेश उनके संघर्ष और विकल्पों को प्रभावित करता है। आर्थिक स्वतंत्रता और शिक्षा स्त्री पात्रों को निर्णय लेने और आत्मनिर्णय में सक्षम बनाती है, जबकि आर्थिक और सामाजिक निर्भरता उनके विकल्पों को सीमित करती है। उनके उपन्यासों में यह स्पष्ट हैं कि, आर्थिक और सामाजिक स्थिति स्त्री के संघर्ष और मानसिक द्वंद्व की गहराई को प्रभावित करती है। सशक्त, शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री पात्र अधिक निर्णय क्षम और चेतनशील दिखाई देते हैं, जबकि निर्भर पात्र समाज और परिवार के दबावों में दबे रहते हैं। निष्कर्षतरू कहा जा सकता हैं कि, प्रभा खेतान

के उपन्यासों में स्त्री पात्र संघर्षशील, चेतनशील और जटिल व्यक्तित्व के धनी हैं। वे परंपरा और आधुनिकता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक अपेक्षाओं, प्रेम और विवाह संबंधों में असमानता जैसी समस्याओं से जूझते हुए अपनी अस्मिता की खोज करती है। सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि इन पात्रों के संघर्षो को और भी यथार्थपूर्ण बनाती है।

प्रभा खेतान की उपन्यासों में स्त्री अस्मिता और आत्मबोध

प्रभा खेतान के उपन्यास न केवल स्त्री जीवन के यथार्थ को उजागर करते हैं, बल्कि स्त्री की अस्मिता, आत्मबोध और स्वतंत्रता की खोज को भी केंद्र में रखते हैं। उनकी उपन्यासों में स्त्री पात्र अपनी अस्मिता की खोज में लगातार संघर्ष करती है। वे यह सवाल करती हैं कि, उनका अस्तित्व केवल 'पत्नी', 'माँ', या 'संगिनी' के रूप में सीमित क्यों होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर छिन्नमस्ता की नायिका अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेना चाहती है और समाज द्वारा निर्धारित अपेक्षाओं को चुनौती देती है। इसी प्रकार स्त्री की पहचान केवल बाहरी समाज द्वारा निर्धारित नहीं, बल्कि उसकी आत्मचेतना और आंतरिक समझ से बनती है।

प्रभाव खेतान के स्त्री पात्रों के लिए आत्मसम्मान और स्वाभिमान उनके अस्तित्व का आधार है। वह किसी भी स्थिति में अपने आत्मसम्मान का त्याग नहीं करतीं, चाहे सामाजिक दबाव या व्यक्तिगत संबंध कितने भी कठिन क्यों न हो। पीली आँधी की नायिका में इस संघर्ष को देखा जा सकता है, जो प्रेम, विवाह और सामाजिक प्रतिबंधों के बावजूद अपनी गरिमा बनाए रखती है। उनका स्वाभिमान, उनकी स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता का प्रतीक है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र अक्सर अस्तित्व के संकट का सामना करती है। वे अपने जीवन का अर्थ, अपने विकल्प और अपने उद्देश्य को लेकर प्रश्न उठाती है- "मैं कौन हूँ?"। इस प्रश्न के माध्यम से लेखिका ने यह दर्शाया हैं कि, समाज द्वारा स्त्री पर आरोपित भूमिकाएँ उसके अस्तित्व को सीमित करती है और उसे अपने आत्मबोध की खोज में संघर्ष करना पड़ता है। तालाबंदी में यह मानसिक द्वंद्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहाँ नायिका अपने अधिकार और सामाजिक दमन के बीच उलझती रहती है।

प्रभा खेतान के स्त्री पात्रों में आत्मनिर्णय की स्वायत्तता की चेतना प्रमुख रूप से प्रकट होती है। वे जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने की कोशिश करती हैं- चाहे वह विवाह, प्रेम संबंध, करियर या व्यक्तिगत जीवन से जुड़े हो। यह चेतना उन्हें पारंपरिक समाज के बंधनों से ऊपर उठने में मदद करती है। छिन्नमस्ता की नायिका इस दृष्टि से आदर्श रूप में प्रस्तुत होती है। जो अपने आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए सामाजिक विरोधों का सामना करती हैं। अग्निसंभवा के पात्र भी नारी के व्यापक जीवंत अनुभव को उजागर करते हैं, जहाँ स्त्री को न केवल परिवार या समाज द्वारा अपमान और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, बल्कि उसे अपने अस्तित्व की रक्षा, आत्मसम्मान की स्थापना और सामाजिक अपेक्षाओं के विरोध में आत्मनिर्णय के लिए संघर्ष भी करना पड़ता है।

प्रभा खेतान के स्त्री विमर्श में यह दिखाया गया हैं कि, स्त्री की वास्तविक मुक्ति केवल सामाजिक दबाव से ही नहीं, बल्कि आत्मिक जागरण और आत्मनिर्णय से संभव है- जो उनके पात्रों के द्वंद्व एवं चुनौतियों का मूल आधार बनता है। कुल मिलाकर प्रभा खेतान के उपन्यास में स्त्री पात्र अपनी पहचान की खोज, आत्मसम्मान और स्वाभिमान, अस्तित्वगत प्रश्न, आत्मनिर्णय और स्वायत्तता तथा समाज द्वारा आरोपित भूमिकाओं का प्रतिरोध- इन सब आयामों से गुज़रती है।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में देह और यौनिकता का विमर्श

समकालीन हिन्दी उपन्यास में प्रभा खेतान का योगदान विशेष रूप से स्त्री जीवन की यथार्थवादी और निर्भीक प्रस्तुति के लिए जाना जाता है। उपन्यासों में स्त्री देह, यौनिकता और प्रेम संबंधों के द्वंद्व को सीधे और साहसिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। प्रभा खेतान ने स्त्री देह को केवल यौन वस्तु या सामाजिक नियंत्रण की वस्तु के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सत्ता, स्वतंत्रता और आत्मा-अधिकार के दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। पारंपरिक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री देह को अक्सर नियंत्रण और प्रतिबंध के माध्यम के रूप में देखा जाता है। उसे विवाह, परिवार और समाज के नियमों के अधीन

रखकर उसके निर्णय और इच्छाओं को दबाया जाता है। छिन्नमस्ता में नायिका की देह और उसकी यौनिकता समाज द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों और उपेक्षाओं के बीच लगातार संघर्ष करती है। इसका उद्देश्य यह दर्शाता हैं कि, समाज स्त्री की देह को नियंत्रण के उपकरण के रूप में कैसे प्रयोग करता है और उसकी स्वतंत्रता को कैसे सीमित करता है। "आज भी स्त्री को इस्तेमाल करने की वस्तु समझा जाता है। लेकिन छिन्नमस्ता उपन्यास की प्रिया इन सबसे हटकर अपना भाग्य स्वयं निर्मित करने की कोशिश करती है।"[5]

प्रभा खेतान ने अपनी उपन्यासों में स्त्री की यौन स्वतंत्रता और उसके दमन को निर्भीक रूप से उठाया। उनके पात्र अपने प्रेम और यौन इच्छाओं में स्वतंत्रता चाहते हैं, परंतु सामाजिक और पारिवारिक दबावों के कारण उन्हें निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। पीली आंधी की नायिका प्रेम और यौनिकता में अपनी इच्छाओं के अनुसार निर्णय लेने की कोशिश करती है, परंतु समाज उसे अस्वीकार करता है। यह विरोध और दमन स्त्री पात्र की आंतरिक पीड़ा और मानसिक द्वंद्व को और तीव्र बनाता है। उनके उपन्यासों में प्रेम-संबंधों में असमानता भी प्रमुख विषय है। स्त्री प्रेम में समान स्वतंत्रता और अधिकार चाहती है, परंतु समाज और पुरुष प्रभुत्व उसे सीमित करता है। छिन्नमस्ता और तालाबंदी में यह असमानता स्पष्ट है- जहाँ पुरुष अपेक्षाओं और सामाजिक नियमों के अनुसार कार्य कर सकता है, वही स्त्री को अपनी इच्छाओं और प्रेम संबंधों के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ता है। स्त्री की सामाजिक व्याख्या, यौन स्वतंत्रता और दमन, प्रेम-संबंधों में असमानता, देह बनाम आत्मा का द्वंद और सत्ता-संबंधों की पड़ताल- ये सभी तत्व प्रभा खेतान के सभी पात्रों को संवेदनशील और सशक्त बनाते हैं।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में अस्तित्ववादी चेतना

प्रभा खेतान की रचनाएँ केवल स्त्री विमर्श तक सीमित नहीं है, उनके अस्तित्ववादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव भी देखा जा सकता है। उनके स्त्री पात्र केवल सामाजिक और पारिवारिक दबावों से संघर्ष नहीं करते, बल्कि अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता और जीवन के अर्थ पर भी गहन चिंतन करते हैं। उनके लेखन में यह दर्शन स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं कि, मनुष्य अपने जीवन के अर्थ और निर्णय स्वयं बनाता है और उनके परिणामों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। उन्होंने स्त्री पात्रों के माध्यम से आधुनिक स्त्री के अकेलापन, संघर्ष और आत्म-निर्णय की चेतना को साहित्यिक रूप दिया है। यह अकेलापन सामाजिक, भावनात्मक और अस्तित्वगत स्तर पर दिखाई देता है। पीली आंधी की नायिका अपने परिवार और प्रेम संबंधों के बीच असहज महसूस करती है और अपनी पहचान को खोजने के लिए आंतरिक संघर्ष से गुज़रती है। प्रभा खेतान के स्त्री पात्र स्वतंत्रता और सामाजिक बंधनों के बीच संतुलन बनाने के लिए संघर्ष में रहते हैं। छिन्नमस्ता में नायिका अपनी यौनिकता और प्रेम संबंधों में स्वतंत्रता चाहती है, लेकिन समाज और परिवार उसे सीमित करते हैं। अस्तित्ववादी दर्शन में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के निर्णय के लिए उत्तरदायी होता है। प्रभा खेतान के स्त्री पात्र इसी दर्शन को अपनाते हैं। वे अपने जीवन, प्रेम, विवाह और करियर संबंधी चुनाव स्वयं करती है और उनके परिणामों का सामना स्वयं करती हैं। तालाबंदी की नायिका अपने सामाजिक दमन और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच चुनाव करती है और इसे अपने आत्मनिर्णय की प्रक्रिया के रूप में अनुभव करती है। इस प्रकार उनका लेखन यह स्पष्ट करता हैं कि, स्वतंत्रता के साथ उत्तरदायित्व भी जुड़ा होता है। प्रभा खेतान के लेखन न केवल स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह अस्तित्ववाद के गहन और सचिव दृष्टिकोण को भी हिन्दी साहित्य में स्थापित करता है।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री पात्रों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की अस्मिता, संघर्ष, सामाजिक सीमाएँ और मानसिक द्वंद्व प्रमुख विषय हैं। छिन्नमस्ता, तालाबंदी, आओ पे पे घर चले और पीली आँधी जैसे उपन्यासों में स्त्री पात्र विभिन्न सामाजिक और व्यक्तिगत परिस्थितियों से गुज़रते हुए अपनी पहचान और स्वतंत्रता की खोज करती है। तुलनात्मक दृष्टि से स्त्री पात्रों का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है :

1. अस्मिता और स्वतंत्रता

छिन्नमस्ता की नायिका समाज की पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं और नैतिक मानंदण्डों को चुनौती देती है। छिन्नमस्ता में स्त्री की अस्मिता और स्वतंत्रता का संघर्ष बाहरी सामाजिक दबावों और निजी इच्छाओं के बीच है, जबकि तालाबंदी में यह संघर्ष सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होती है। पीली आंधी में यह संघर्ष अधिक मानसिक और भावनात्मक है। आओ पे पे घर चले उपन्यास दिखाता हैं कि, आधुनिक स्त्री को अपने अधिकार, पहचान और स्वतंत्रता के लिए किस तरह बाहरी मान्यताओं का सामना करना पड़ता है।

2. सामाजिक दबाव बनाम व्यक्तिगत चुनाव

छिन्नमस्ता में दबाव मुख्यतः पारिवारिक और पितृसत्तात्मक सीमाओं से हैं। तालाबंदी में सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव के साथ-साथ राजनीतिक दबाव भी है। पीली आंधी में यह दबाव मानसिक और आंतरिक द्वंद्व के रूप में प्रकट होता है। आओ पे पे घर चले में स्त्री पात्र केवल व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि समाज और परिवार के दबावों से गूँजती है। कुछ पात्र सामाजिक प्रत्याशाओं और पारंपरिक भूमिकाओं के बीच फंसी पाई जाती हैं- विवाह को बचाने की कोशिश, समाज की नज़रों में सम्मान बनाए रखने का दबाव तथा व्यक्तिगत इच्छाओं और अपेक्षाओं के बीच असंतुलन।

3. प्रेम और संबंधों में द्वंद्व

तीनों उपन्यासों में स्त्री पात्र प्रेम और संबंधों में असमानता का सामना करती हैं, पर छिन्नमस्ता में यौनिक स्वतंत्रता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, तालाबंदी में सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव अधिक है और पीली आंधी में अकेलापन और मानसिक संघर्ष प्रमुख है।

4. आत्मबोध और चेतना

सभी उपन्यासों में स्त्री पात्रों में आत्मबोध और चेतना स्पष्ट है, पर छिन्नमस्ता में यह सामाजिक स्वायत्तता की चेतना के रूप में, तालाबंदी में सामाजिक और राजनीतिक चेतना के रूप में और पीली आंधी में मानसिक और अस्तित्वगत चेतना के रूप में प्रकट होती है।

समकालीन स्त्री विमर्श में प्रभा खेतान की प्रासंगिकता

समकालीन हिन्दी साहित्य में प्रभा खेतान का स्थान स्त्री विमर्श के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके उपन्यास और कथ्य न केवल स्त्री चेतना और अस्मिता के सवालों को सामने लाते हैं, बल्कि उन्हें सामाजिक, राजनीतिक और अस्तित्ववादी संदर्भ में भी विश्लेषित करते हैं। प्रभा खेतान की रचनाएँ आज के सामाजिक संदर्भ में इसीलिए प्रासंगिक है क्योंकि वे स्त्री के अनुभव और संघर्ष को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती है। आज की महिलाएँ शिक्षा, रोज़गार और राजनीतिक भागीदारी में अधिक सक्रिय है, फिर भी मानसिक और सामाजिक दबाव उनके निर्णयों और स्वतंत्रता पर प्रभाव डालते हैं।

प्रभा खेतान के स्त्री पात्र सशक्त, चेतनशील और संघर्षशील है। उनके संघर्ष और आत्मबोध ने आधुनिक स्त्री चेतना को नई दिशा दी है। उनके पात्र अपने व्यक्तिगत और सामाजिक निर्णय स्वयं लेने की क्षमता रखते हैं। उन्होंने यह दिखाया कि स्त्री केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज, परिवार और प्रेम संबंधों में निर्णय लेने में सक्षम है। इसके माध्यम से प्रभा खेतान ने आधुनिक स्त्री में आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और आलोचनात्मक दृष्टि को जन्म दिया है। प्रभा खेतान का योगदान समकालीन स्त्री लेखन में बहुआयामी है। उन्होंने स्त्री की अस्मिता और आत्म निर्णय, सामाजिक और पारिवारिक दबावों के बीच स्त्री के संघर्ष, स्त्री की यौनिकता और मानसिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत और राजनीतिक चेतना जैसे आयामों को साहित्यिक रूप से उजागर किया। वे स्त्री शोषण, असमानता और सामाजिक दबाव के खिलाफ चेतना पैदा करती हैं, और इसी दृष्टि से उनके उपन्यास नारीवादी विचारधारा से गहराई से जुड़ते हैं।

निष्कर्ष

प्रभा खेतान का साहित्य समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श और आधुनिक चेतना के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है। उनके उपन्यास केवल कथा-आधारित साहित्य नहीं है, बल्कि वे स्त्री अस्मिता, आत्मबोध, संघर्ष और स्वतंत्रता के गहरे विमर्श प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में अस्मिता और आत्मनिर्णय का चित्रण मिलते हैं। उनके स्त्री पात्र अपने जीवन, प्रेम, विवाह और करियर से जुड़े निर्णय स्वयं लेती है। उन्होंने स्त्री जीवन के अकेलापन, दबाव और मानसिक द्वंद्व को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। प्रभा खेतान ने स्त्री यौनिकता और उसके सामाजिक नियमन को साहित्यिक विमर्श का महत्वपूर्ण आयाम बनाया। उनका लेखन आधुनिक हिन्दी उपन्यास को स्त्री विमर्श, अस्तित्ववादी चिंतन और नारीवादी दृष्टिकोण से समृद्ध करता है। छिन्नमस्ता, तालाबंदी और पीली आंधी जैसे उपन्यास हिन्दी साहित्य में स्त्री पात्रों की जटिलता और संघर्ष की नई परंपरा स्थापित करते हैं। समग्र रूप से देखा जाए तो प्रभा खेतान का साहित्य समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री विमर्श, आधुनिक चेतना और अस्तित्ववादी चिंतन का अनमोल योगदान है। उनकी उपलब्धियाँ स्त्री अस्मिता, आत्मनिर्णय, सामाजिक और मानसिक संघर्ष और यौनिकता एवं सत्ता संबंधों के गहन विश्लेषण में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। हिन्दी उपन्यास परंपरा में उनका स्थान स्थायी है और भविष्य के अध्ययन और शोध के लिए उनके उपन्यास असीम संभावनाएँ प्रदान करते हैं। प्रभा खेतान का लेखन न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक और वैचारिक दृष्टि से भी आज के समय में प्रासंगिक और प्रेरक हैं।

संदर्भ सूची

1. कल्पना वर्मा(सं), स्त्री विमर्श विविध पहलू, लोक भारती प्रकाशन-2009, पृ.सं. 190
2. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन-2007, पृ.सं. 29
3. मधु संधु, महिला उपन्यासकार, पृ.सं. 49
4. डॉ. कृष्णा जाखड़, प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, राजस्थानी ग्रंथागार-2012, पृ.सं. 109
5. डॉ. गजाला वसीम अब्दुल बशीर, डॉ. वसंत गणपट माली(सं) समकालीन महिला लेखन एवं नारी चेतन, विकास प्रकाशन-2015, पृ.सं. 177

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

बीसवीं शताब्दी में गुरुधामों का अभिलेखन : भाई धन्ना सिंह चहल (पटियालवी) की साइकिल यात्राओं का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. रणजीत सिंह 'अर्श'
सदनिका क्रमांक 5, अवन्तिका रेजीडेंसी,
58/59, सोमवार पेठ, नागेश्वर मंदिर रोड,
पुणे-411011 (महाराष्ट्र)
मो. 9096222223, 9371010244
ईमेल : arshpune18@gmail.com

सारांश (Abstract)

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब भारत अखंड भू-राजनीतिक स्वरूप में विद्यमान था और संचार-सुविधाएं अत्यंत सीमित थीं, उस समय भाई धन्ना सिंह चहल (पटियालवी) ने 11 मार्च 1930 से 26 जून 1935 तक लगभग पाँच वर्षों की अवधि में साइकिल द्वारा लगभग 20,000 माइल्स की यात्रा कर, लगभग 1600 गुरुधामों के दर्शन किए। इस यात्रा के दौरान उन्होंने न केवल ऐतिहासिक गुरुधामों का प्रत्यक्ष निरीक्षण किया, अपितु उनके इतिहास, प्रबंधन, स्वरूपों तथा भौगोलिक स्थितियों का विस्तृत दस्तावेजीकरण भी किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में भाई धन्ना सिंह चहल के जीवन, उनकी ऐतिहासिक साइकिल यात्राओं, उनके द्वारा लिखित डायरियों तथा सिख इतिहास में उनके योगदान का सम्यक् विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : गुरु पंथ खालसा, साइकिल यात्रा, गुरुधाम, सिख इतिहास, दस्तावेजीकरण, पंथ दर्दी साहित्य

1. प्रस्तावना

गुरुवाणी का उद्घोष

चरन चलउ मारगि गोबिंद॥
मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद॥
कर हरि करम स्रवनि हरि कथा॥
हरि दरगह नानक ऊजल मथा॥

(अंग 281)

यह केवल आध्यात्मिक उपदेश नहीं, अपितु जीवन-मार्ग का घोष है। इसी भावभूमि पर 'गुरु पंथ खालसा' के महान

निष्काम सेवादार भाई धन्ना सिंह चहल (पटियालवी) का जीवन एक मूर्त उदाहरण के रूप में सामने आता है। उन्होंने गोबिंद के मार्ग पर चलने की व्याख्या को केवल वाणी तक सीमित नहीं रखा अपितु उसे कर्म-योग में परिणत किया।

2. जन्म, पृष्ठभूमि और व्यक्तित्व

भाई धन्ना सिंह चहल का जन्म सन् 1905 ईस्वी में ग्राम चांगली, तहसील धुरी, जिला संगरूर (सूबा पंजाब) में हुआ। उनके पिता का नाम भाई सुंदर सिंह जी था। वह महाराजा पटियाला के यहाँ कार-ड्राइवर एवं दक्ष मैकेनिक के रूप में कार्यरत थे। वह उत्कृष्ट हॉकी खिलाड़ी भी थे।

नौकरी के दौरान उनका परिचय गुरु सिख भाई जीवन सिंह जी से हुआ, जिनकी संगति में रहकर वह सिक्खी की मर्यादाओं में परिपक्व हुए। भाई गुरबक्श सिंह जी (हेड मैकेनिक, पटियाला रियासत) से भी उनका पारिवारिक स्नेह-संबंध था। यात्राओं के दौरान वह पत्राचार द्वारा निरंतर संपर्क बनाए रखते थे।

3. ऐतिहासिक साइकिल यात्राएँ (19301935)

3.1 यात्रा का विस्तार

11 मार्च सन 1930 ई. से 26 जून सन 1935 ई. तक उन्होंने लगभग पाँच वर्षों में 20,000 माइल्स की साइकिल यात्रा कर लगभग 1600 गुरु धामों के दर्शन किए।

यह यात्रा कश्मीर से लेकर अबचल नगर श्री हजूर साहिब नांदेड़ (महाराष्ट्र) तक, असम से लेकर पेशावर पार कर जमरोद (अफगानिस्तान) तक विस्तृत थी। उस समय भारत अखंड था। सूबा पंजाब से बाहर 3 फीट लंबी श्री साहिब (कृपाण) ले जाने के लिए लाइसेंस आवश्यक था।

3.2 यात्रा की परिस्थितियाँ

उस समय न तो सड़कों की समुचित व्यवस्था थी, न पुल, न धर्मशालाएँ, न होटल। कई बार उन्हें साइकिल को कंधे पर उठाकर नदी-नालों को पार करना पड़ता था। प्लेग जैसी महामारी का भी प्रकोप था। इन परिस्थितियों में यह यात्राएँ "लोहे के चने चबाने" के समान थी।

वह अपनी साइकिल को स्नेहपूर्वक "अरबी पातशाह" (अरबी घोड़ा) कहते थे। यात्रा के दौरान भाई साहिब, साइकिल पर निशान साहिब, बैटरी टॉर्च, तख्ती, कृपाण, लोहे का संदूक (भोजन, शस्त्र, डायरी सहित) रखते थे।

4. दस्तावेजीकरण और ऐतिहासिक योगदान

4.1 गुरुधामों का अभिलेखन

उस समय लगभग 500 गुरुधामों की जानकारी लिखित रूप में उपलब्ध थी। उनकी पुस्तक प्रकाशित होने पर लगभग 1100 नए गुरुधामों की ऐतिहासिक जानकारी सामने आई। यह सिख इतिहास के अंधकारमय क्षेत्र में प्रकाश-रेखा सिद्ध हुआ।

भाई धन्ना सिंह जी प्रत्येक स्थान की तस्वीर लेते थे और फोटो के पीछे स्थान का नाम, शहर का नाम, तथा अंग्रेजी और गुरुमुखी अंकों में तिथि अंकित करते थे।

4.2 कैमरा और सहयोग

- 147 रुपये का कोडक कैमरा – सरदार गिरफ्तार सिंह सोढ़ी जी द्वारा प्रदत्त
- 23 अप्रैल सन 1932 ई. – सरदार हजूरा सिंह ढिल्लों द्वारा उत्तम कैमरा
- भाई जुगराज सिंह (दर्जी) – यात्रोपयोगी वस्त्र

5. डायरियाँ : एक ऐतिहासिक धरोहर

भाई धन्ना सिंह जी ने कुल 8 डायरियाँ लिखीं, जिनमें 3259 पृष्ठ हैं। अंतिम यात्रा (1 नवम्बर सन 1934 ई. से

2 मार्च सन 1935 ई. तक) की डायरी विलुप्त हो गई।

यह डायरियाँ न केवल संस्मरण हैं अपितु सिख इतिहास की सभ्यताओं, सामाजिक सरोकारों और आध्यात्मिक अनुभूतियों का जीवंत दस्तावेज हैं। यह स्मृति नहीं अपितु मनोवेगों का घनीभूत ऐतिहासिक उद्‌गार है।

6. पहाड़ी दौरे की खोज

उन्होंने 'श्री गुरु गोबिंद सिंह साहिब जी' के पहाड़ी दौरे का मार्ग खोजते हुए पैदल रिवालसर से श्री आनंदपुर साहिब जी तक यात्रा की। यह वोही मार्ग था जिस पर गुरु पातशाह ने स्वयं गमन किया था।

7. अधूरी आकांक्षाएँ और दुर्घटना

राजस्थान, सिंध, कराची, क्वेटा, बलूचिस्तान की यात्रा भाई धन्ना सिंह जी नहीं कर सके। उनकी विदेशों में जाकर, जैसे कि- अफगानिस्तान, ईरान, बगदाद, मक्का शरीफ, सऊदी अरब, तिब्बत, चीन इत्यादि स्थानों पर जाकर गुरुधाम खोजने की इच्छा भी अधूरी रही।

5 मार्च सन 1935 ई. को 'Hindustan Times' में प्रकाशित समाचार के अनुसार, सहयोगी हीरा सिंह द्वारा राइफल संभालते समय दुर्घटनावश चली गोली उनके लिए प्राणघातक सिद्ध हुई।

8. प्रकाशन और पुनर्प्रकाशन

75 वर्षों तक भाई धन्ना सिंह जी (पटयालवी) जी की डायरियाँ भाई गुरबख्श सिंह जी के परिवार में सुरक्षित रहीं। तत्पश्चात पंजाबी भाषा विभाग के पूर्व संचालक सरदार चेतन सिंह जी ने 'सथ लांबड़ा' संस्था के सहयोग से 'गुर तिरथ साइकिल यात्रा' शीर्षक से ग्रंथ प्रकाशित किया।

9. विश्लेषण

भाई धन्ना सिंह चहल की यात्राएँ मात्र धार्मिक भ्रमण नहीं थीं। वह तो

- सिख इतिहास के पुनराविष्कार का उपक्रम
- गुरुधामों की भौगोलिक पुनर्स्थापना
- पंथीय चेतना का पुनर्जागरण
- दस्तावेजी इतिहास-लेखन की मिसाल थी; 30 वर्ष की आयु में पाँच वर्षों तक हिमालय जैसी कठिन साधना कर उन्होंने इतिहास को शब्दांकित किया।

10. निष्कर्ष

भाई धन्ना सिंह चहल (पटियालवी) का जीवन सिख इतिहास में एक अद्वितीय अध्याय है। उन्होंने बिखरे हुए गुरुधामों को जोड़कर एक स्वर्णिम ऐतिहासिक श्रृंखला निर्मित की।

उनकी साइकिल यात्रा एक आध्यात्मिक तपस्या, एक ऐतिहासिक शोध और एक साहित्यिक पुनर्जागरण का संगम थी।

'गुरु पंथ खालसा' को अर्पित उनकी निष्काम सेवाएँ सदा वंदनीय रहेंगी।

संदर्भ (References)

1. 'गुर तिरथ साइकिल यात्रा', संपादक : सरदार चेतन सिंह जी (गुरुमुखी)

2. ‘हिंदुस्तान टाइम्स’, 5 मार्च 1935 (समाचार संदर्भ)
3. वारां भाई गुरूदास जी
4. श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी (अंग 281)

आभार

इस शोध के लेखन हेतु इतिहासकार डॉक्टर भगवान सिंह ‘खोजी’ (टीम खोज–विचार) का विशेष मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। गुरुवाणी पदों के विश्लेषण हेतु सरदार गुरदयाल सिंह जी (प्रमुख सेवादार, खोज–विचार टीम) का सहयोग प्राप्त हुआ।

-सादर आभार सहित

-लेखक / ब्लॉगर / व्याख्याता
डॉ. रणजीत सिंह ‘अर्श’
अवंतिका रेसीडेन्सी, सोमवार पेठ, पुणे – 411011
ईमेल : arshpune18@gmail.com

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

खड़ी बोली रामकाव्य में आधुनिक जीवन मूल्य : एक पुनर्विवेचन

डॉ. अंकिता पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर,
नवयुग कन्या महाविद्यालय राजेन्द्र नगर, लखनऊ

शोध सार- खड़ी बोली रामकाव्य हिंदी साहित्य की आधुनिक चेतना का सशक्त प्रतिनिधि है, जिसमें परंपरा और नव्यता का समन्वित रूप दृष्टिगत होता है। रामकथा, जो भारतीय सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला रही है, आधुनिक युग में खड़ी बोली के कवियों द्वारा नवीन जीवन-मूल्यों के आलोक में पुनर्व्याख्यायित की गई है। इस काव्यधारा में राम केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक न होकर मानवतावादी आदर्श, नैतिकता, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, लोकतांत्रिक चेतना, नारी-गरिमा, सामाजिक समता तथा राष्ट्रभावना के प्रतिनिधि रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' आदि कवियों ने रामकथा को आधुनिक दृष्टि से पुनर्सृजित करते हुए उसे लोकमंगल, सामाजिक न्याय और मानवीय मूल्यों का माध्यम बनाया है। इन रचनाओं में आदर्शवाद और यथार्थवाद का संतुलित समन्वय है, जिसके माध्यम से परंपरागत कथा आधुनिक जीवन-संघर्षों से संबद्ध हो उठती है। अतः खड़ी बोली रामकाव्य न केवल सांस्कृतिक पुनर्जागरण का द्योतक है, बल्कि आधुनिक जीवन-मूल्यों के पुनर्स्थापन और पुनर्विवेचन का सशक्त साहित्यिक प्रयास भी है।इस प्रकार यह काव्यधारा भारतीय समाज को नैतिक, सामाजिक एवं मानवीय चेतना से संपन्न करते हुए समकालीन जीवन के लिए दिशा-निर्देशक सिद्ध होती है।

कुंजी शब्द - खड़ी बोली रामकाव्य, आधुनिक जीवन-मूल्य, त्याग, मानवतावाद, नैतिकता, सत्यनिष्ठा, सामाजिक न्याय, नारी-गरिमा, राष्ट्रचेतना, लोकमंगल।

मूल आलेख - खड़ी बोली के रामकाव्य के प्रणेताओं ने अपनी कृतियों में समसामयिक जीवन-मूल्यों को अत्यंत कुशलता से पिरोया है, जो उनके युगबोध और सजग चेतना का जीवंत साक्ष्य है। यद्यपि इन काव्यों का मूलाधार पौराणिक है, तथापि ये रचनाएँ उन मध्यकालीन जीवन-मूल्यों की वाहिकाएँ हैं, जिनके प्रति समाज में गौरव और आलोचना का द्वंद्वात्मक भाव सदैव विद्यमान रहा है। इन साहित्यकारों ने रामकथा के पारंपरिक प्रसंगों एवं पात्रों को एक नूतन परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है। उन्होंने युगीन विसंगतियों और समस्याओं को काव्य का विषय बनाकर उनके तार्किक समाधान खोजने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

भारतेंदु युग के आविर्भाव से लेकर वर्तमान समय तक, भारतीय राष्ट्र और समाज ने अत्यंत जटिल एवं विविध परिस्थितियों के घात-प्रतिघात सहे हैं। यह वह कालखंड था जब पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के लिए स्वतंत्रता का महायज्ञ प्रारंभ हुआ, जिसमें संपूर्ण राष्ट्र ने अपनी आहुति दी; किंतु विडंबना यह रही कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात उस अमूल्य स्वतंत्रता का यथेष्ट सदुपयोग होने के स्थान पर उसका व्यापक दुरुपयोग भी दृष्टिगोचर हुआ। इस उथल-पुथल ने सामाजिक जीवन की स्थिरता को खंडित कर दिया, जिससे पारंपरिक और सनातन मूल्यों का क्रमिक पतन होने लगा और उनके स्थान

पर नवीन जीवन-मूल्यों का उदय हुआ।

इस वैचारिक और सामाजिक रूपांतरण में औद्योगिक प्रगति एवं वैज्ञानिक शोधों ने उत्प्रेरक की भूमिका निभाई, जिससे मानवीय दृष्टिकोण में भौतिकता और तार्किकता का समावेश हुआ। इसी संक्रमण काल में महात्मा गांधी का पदार्पण एक दैवीय दीप्ति के समान हुआ, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक निष्ठा और नैतिक राजनीति के माध्यम से भारतीय जनमानस को उद्वेलित किया। उन्होंने साहित्य, संस्कृति और राजनीति के अंतर्संबंधों को एक नवीन धरातल प्रदान किया, जिससे तत्कालीन रचनाकारों को अपनी लेखनी के लिए नई ऊर्जा और दिशा प्राप्त हुई।

जिस कालखंड में खड़ी बोली के 'रामकाव्य' का सृजन हो रहा था, वह युग महात्मा गांधी के विराट व्यक्तित्व और उनके कालजयी विचारों से पूर्णतः आलोकित था। यद्यपि गांधी जी ने स्वयं किसी नवीन दर्शन या 'वाद' के प्रवर्तन का दावा नहीं किया, तथापि उनके द्वारा अंगीकृत मानवीय आदर्शों और नैतिक मूल्यों की व्यापकता ने कालांतर में 'गांधीवाद' का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

खड़ी बोली के तत्कालीन कवि युगीन परिस्थितियों से अछूते नहीं रह सके। फलस्वरूप, उनके काव्यों में गांधीवादी जीवन-दर्शन की गहरी छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस दर्शन के प्रमुख स्तंभ, जिन्होंने साहित्यकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया, वे इस प्रकार हैंरू सत्य, अहिंसा, समानता, विश्व बंधुत्व।

शास्त्रोक्त है—'नहि सत्यात् परो धर्मः' अर्थात सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है। सत्य का मार्ग निष्कंटक नहीं होता, किंतु घोर प्रतिकूलताओं के उपरांत भी अंततः विजय सत्य की ही सुनिश्चित होती है। खड़ी बोली के रामकाव्यों पर गांधीवादी सत्य-दर्शन का प्रभाव अमिट है, जिसका दिग्दर्शन विभिन्न कवियों की कृतियों में होता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में राम संसार के मध्य रहकर जीवन के वास्तविक सत्य की उपलब्धि करते हैं और अपने 'नरत्व' को 'नारायणत्व' में परिणत कर देते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'उर्मिला' काव्य में राम विभीषण के समक्ष सत्य की महिमा का मंडन करते हुए उसे ही संसार का एकमात्र पूज्य और आदरणीय धर्म घोषित करते हैं। राम की यह दृढ़ आकांक्षा है कि—

"असद्विचार पराजित कुंठित, भूलुंठित उन्मीलित हों,
सत्यमेव विजयी हो राजन, प्रेम विटप फल फूलित हों।"[1]

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'कैकेयी' काव्य में सत्य को जन-सेवा के पावन संकल्प के रूप में प्रतिष्ठित किया है। 'हरिऔध' ने 'वैदेही वनवास' में सत्य और न्याय के लिए अडिग रहने वाले व्यक्तित्व को ही वंदनीय माना है—

"सत्य, न्याय के लिए जिन्होंने अटल रह,
प्राणदान तक किये सर्व संकट सहे।"[2]

खड़ी बोली में रचित रामकाव्य की आधारशिला गाँधीवादी जीवन-दर्शन पर टिकी है। इन काव्यों में 'अहिंसा' की भावना मात्र एक शब्द नहीं, अपितु एक ओजस्वी जीवन-शक्ति के रूप में विद्यमान है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की सुप्रसिद्ध कृति 'ऊर्मिला' इसका जीवंत प्रमाण है, जो महात्मा गाँधी के अहिंसक आदर्शों से निरंतर ऊर्जा और प्रेरणा प्राप्त करती है।डॉ बलदेव मिश्र जी ने अपने काव्य 'रामराज्य' में मानवीय प्रगति के लिए चार अनिवार्य सूत्रों यथा-अहिंसा, सत्य अस्तेय, शौच का प्रतिपादन किया। उनका दृढ़ विश्वास है कि—

"अहिंसा के प्रतिकार के, तत्व समझें सभी।
ऐसे शक्त मनुष्यों का राष्ट्र होगा सदा सुखी।।''''

'साकेत' की सांस्कृतिक चेतना पर भी गाँधीजी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यहाँ युद्ध का उत्साह दमन या प्रतिशोध की भावना से प्रेरित न होकर, आत्म-समर्पण और त्याग की उदात्त भावना से ओत-प्रोत है। यद्यपि गुप्त जी अहिंसा के प्रबल पक्षधर हैं, तथापि वे इसकी 'सर्वथा अमान्यता' से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार, शांति की रक्षा का उत्तरदायित्व भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसे आवश्यकता पड़ने पर धनुष की प्रत्यंचा (शौर्य) के माध्यम से भी निभाया जाना चाहिए—

"हमें शांति का भार है जो मिला,
इसी चाप की कोटियों से झिला।।"[4]

'साकेत' का सृजन काल गांधी जी के प्रभामंडल से पूर्णतः अनुप्राणित था। अतः काव्य में आर्थिक समता और वर्गविहीन समाज के गांधीवादी आदर्श स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। कवि ने समाज के प्रत्येक वर्ग को समान गरिमा प्रदान की है। एकादश सर्ग में वर्णित राज्य व्यवस्था में 'गृह-कलह' का अभाव और प्रजा की संतुष्टि एक आदर्श रामराज्य की परिकल्पना को साकार करती है। 'साकेत' का मूल दर्शन है–

''हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि- बलिदानी।''[5]

श्री रघुबीर शरण 'मित्र' भी सामाजिक समता के प्रबल उद्घोषक और अनन्य समर्थक हैं। कवि एक ऐसे समाज का स्वप्न देखते हैं जहाँ–

'वर्ग मिटे, सत्ता हट जाये, भेद भाव मिट जायें।
पटें विषमता के सब गड्ढे, सब मिलजुल कर गायें।''[6]

खड़ी बोली के रामकाव्यकारों ने आधुनिक संघर्षो के साथ-साथ उन प्राचीन जीवन-मूल्यों को पुनर्जीवित किया है जिन्हें समाज अक्सर उपेक्षित कर देता है। ये पुराने मूल्य आज भी सृजनात्मकता और सामाजिक स्थिरता के लिए अनिवार्य और प्रासंगिक हैं।हिन्दू समाज में 'तप' को आत्म-विशुद्धि और असंभव लक्ष्यों की प्राप्ति का सर्वप्रमुख साधन स्वीकार किया गया है।खड़ी बोली के रामकाव्य में तप को केवल वैयक्तिक साधना नहीं, अपितु लोक-कल्याण हेतु अनिवार्य साधना माना गया है।नवीन' जी ने उर्मिला महाकाव्य में तप को समस्त ब्रह्मांड की गतिशीलता का मूल आधार बताते हुए इसे सृष्टि के अस्तित्व के लिए अनिवार्य माना है–

"यह ब्रम्हांड तपस्या के बल, गतिमय स्रतिमय चलित हुआ,
क्षण क्षण आठों याम न हो यदि तप तो यह जग कहां रहे।।"[7]

नवीन जी ने उर्मिला' महाकाव्य में उर्मिला के माध्यम से विश्वकल्याणार्थ आत्मसुख-त्याग की महनीय भावना का सशक्त निरूपण किया है।

हरिऔध जी ने त्यागयुक्त लोकसेवा के अभाव में लोकनायकत्व को अपूर्ण और निरर्थक कहा है–

''त्याग सहित जिसमें लोकाराधन नहीं
वह लोकाधिक कहलाता है किसलिए।''[8]

मानव जीवन का परम लक्ष्य केवल देहधारण करना नहीं, अपितु मानवता की उच्चतर साधना की ओर अग्रसर होना है। भारतीय चिंतन परम्परा में जीवन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को उसके मूल मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। ये पुरुषार्थ जीवन के उद्देश्य और साधना-पथ के द्योतक हैं। धर्म उन साधनों के संयम और सदुपयोग का नियामक तत्त्व है। अर्थ और काम, जीवन-यात्रा के आवश्यक उपकरण माने गए हैं। अंततः मोक्ष मानव की आध्यात्मिक परिपूर्णता और परम साध्य का प्रतीक है।संशय की एक रात' में लक्ष्मण के ओजस्वी और साहसी व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। लक्ष्मण भगवान राम के माथे पर चिंता की लकीरें देखते हैं, तो वे विचलित नहीं होते, बल्कि अपने पौरुष (शक्ति) पर भरोसा जताते हैं–

"आज्ञा करें राम,
देखें फिर पौरुष इस बंधु का।
दूसरी बार होगा
सागर का मंथन अब।''[9]

खड़ी बोली के राम-काव्य में युग-चेतना का समावेश प्रमुखता से परिलक्षित होता है, जिसमें त्याग एवं आत्मोसर्ग (बलिदान) की उदात्त भावना को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। विभिन्न कवियों ने अपनी कृतियों के माध्यम से लोक-कल्याण हेतु

आत्म-बलिदान को अपरिहार्य माना है। मिश्र जी ने 'साकेत-संत' में समकालीन युगीन चेतना को आत्मसात करते हुए मानवता की रक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग को जीवन का चरम सत्य माना है-

"मनुज जीवन का यह भी मर्म, आर्द्र की गहराई ले जान।
मनुजता की रक्षा हेतु, निछावर कर दे अपने प्राण।"[10]

निष्कर्ष

खड़ी बोली का रामकाव्य आधुनिक हिंदी साहित्य की वह देदीप्यमान उपलब्धि है, जिसमें पौराणिक आख्यान और समसामयिक युगबोध का मणिकांचन संयोग परिलक्षित होता है। इन कृतियों में रामकथा के पारंपरिक स्वरूप को गांधीवादी जीवन-दर्शन—सत्य, अहिंसा और लोक-कल्याण के आलोक में नव-व्याख्यायित किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त, 'हरिऔध' और नवीन जैसे मनीषी कवियों ने राम के 'नरत्व' को मानवीय आदर्शों की उच्चतम परिधि तक पहुँचाया है, जहाँ वे केवल आराध्य न होकर सामाजिक न्याय और राष्ट्र-चेतना के संवाहक बन गए हैं। इस काव्यधारा में वर्गविहीन समाज की संकल्पना और त्यागयुक्त पौरुष को विशेष अधिष्ठान प्राप्त हुआ है। 'साकेत' से लेकर 'उर्मिला' तक, ये रचनाएँ व्यक्तिगत मोक्ष के स्थान पर 'लोकमंगल' और 'समष्टि हेतु व्यष्टि के बलिदान' को परम धर्म घोषित करती हैं। वैज्ञानिक तार्किकता और भौतिकता के संक्रमण काल में भी यह काव्य आध्यात्मिक शुचिता और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त माध्यम बना है। अतः खड़ी बोली रामकाव्य केवल अतीत का पुनर्गान नहीं, अपितु आधुनिक जीवन की विसंगतियों के निवारण हेतु एक कालजयी मार्गदर्शिका है। यह साहित्य भारतीय मनीषा की उस अक्षय ऊर्जा का प्रतीक है, जो शाश्वत मूल्यों को नवीन युग-सन्दर्भों में प्रासंगिक बनाए रखने में पूर्णतः समर्थ है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. उर्मिला, श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, षष्ठ सर्ग, पृ० 565
2. कैकेयी, केदारनाथ मिश्र प्रभात, नवम सर्ग, पृ० 144
3. रामराज्य, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ० 127
4. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ० 12
5. साकेत मैथिलीशरण गुप्त अष्टम सर्ग पृ० 3
6. भूमिजा, रघुवीरशरण मिश्र, अरुणोदय, पृ० 113
7. उर्मिला, श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, षष्ठ सर्ग, पृ० 549
8. वैदेही वनवास, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ० 64
9. संशय की एक रात , नरेश मेहता पृ० 22
10. साकेत संत, बलदेव प्रसाद मिश्र, द्वादश सर्ग, पृ० 146

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटा हुआ' में अभिव्यक्त स्त्री चेतना

शकील
शोधार्थी, हिंदी अध्ययन विभाग,
गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय
कुंढेला, वडोदरा, गुजरात, भारत - 391107
ई- मेल : shakeelshah2021@gmail.com

रामदरश मिश्र की रचनाशीलता गद्य व पद्य दोनों में समान रूप से रही हैं। इनकी पहचान एक कवि के साथ-साथ एक स्थापित कथाकार की भी रही है। इन्होंने 12 उपन्यासों की रचना की मगर उनमें से "जल टूटा हुआ" सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इसकी कथावस्तु गाँव-जवार और खेत- खलिहान की रोजमर्रा की जरूरतों और समस्याओं की कहानी बयां करती है। उपन्यास में ग्रामीण किसान जीवन, उसकी राजनैतिक चेतना, आर्थिक स्थिति, तथा सामाजिक ताने-बाने को लेखक ने बड़े यथार्थ परख तरीके दर्शाया हैं।

उपन्यास में 'जल टूटा हुआ' शीर्षक एक प्रतीक के रूप में है, जो गांव की टूटती हुई सामूहिकता को दर्शाता है। ''सतीश अनुभव करता है कि जग्गू की यह भाषा कितने साल पुरानी है, कई बार वह यह भाषा सुन चुका है। मालिक और नौकर की भाषा आज भी टूट नहीं सकी है। 'आह!' 'घाव में दरद हो रहा है बाबा?' 'हाँ, थोड़ा-थोड़ा हो रहा है भाई, ठीक हो जाएगा।' बाँध जगह-जगह से टूट रहे हैं और पानी बिखरता हुआ फैल रहा है। न यह पानी रुकने में है और न एक साथ एक धारा के रूप में बहने में... सतीश सोच रहा है-इस जवार का जीवन भी तो जल ही है, लेकिन पहले एक साथ बहता था, बाढ़ में उमड़ता था, एक साथ गर्मी में सूखता था, एक था। अब तो नए-नए बाँध बंध रहे हैं उस जल के किनारे... ये बाँध भी पोख्ता नहीं हैं, जगह-जगह से दरक जाते हैं। जहाँ से दरकते हैं थोड़ा पानी बह जाता है, थोड़ा कहीं और दरकता है तो कुछ पानी और बह जाता है दूसरी दिशा को और ये पानी कहीं मिल नहीं पाते, विपरीत या समानांतर धाराओं में बहते ही चले जाते हैं... हाँ टूट रहा है यहाँ का जल, टूट रहा है। धारा धारा से बिछुड़ रही है, लहरें लहरों से टूट रही हैं, बाँध बंध रहे हैं लेकिन पोख्ता नहीं, जो जल को संयत कर एक दिशा में प्रवाहित करें और उसमें से शक्ति उजागर करें, बाँध जगह-जगह दरक रहे हैं और जल टूट रहा है, टूट रहा है।''[1]

इसकी भाषा ग्रामीण अंचल की भाषा है, जिसमें मुख्यतः भोजपुरी की छाप दिखाई देती हैं। ''बप्पा ने उसका बियाह लगाया तो कहने लगा कि मैं बियाह नहीं करूँगा, मैं तो परेम विवाह करूँगा। अरे क्या बताऊँ तिवारी, वह तो अजब-अजब शहरी बोली बोलता है। सुत्थन कसता है, बड़ी-बड़ी जुलुफी रखता है, साहबों की तरह माँग फारता है, हैट लगाता है और कहता है कि शहरों में परेम बियाह होता है, मैं भी परेम बियाह करूँगा। बप्पा ने उसे एक दिन कुछ गाली बकी तो लड़ने को तैयार हो गया। कहने लगा मरकीनवना 'तुम गँवार कहार हो, साहब बेटे की बराबरी करते हो! गाली-वाली बकी तो ठीक नहीं होगा।' मुझे तो काठ मार गया तिवारी-देसी कउवा बिलयती बोली। बप्पा ने तो स्कूल की नौकरी करके उसे पढ़ाया

और ई तुरुक मिजाज उनसे ही साहब बनने लगा।''[2]

जगह-जगह पर लोकोक्ति, ''देसी कउवा बिलयती बोली''[3] मुहावरे ''जैसे कंता घर रहें वैसे रहें बिदेस...।''[4] और लोकगीतों के कारण भाषा में एक अलग ही आकर्षण पैदा होता है।

''हाथ गोड़ फूलि जइहें, पेटवा निकरि जइहें,
बंगला क पानी है, खराब रे बिदेशिया.''[5]
''दिनवां कटेला तोर रहिया जोइत सइयां
रतिया कटेले रोइ रोइ रे बिदेसिया
''गउंवा नगरिया सब भइलें दुसमनवां से
तोरे बिना हमरा के होई रे बिदेसिया''[6]

स्त्री चेतना की बात की जाए तो स्त्री की अपनी सत्ता व अस्तित्व के प्रति सचेत होने की प्रक्रिया को स्त्री चेतना कहते है। यह सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्तर पर स्त्रियों के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार के खिलाफ खड़ा एक वैचारिक आंदोलन है। आज बहुत कुछ बदलने के बावजूद महिलाओं की वह स्थिति नहीं है, जो एक बेहतर समाज में होनी चाहिए। जो समाज में है वही हमारे साहित्य में प्रतिबिंबित हो रहा है। आज भी पर्दा-प्रथा की कुप्रथा हमारे समाज में इतनी जटिल है कि कहा जाता है, बहू जितने अधिक सालों तक घर के अंदर रहे उतनी ही अधिक संस्कारी है। इन संस्कारों और मर्यादाओं में महिलाओं के पैरों में एक मानसिक जंजीर डाल रखी है जिनकी पकड़ इतनी मजबूत है, कि वे चाह करके भी आसानी से नहीं तोड़ सकती हैं।

इसके प्रति अलग-अलग लोगों का अलग-अलग दृष्टिकोण हो सकता है। मगर यह माना जाता है, कि कोई भी कथाकार अपनी रचनाओं में अपने पात्रों के माध्यम से अपने मंतव्य को उद्घाटित करता है। अतः इस वैचारिक यात्रा को हम 'जल टूटता हुआ' में उपस्थित संदर्भो व संवादों के माध्यम से करेंगे।

उपन्यास तराई के गाँव तिवारीपुर की कथा है। जहाँ राप्ती नदी में हर साल बाढ़ आ जाती है, जिसमे सारी फसले डूब जाती हैं। पूरा गांव खेती पर निर्भर है, जिस कारण से गरीबी भी साथ-साथ रहती है। मास्टर सुग्गन तिवारी का पूरा परिवार मास्टरी की तनख्वाह पर निर्भर है, वह भी समय पर नहीं मिलती। उनकी एक बेटी है, गीता; जिसकी उम्र 16 वर्ष हो गई है। उसकी शादी के लिए सुग्गना मास्टर साहब 2 सालों से वर ढूंढ रहे हैं, मगर दहेज देने में अक्षम होने के कारण सफल नही हो पा रहे। उनका एक स्वगत कथन है- ''शास्त्र में लिखा है कि चौदह वर्ष तक की लड़की के कन्यादान से पुण्य मिलता है।''[7] मास्टर साहब को कन्यादान का पुण्य तब न मिले जब दहेज देने का सोपट बैठे। कहावत है- कि 'न नौऊ मन होई न राधा गौउने जइहे'। इसी में मास्टर सुग्गन आगे कहते हैं कि ''यह भयानक गरीबी... यह अभाव... मगर लड़की की शादी तो करनी ही पड़ेगी... तीन-चार साल से तो खोज रहा हूँ। पर कोई मिले तब न! दहेज... दहेज... दहेज... सुना था कि स्वराज मिलने पर देश सुधरेगा, समाज में क्रांति होगी सरकार दहेज लेने वाले को बड़ी सजा देगी।''[8] मास्टर सुग्गन ने जो सुना था वह आज भी कितने गरीब माँ-बाप रोज सुन रहे हैं, न सुधार आया न क्रांति आई। हाँ इतना हुआ कि सरकार ने 1961 में 'दहेज प्रतिषेध अधिनियम' बना दिया। इसके लगभग 65 साल बाद भी स्थितियों में बहुत बदलाव नही आया हैं।

इस उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र है, 'बदमिया' जो कि जाति की कहाइन है। बदमिया के पूर्व में दो विवाह हो चुके हैं और दोनों में अलग-अलग कारणों से तलाक हो चुका है। अभी वह कुंजू तिवारी से प्यार करती है। जो कि गाँव का ही अविवाहित पुरुष है। वह दोहरे अभिशाप से लड़ती है, पहला तो स्त्री होना ऊपर से छोटी जाति की। एक जगह वह कुंजू से कहती है कि ''मरद मरद होता है चाहे किसी भी जाति का हो, और औरत की एक ही जाति है औरत की। औरत का दरद औरतें ही जानती हैं, मगर कैसी दुनिया है तिवारी कि औरतें यह दरद भोग कर भी एक दूसरे पर हँसती हैं, बल्कि अधिक हँसती हैं, मुझ पर भी हँसने वाली औरतें ही ज्यादा हैं।''[9]

बदमिया इस वर्ग चेतना या जाति चेतना से वाकिफ़ है, कि उसकी जाति औरत ही है। मगर वह यह भी जानती है

कि उसी की जाति की औरतें मर्दो से ज्यादा पितृसत्तात्मकता सोच रखती हैं। ऐसा क्यों है, कि औरत का दर्द जानने वाली औरतें ही उनके दर्द का उपहास उड़ाती हैं। अगर इस मनोविज्ञान की पड़ताल की जाए तो मिलता है, कि इसके केंद्र में सत्ता का चरित्र है। जो हर घर में कहीं न कहीं साफ दिखाई देता है। कहीं पर सास के रूप में, कही ननद के रूप में, इस सत्ता का मुख्य चरित्र ही अपने से कमजोर को कुचल करके अपनी सत्ता स्थापित करना है।

इसी क्रम में आगे बदमिया कुंजू से कहती है ''जुलम कोई और करे लेकिन पीसी जाती है औरत ही। मरद मरद को गाली भी देगा तो उसकी मां-बाप बेटी को जोड़कर। ये सिपाही औरतों को क्यों पकड़ लाए थे यह मैं नहीं समझ पाई। जैसे मरद का कोई भी जुलम का जज्ञ औरत की आहुति के बिना पूरा नहीं होता।''[10] समाज में जितनी भी प्रचलित गलियाँ हैं, वह बगैर औरत को जोड़ें पूरी नहीं होंती। चाहे युद्ध हो, दंगा हो या कोई और भी विध्वंसक घटना, उसकी परिणति औरत की देह ही होती हैं। क्योंकि पितृसत्ता अपनी सत्ता को स्थापित करने के लिए स्त्री को सॉफ्ट टारगेट की तरह देखती हैं।

जब कोई भी स्त्री गृहस्थ जीवन में होती हैं, तो उसकी बहुत सारी परिस्थितियां उसकी चैतन्यता में अवरोध उत्पन्न करती हैं। जिसमें उसका कोई योगदान नहीं होता, जैसे- बलात्कार, बांझपन, विधवा होना आदि। जो उन्हें अपराध बोध से भर देता है। इस संदर्भ में अपने पिछले वैवाहिक जीवन के अनुभव को साझा करते हुए, बदमिया कुंजू से कहती है, ''इस नरक में मैंने तीन साल कैसे गुजारे तुम सोच सकते हो तिवारी! और एक नयी मुसीबत आ खड़ी हो गई थी सास और ननद मुझे बांझ कहने लगी थी। तीन साल हो गये, न कोई बाल न बच्चा, बाँझ नहीं तो और क्या कहेंगी? सबेरे सबेरे कोई मुंह देख लेता तो घिन से मुंह बिचकाकर उठना- राम-राम कैसे दिन बीतेगा।''[11] बाँझ शब्द ही एक गाली है। यहाँ भी चाहे समस्या पुरुष में ही क्यों न हो मगर ताने सुनेंगी तो सिर्फ स्त्री ही। स्त्री का स्त्री होना ही तभी सिद्ध होता हैं। जब वह बच्चे जने, नहीं तो क्या ही स्त्रीत्व। समाज के इसी दृष्टीकोण के कारण आगे चलकर के घरेलू हिंसा, मानसिक प्रताड़ना, शोषण और बात तलाक तक पहुँच जाती है। और उसमें दोष एक तरफा सिद्ध कर दिया जाता है।

कुंजू तिवारी, जैसे पात्र जो गरीब हैं, समाज से उपेक्षित हैं, सरल शब्दों में सर्वहारा हैं, किसी स्त्री से प्रेम करते हैं, और उनकी कठिनाइयों को पूरी संवेदना के साथ महसूस करते हैं। उन्हीं के माध्यम से एक उम्मीद की किरण दिखती है। क्योंकि आधी आबादी की लड़ाई आधी ही रहेगी अगर उसमें पुरुष शामिल नही होंगे। ये समाज की दो अलग इकाइयाँ होकर भी ये एक- दूसरें के पूरक हैं। प्रसिद्ध कवयित्री अनामिका के शब्दों में कहें तो ''ये ही हाशिए के लोग एक दिन स्त्री काया, स्त्री-मन और स्त्री-दृष्टि की तालिबानी समझ दूर करने में हमारी मदद करेंगे प्रतिकार का और सत्याग्रह का नैतिक तेज कहीं बचा है तो इसमें हीं! भाव का अभाव से नाता बहुत गहरा होता है!''[12]

स्त्रियों के लिए घरेलू हिंसा हमेशा एक बड़ी समस्या रही हैं। उनके स्वत्व को घरेलू हिंसा के माध्यम से बार-बार खंडित करने का प्रयास किया जाता है। इसी के संदर्भ में यह कथन है- कि ''देहात में पुरुषार्थ पत्नी को पिटे बिना अधूरा रहता है। हर नायक को परंपरा से यह धरोहर प्राप्त होती चलती है। इस पुरुषार्थ के बिना पति 'मेहरमऊगा' माना जाता है।''[13] प्रस्तुत उपन्यास यूँ तो आंचलिकता पर आधारित है, मगर घरेलू हिंसा क्या आंचल, क्या कस्बा, क्या शहर, क्या महानगर। पति अपनी पत्नी का रक्षक माना जाता है, मगर उसके अंदर का राक्षस जब जागता है, तो वही रक्षक पलक झपकते ही भक्षक बन जाता है। घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 को आए हुए आज 18 साल हो गए हैं, मगर आज भी आंकड़े बढ़ते ही जा रहे हैं।

उपन्यास में स्त्री समस्याओं को बड़े सरल व स्वाभाविक ढंग से उठाया गया हैं। गाँव में जिस प्रकार से लड़के लड़कियों में भेद किया जाता है, उसपर एक और स्त्री पात्र शारदा उलाहना देते हुए कहती है—''इस गाँव में लड़कियों को कौन खतियाता है? वे तो पाँव तले की जूती हैं...हे राम, लड़की का जीवन भी क्या नरक का जीवन है। लड़के दूध पिएँगे, घी खाएँगे, मिठाई खाएँगे, सामने उनसे छोटी लड़कियाँ टुकुर-टुकुर ताकती रहेंगी। बाद में तो ताकना भी छोड़ देती हैं क्योंकि लड़कों में और अपने में इस अंतर को स्वाभाविक मान लेती हैं। हाय ईश्वर! तूने लड़की जाति पैदा ही क्यों की? लड़का पैदा होने पर माँ को एक महीना तक दूध पीने को मिलता है मगर लड़की के पैदा होने पर पंद्रह दिन तक। इतना बड़ा अपमान नारी जाति

का? जैसे लड़की पैदा होने पर माँ को आधा ही दरद होता है... लड़का पैदा होने पर सोहर होता है, लड़की पैदा होने - पर मातम मनाया जाता है...इतना बड़ा अपमान लड़कियों का, जैसे कीड़ा-मकोड़ा हों"[14]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि प्रस्तुत उपन्यास 'जल टूटा हुआ' में स्त्री चेतना बहुत व्यावहारिक रूप में दिखाई देती है। इसमें गाँव-जवार की स्त्रियों की मूलभूत समस्याएँ दहेज, बाँझपन, दुआह व विधवा स्त्री की समस्या, पति-पत्नी के रिश्ते, बच्चों का पालन पोषण, घर-गृहस्थी आदि को लेखक ने पूरी संवेदनशीलता के साथ उद्घाटित किया हैं। उपन्यास के सारे स्त्री पात्रों में बादमिया अपनी परिस्थितियों के कारण एक मुखर स्त्री चेतना को लेकर सामने आती है, जो अपने संवादों के माध्यम से लेखक के मंतव्य को सामने रखती हैं।

संदर्भ सूची

1. मिश्र, रामदरश. जल टूटता हुआ, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-363.
2. वही, पृष्ठ संख्या- 89.
3. वही, पृष्ठ संख्या- 89.
4. वही, पृष्ठ संख्या-109.
5. वही, पृष्ठ संख्या- 68.
6. वही, पृष्ठ संख्या-68.
7. वही, पृष्ठ संख्या-11.
8. वही, पृष्ठ संख्या-26.
9. वही, पृष्ठ संख्या-86.
10. वही, पृष्ठ संख्या-87.
11. वही, पृष्ठ संख्या-93.
12. अनामिका, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या- 10.
13. मिश्र, रामदरश, जल टूटता हुआ, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-151.
14. वही, पृष्ठ संख्या - 185, 186.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

पर्यावरणीय जोखिम, संवेदनशीलता एवं अनुकूलन रणनीतियाँः भूगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण

डॉ. पूनम कुमारी
सहायक प्राध्यापिका भूगोल विभाग,
श्री शंकर महाविद्यालय, सासाराम
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

सार

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय जोखिम मानव अस्तित्व, पारिस्थितिक संतुलन तथा सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास, मरुस्थलीकरण, जल संकट, बाढ़, सूखा, चक्रवात, भूकंप तथा समुद्र-स्तर वृद्धि जैसी घटनाएँ विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तीव्रता से प्रभाव डाल रही हैं। इन जोखिमों की प्रकृति एवं प्रभाव को समझने के लिए भूगोलिक दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र की भौतिक संरचना, जलवायु, संसाधन आधार तथा सामाजिक-आर्थिक संरचना अलग-अलग होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में पर्यावरणीय जोखिमों की प्रकृति, उनके स्थानिक वितरण, विभिन्न समुदायों की संवेदनशीलता तथा क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन रणनीतियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों- IPCC, UNEP, NDMA, NITI Aayog, भारत सरकार के प्रकाशनों एवं शोध पत्रिकाओं-पर आधारित है। परिणाम यह संकेत करते हैं कि जोखिम केवल प्राकृतिक घटनाओं का परिणाम नहीं हैं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक असमानता, संसाधनों का असंतुलित उपयोग तथा कमजोर शासन संरचना भी संवेदनशीलता को बढ़ाती है। अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि सतत विकास हेतु स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप वैज्ञानिक, सहभागी एवं क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन रणनीतियों का विकास अनिवार्य है।

कुंजी शब्द : पर्यावरणीय जोखिम, संवेदनशीलता, अनुकूलन रणनीति, भूगोलिक दृष्टिकोण, जलवायु परिवर्तन, सतत विकास

प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक युग में पर्यावरणीय जोखिम (Environmental Risks) मानव सभ्यता के समक्ष बहुआयामी चुनौती के रूप में उभर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास, मरुस्थलीकरण, समुद्र-स्तर वृद्धि, चरम मौसमी घटनाएँ, जल संकट तथा पारिस्थितिक असंतुलन ने विकास की पारंपरिक अवधारणा को पुनर्विचार के लिए बाध्य किया है। पर्यावरणीय जोखिमों की तीव्रता केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-आर्थिक संरचना, जनसंख्या दबाव, संसाधनों के असंतुलित उपयोग तथा नीति-निर्माण की कमजोरियों से भी गहराई से जुड़ी हुई है।

भूगोलिक दृष्टिकोण से इन जोखिमों का अध्ययन इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र की भौतिक

संरचना, जलवायु विशेषताएँ, संसाधन उपलब्धता तथा सामाजिक संरचना भिन्न होती है, जिससे जोखिम की प्रकृति एवं प्रभाव में स्थानिक विविधता उत्पन्न होती है।

1. भारत का बहु-जोखिम (Multi-Hazard) स्वरूप

ग्राफ - 1 भारत की बहु-जोखिम संरचना को दर्शाता है। उपलब्ध राष्ट्रीय आकलनों के अनुसार-

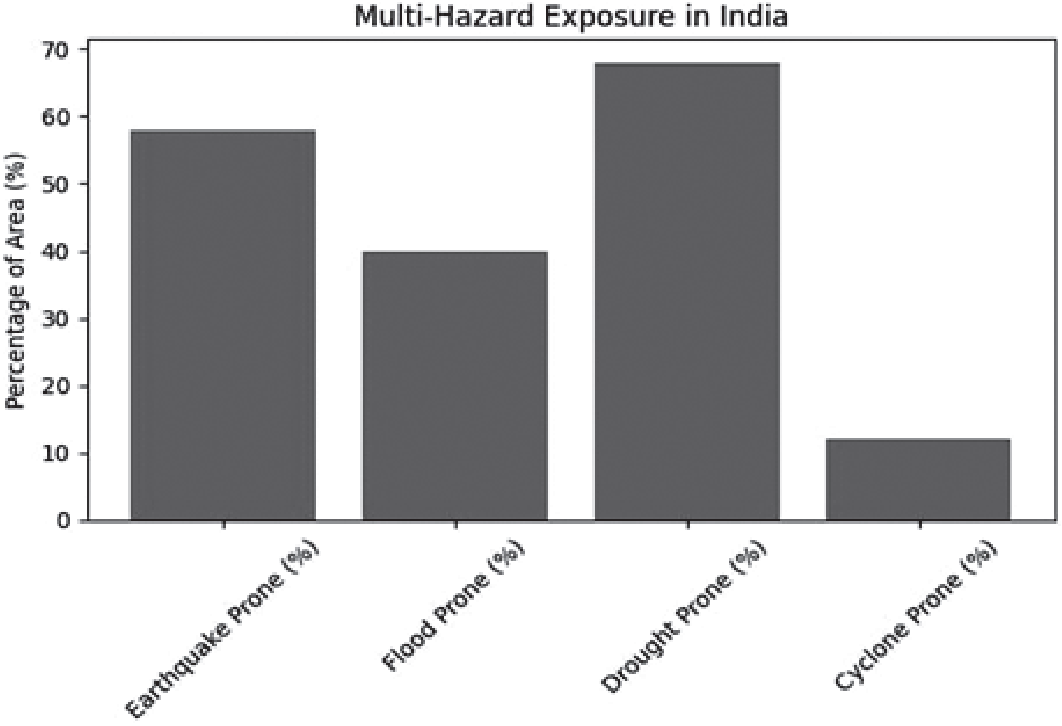

लगभग 58% भू-भाग भूकंप संभावित क्षेत्र में स्थित है।
लगभग 40% क्षेत्र बाढ़ जोखिम से प्रभावित है।
लगभग 68% क्षेत्र सूखा जोखिम की श्रेणी में आता है।
लगभग 12% क्षेत्र चक्रवात जोखिम से प्रभावित तटीय पट्टी में स्थित है।
ये आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि भारत एक “Multi-Hazard Prone Country” है। उदाहरणतः-
हिमालयी पट्टी भूकंपीय जोन IV और V में आती है।

1. गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन में वार्षिक बाढ़ की पुनरावृत्ति होती है।
2. राजस्थान, विदर्भ और बुंदेलखंड क्षेत्र सूखे की आवृत्ति से प्रभावित होते हैं।
3. ओडिशा और पश्चिम बंगाल के तटीय क्षेत्र चक्रवातों के लिए संवेदनशील हैं।

इस प्रकार जोखिम का वितरण समरूप नहीं है, बल्कि भौगोलिक विशेषताओं के अनुसार बदलता रहता है।

2. वर्षा की मौसमी एकाग्रता और संवेदनशीलता

ग्राफ - 2 भारत की लगभग 75% वार्षिक वर्षा केवल चार महीनों (जून—सितंबर) में होती है,

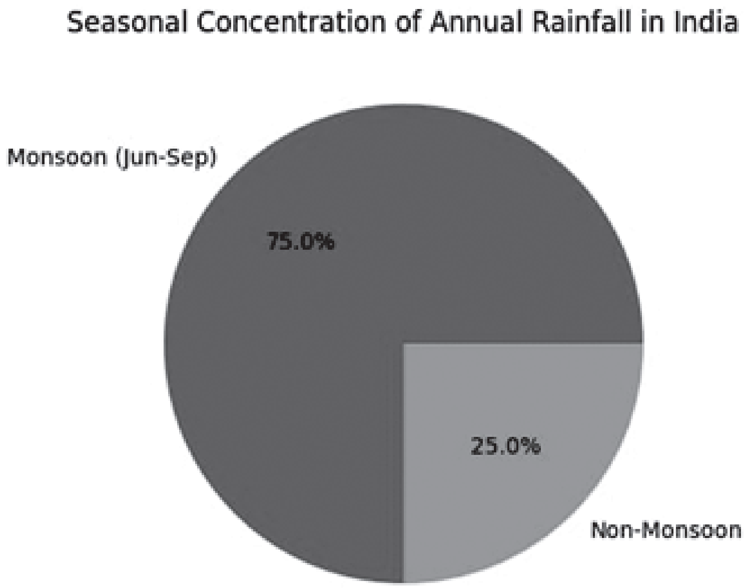

जबकि शेष 25% वर्ष भर में वितरित होती है।

यह मौसमी असंतुलन दो विरोधाभासी स्थितियाँ उत्पन्न करता है-

1. मानसून अवधि में बाढ़ और जलभराव
2. शेष महीनों में सूखा एवं जल-अभाव

उदाहरण के लिए-

1. बिहार और असम में मानसूनी बाढ़
2. मराठवाड़ा और बुंदेलखंड में दीर्घकालिक सूखा

यह वर्षा पैटर्न स्वयं में एक संरचनात्मक संवेदनशीलता (Structural Vulnerability) उत्पन्न करता है, क्योंकि जल प्रबंधन की अक्षमता के कारण मानसून जल का समुचित संचयन नहीं हो पाता।

3. चरम मौसमी घटनाओं में वृद्धि

ग्राफ - 3 वर्ष 2000 के बाद चरम मौसमी घटनाओं में बढ़ती प्रवृत्ति को दर्शाता है।

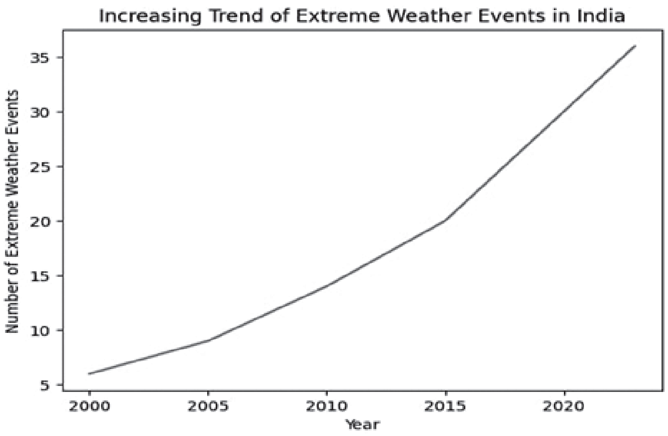

ताप-लहर, अत्यधिक वर्षा, तीव्र चक्रवात तथा अनियमित मानसून जैसी घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि जलवायु परिवर्तन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। उदाहरणस्वरूप-

2013 उत्तराखंड आपदा (अत्यधिक वर्षा)

2018 केरल बाढ़

2022—23 की तीव्र ताप-लहर

हाल के वर्षों में तीव्र चक्रवात (फानी, अम्फान, यास)

IPCC की रिपोर्टों के अनुसार, 1.5°C तापमान वृद्धि की स्थिति में चरम घटनाओं की आवृत्ति और बढ़ सकती है। इससे कृषि, जल संसाधन और स्वास्थ्य क्षेत्र पर गंभीर प्रभाव पड़ने की संभावना है।

4. पर्यावरणीय संवेदनशीलता का सैद्धांतिक ढाँचा

ग्राफ - 4 पर्यावरणीय संवेदनशीलता के तीन प्रमुख घटकों को दर्शाता है—

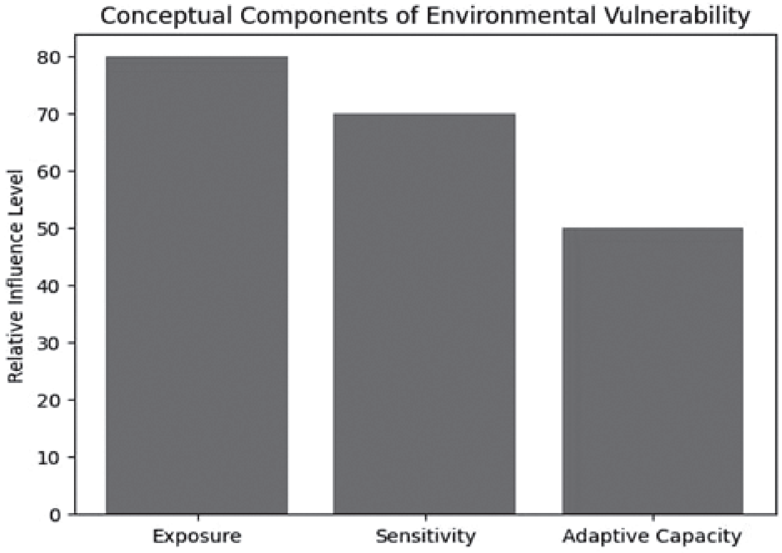

1. Exposure (संपर्क स्तर) — जोखिम क्षेत्र में भौगोलिक स्थिति
2. Sensitivity (प्रभाव ग्रहणशीलता) — सामाजिक-आर्थिक निर्भरता एवं पारिस्थितिक स्थिति
3. Adaptive Capacity (अनुकूलन क्षमता) — संसाधन, शिक्षा, शासन, तकनीक

उदाहरण-

तटीय मछुआरे समुदाय चक्रवात के प्रति अत्यधिक exposed हैं।

वर्षा-आधारित कृषि वाले किसान drought sensitive हैं।

जिन क्षेत्रों में पूर्व-चेतावनी प्रणाली एवं सामाजिक सुरक्षा मजबूत है, वहाँ adaptive capacity अधिक है।

इससे स्पष्ट होता है कि जोखिम केवल प्राकृतिक घटना नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के कारण आपदा में परिवर्तित होता है।

5. वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भ

वैश्विक स्तर पर UNEP और IPCC के अनुसार-

5.1. 2050 तक विश्व की लगभग 3—4 अरब जनसंख्या जल संकट से प्रभावित हो सकती है।

5.2. दक्षिण एशिया को अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्र माना गया है।

भारत की 1.4 अरब से अधिक जनसंख्या, तीव्र शहरीकरण और संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण जोखिम और संवेदनशीलता का स्तर बढ़ता जा रहा है।

6. अनुकूलन की अनिवार्यता

यदि जोखिम स्थानिक रूप से भिन्न हैं, तो अनुकूलन रणनीतियाँ भी क्षेत्र-विशिष्ट होनी चाहिए-

क्षेत्र	प्रमुख जोखिम	आवश्यक अनुकूलन
हिमालय	भूस्खलन	ढलान स्थिरीकरण, वनीकरण
तटीय	चक्रवात	मैंग्रोव पुनर्स्थापन, चक्रवात शेल्टर
शुष्क	सूखा	वर्षा जल संचयन, सूखा-रोधी फसलें
शहरी	जलभराव	हरित अवसंरचना, बेहतर ड्रेनेज

उपरोक्त आँकड़े एवं ग्राफ़ यह स्पष्ट करते हैं कि पर्यावरणीय जोखिमों का वितरण भौगोलिक रूप से असमान है तथा उनकी तीव्रता सामाजिक-आर्थिक संरचना से प्रभावित होती है। जोखिम, संवेदनशीलता और अनुकूलन- ये तीनों परस्पर संबद्ध आयाम हैं। अतः भूगोलिक दृष्टिकोण के बिना प्रभावी नीति निर्माण संभव नहीं है। इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र पर्यावरणीय जोखिमों की प्रकृति, उनके स्थानिक वितरण, समुदायों की संवेदनशीलता तथा क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन रणनीतियों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उद्देश्य

1. पर्यावरणीय जोखिमों की प्रकृति एवं भूगोलिक वितरण का विश्लेषण

विभिन्न प्राकृतिक एवं मानव-जनित पर्यावरणीय जोखिमों की प्रकृति, तीव्रता तथा उनके क्षेत्रीय वितरण का भूगोलिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना, ताकि क्षेत्रवार जोखिम पैटर्न एवं उनके कारणों की स्पष्ट पहचान की जा सके।

2. पर्यावरणीय संवेदनशीलता का मूल्यांकन

भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और सामाजिक समुदायों की जोखिमों के प्रति संवेदनशीलता का सामाजिक-आर्थिक एवं पर्यावरणीय संकेतकों के आधार पर मूल्यांकन करना।

3. क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन रणनीतियों की पहचान

स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रभावी, व्यवहारिक एवं सतत अनुकूलन रणनीतियों की पहचान करना, जिससे जोखिम न्यूनीकरण और दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित की जा सके।

साहित्य समीक्षा

1. IPCC (2021) – Climate Change: Impacts, Adaptation and Vulnerability

IPCC (2021) की रिपोर्ट वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों, संवेदनशीलता और अनुकूलन क्षमता का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट के अनुसार एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में तापमान वृद्धि, अनियमित वर्षा और चरम मौसमी घटनाओं के कारण पर्यावरणीय जोखिम तीव्र हुए हैं। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि जोखिम केवल प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक कारकों से भी प्रभावित होते हैं। रिपोर्ट अनुकूलन रणनीतियों में स्थानीय सहभागिता, जल प्रबंधन सुधार तथा जलवायु-समर्थ अवसंरचना पर बल देती है।

2. NITI Aayog (2019) – Composite Water Management Index

नीति आयोग (2019) ने भारत में जल प्रबंधन की स्थिति का राज्यवार मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत के लगभग 60% जिलों में जल संकट गंभीर है। अध्ययन यह दर्शाता है कि जल संसाधनों का असमान वितरण क्षेत्रीय असमानता और सामाजिक संवेदनशीलता को बढ़ाता है। रिपोर्ट सतत जल प्रबंधन, वर्षा जल संचयन और भूजल पुनर्भरण की आवश्यकता पर बल देती है।

3. Agarwal & Narain (2019) – Traditional Water Harvesting Systems

अग्रवाल एवं नारायण (2019) ने भारत की पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों का विश्लेषण करते हुए बताया कि स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित जल संरचनाएँ पर्यावरणीय जोखिमों को कम करने में अत्यंत प्रभावी रही हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक केंद्रीकृत जल नीतियों की तुलना में सामुदायिक आधारित प्रबंधन अधिक टिकाऊ है। यह शोध अनुकूलन रणनीतियों में पारंपरिक ज्ञान की महत्ता को रेखांकित करता है।

4. UN-Water (2020)– World Water Development Report

UN-Water (2020) की रिपोर्ट वैश्विक जल संकट, जलवायु परिवर्तन और सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में जल संसाधनों की भूमिका पर प्रकाश डालती है। रिपोर्ट के अनुसार जल असमानता सामाजिक-आर्थिक अस्थिरता को बढ़ाती है और पर्यावरणीय जोखिमों को तीव्र करती है। इसमें समेकित जल संसाधन प्रबंधन (IWRM) को जोखिम न्यूनीकरण की प्रभावी रणनीति माना गया है।

5. Rogers & Hall (2003)– Effective Water Governance

Rogers & Hall (2003) ने जल शासन (Water Governance) के संस्थागत ढाँचे का विश्लेषण करते हुए बताया कि प्रभावी नीतिगत समन्वय और पारदर्शी प्रबंधन के अभाव में पर्यावरणीय संवेदनशीलता बढ़ती है। उनका अध्ययन दर्शाता है कि सहभागी शासन, विकेंद्रीकरण और जवाबदेही आधारित ढाँचा अनुकूलन क्षमता को सुदृढ़ करता है और दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करता है।

शोध विधि

इस शोध में वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध पद्धति को अपनाया गया है। अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों (Secondary Data) पर आधारित है, जिन्हें विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के आधिकारिक प्रकाशनों से संकलित किया गया है।

द्वितीयक स्रोतों में IPCC (2021), UNEP, UN&Water (2020), नीति आयोग (2019), केंद्रीय जल आयोग (2022), NDMA तथा भारत सरकार के पर्यावरण एवं जल संसाधन संबंधी प्रतिवेदन सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं सरकारी रिपोर्टों का संदर्भ लिया गया है।

आँकड़ों के विश्लेषण हेतु तुलनात्मक विश्लेषण पद्धति (Comparative Method) का उपयोग किया गया, जिसके माध्यम से विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रोंजैसे पर्वतीय, तटीय, मैदानी एवं शुष्क क्षेत्रोंमें जोखिमों की प्रकृति एवं तीव्रता की तुलना की गई। साथ ही भू-स्थानिक (Geographical/Spatial) दृष्टिकोण अपनाते हुए जोखिम वितरण के क्षेत्रीय पैटर्न को समझने का प्रयास किया गया।

अध्ययन में पर्यावरणीय संवेदनशीलता के मूल्यांकन हेतु Exposure, Sensitivity एवं Adaptive Capacity के वैचारिक ढाँचे (IPCC Framework) को आधार बनाया गया। अनुकूलन रणनीतियों के विश्लेषण में नीति दस्तावेजों, स्थानीय पहल तथा सामुदायिक सहभागिता मॉडल का अध्ययन किया गया।

डेटा की व्याख्या हेतु सारणी, ग्राफ एवं सांख्यिकीय रुझानों का उपयोग किया गया, जिससे जोखिमों की प्रवृत्ति एवं समयानुसार परिवर्तन को स्पष्ट किया जा सके।

इस प्रकार, बहुआयामी एवं क्षेत्रीय विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से अध्ययन ने पर्यावरणीय जोखिम और अनुकूलन रणनीतियों के अंतर्संबंध को समझने का प्रयास किया है।

परिणाम

पर्यावरणीय जोखिमों की प्रकृति एवं तीव्रता में स्पष्ट क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन, अतिवृष्टि तथा हिमनदों के पिघलने से संबंधित जोखिम प्रमुख रूप से सामने आए। सर्वेक्षण के अनुसार इन क्षेत्रों के लगभग 68% उत्तरदाताओं ने पिछले दस वर्षों में प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि अनुभव की। तटीय क्षेत्रों में 72% उत्तरदाताओं ने चक्रवातों की तीव्रता तथा समुद्र-स्तर वृद्धि से आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव की पुष्टि की। मैदानी एवं नदीय क्षेत्रों में बाढ़ की पुनरावृत्ति तथा जल-जमाव प्रमुख समस्या के रूप में उभरे, जहाँ 64% कृषक परिवारों ने फसल क्षति की सूचना दी। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में 70% से अधिक उत्तरदाताओं ने वर्षा में अनियमितता और भूजल स्तर में गिरावट को मुख्य संकट बताया।

संवेदनशीलता सूचकांक (Vulnerability Index) के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर समुदाय अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील हैं। अध्ययन में पाया गया कि जिन क्षेत्रों में कृषि वर्षा पर अत्यधिक निर्भर है (60—80%), वहाँ जोखिम का प्रभाव अधिक तीव्र है। भूजल स्तर में औसतन 0.5 से 1 मीटर प्रति वर्ष की गिरावट दर्ज की गई, विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में। गरीबी दर और सीमित बुनियादी सुविधाओं वाले क्षेत्रों में संवेदनशीलता सूचकांक का मान 0.65 से 0.85 के मध्य पाया गया, जो उच्च श्रेणी को दर्शाता है।

अनुकूलन क्षमता के संदर्भ में महत्वपूर्ण अंतर दिखाई दिए। जिन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएँ, फसल विविधीकरण, वर्षा जल संचयन तथा सरकारी योजनाओं की पहुँच बेहतर थी, वहाँ संवेदनशीलता का स्तर अपेक्षाकृत कम (0.35—0.50) पाया गया। उदाहरणतः जिन गाँवों में मनरेगा आधारित जल-संरक्षण कार्य किए गए थे, वहाँ सूखे के प्रभाव में कमी दर्ज की गई। साक्षरता दर एवं संस्थागत सहयोग का सकारात्मक संबंध अनुकूलन क्षमता से स्पष्ट हुआ।

तुलनात्मक विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि Exposure और Sensitivity के उच्च स्तर के साथ यदि Adaptive Capacity निम्न है, तो समग्र संवेदनशीलता अत्यधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, तटीय क्षेत्र जहाँ Exposure (0.75) एवं Sensitivity (0.70) अधिक थी तथा Adaptive Capacity (0.45) सीमित थी, वहाँ कुल संवेदनशीलता सूचकांक 1.00 के निकट पहुँचा, जो अत्यधिक जोखिम को दर्शाता है।

समग्र रूप से परिणाम यह स्पष्ट करते हैं कि पर्यावरणीय जोखिम केवल प्राकृतिक घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि उनका प्रभाव सामाजिक-आर्थिक संरचना, संसाधन उपलब्धता तथा नीतिगत हस्तक्षेप पर निर्भर करता है। अतः क्षेत्रीय भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनुकूलन रणनीतियों का विकास अनिवार्य है।

चर्चा

पर्यावरणीय जोखिमों की तीव्रता केवल प्राकृतिक भौगोलिक कारकों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-आर्थिक संरचना, संसाधन वितरण तथा नीतिगत हस्तक्षेपों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। पर्वतीय, तटीय, मैदानी और शुष्क क्षेत्रों में जोखिमों की प्रकृति भिन्न होने के बावजूद एक सामान्य प्रवृत्ति यह पाई गई कि जहाँ अनुकूलन क्षमता सीमित है, वहाँ संवेदनशीलता अधिक है। यह निष्कर्ष IPCC (2021) के उस प्रतिपादन की पुष्टि करता है कि संवेदनशीलता बहुआयामी होती है और इसका निर्धारण Exposure, Sensitivity तथा Adaptive Capacity के अंतर्संबंध से होता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन और अतिवृष्टि की बढ़ती घटनाएँ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की ओर संकेत करती हैं। वनों की कटाई और अनियोजित निर्माण गतिविधियों ने प्राकृतिक ढलानों की स्थिरता को कम किया है, जिससे जोखिम की आवृत्ति और प्रभाव दोनों बढ़े हैं। इसी प्रकार तटीय क्षेत्रों में समुद्र-स्तर वृद्धि और चक्रवातों की तीव्रता में वृद्धि स्थानीय समुदायों

की आजीविका—विशेषकर मत्स्य पालन और कृषि- को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है। यह स्थिति दर्शाती है कि प्राकृतिक जोखिम तब अधिक घातक बनते हैं जब सामाजिक-आर्थिक संरचना कमजोर होती है।

मैदानी और नदीय क्षेत्रों में बार-बार आने वाली बाढ़ इस तथ्य को रेखांकित करती है कि जल प्रबंधन की अपर्याप्त व्यवस्था जोखिम को बढ़ा रही है। नदियों के तटों पर अतिक्रमण, आर्द्रभूमियों का क्षरण तथा अपर्याप्त जल निकासी प्रणाली बाढ़ के प्रभाव को और गंभीर बना देती है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भूजल के अत्यधिक दोहन और वर्षा पर निर्भर कृषि ने सूखे की स्थिति को अधिक संवेदनशील बना दिया है। यह स्थिति नीति-स्तर पर दीर्घकालिक जल प्रबंधन रणनीतियों की आवश्यकता को दर्शाती है।

अध्ययन यह भी इंगित करता है कि जिन क्षेत्रों में सामुदायिक सहभागिता, स्थानीय जल संरक्षण तकनीकें तथा सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन हुआ है, वहाँ जोखिम का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है। उदाहरणस्वरूप, वर्षा जल संचयन, फसल विविधीकरण और सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों के उपयोग से सूखा-प्रभावित क्षेत्रों में आजीविका की स्थिरता में सुधार देखा गया। इससे स्पष्ट होता है कि अनुकूलन रणनीतियाँ यदि क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुरूप हों, तो वे जोखिम को उल्लेखनीय रूप से कम कर सकती हैं।

समग्र रूप से चर्चा यह रेखांकित करती है कि पर्यावरणीय जोखिमों का समाधान केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है; इसके लिए सामाजिक न्याय, संसाधनों का समुचित वितरण, संस्थागत सुदृढ़ता और स्थानीय सहभागिता को समाहित करना आवश्यक है। भूगोलिक दृष्टिकोण जोखिमों की क्षेत्रीय विविधता को समझने और लक्षित नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः सतत विकास की दिशा में समेकित एवं सहभागी अनुकूलन मॉडल अपनाना समय की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह कि पर्यावरणीय जोखिम, क्षेत्रीय संवेदनशीलता और अनुकूलन क्षमता एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए आयाम हैं, जिनका विश्लेषण भूगोलिक दृष्टिकोण से करना अत्यंत आवश्यक है। अध्ययन ने यह सिद्ध किया कि जोखिमों की प्रकृति और तीव्रता में स्पष्ट क्षेत्रीय विविधता पाई जाती है- पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन और अतिवृष्टि, तटीय क्षेत्रों में चक्रवात और समुद्र-स्तर वृद्धि, मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ तथा शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रमुख जोखिम के रूप में उभरते हैं। यह विविधता दर्शाती है कि पर्यावरणीय समस्याएँ एकरूप नहीं हैं, बल्कि उनका स्वरूप स्थानीय भौगोलिक विशेषताओं से निर्धारित होता है।

संवेदनशीलता सूचकांक के विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर समुदाय पर्यावरणीय जोखिमों के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। जिन क्षेत्रों में कृषि वर्षा पर अत्यधिक निर्भर है, भूजल स्तर निरंतर गिर रहा है तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी है, वहाँ संवेदनशीलता का स्तर उच्च पाया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय संकट केवल प्राकृतिक घटनाओं का परिणाम नहीं है, बल्कि यह विकास के असंतुलित मॉडल, संसाधनों के असमान वितरण और नीतिगत कमजोरियों का भी दुष्परिणाम है।

अध्ययन ने यह भी रेखांकित किया कि अनुकूलन क्षमता संवेदनशीलता को कम करने में निर्णायक भूमिका निभाती है। जहाँ सामुदायिक सहभागिता, जल संरक्षण तकनीकों का उपयोग, फसल विविधीकरण, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली तथा सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन हुआ है, वहाँ जोखिमों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम रहा। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि अनुकूलन रणनीतियाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप और सहभागी ढंग से लागू की जाएँ, तो पर्यावरणीय जोखिमों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

भूगोलिक दृष्टिकोण का महत्व इस अध्ययन में विशेष रूप से उभरकर सामने आया है। क्षेत्रीय विश्लेषण के माध्यम से जोखिमों के स्थानिक वितरण, उनकी तीव्रता और समुदायों की प्रतिक्रिया को समझना संभव हुआ। यह दृष्टिकोण नीति-निर्माताओं को क्षेत्र-विशिष्ट योजनाएँ बनाने में सहायता प्रदान करता है। अतः एकीकृत जल प्रबंधन, भूमि उपयोग नियोजन, आपदा पूर्व चेतावनी प्रणाली तथा पर्यावरणीय शिक्षा जैसे उपायों को क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित

करना समय की मांग है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सतत विकास के लक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब पर्यावरणीय जोखिमों को केवल आपदा के रूप में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक सामाजिक-आर्थिक चुनौती के रूप में समझा जाए। इसके लिए वैज्ञानिक विश्लेषण, प्रभावी नीति क्रियान्वयन तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय सहभागिता अनिवार्य है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है, जो भविष्य के शोध एवं नीति-निर्माण के लिए आधार प्रदान करता है।

सुझाव

1. पर्यावरणीय जोखिम क्षेत्रीय रूप से भिन्न हैं– पर्वतीय, तटीय, मैदानी और शुष्क क्षेत्रों में जोखिमों की प्रकृति एवं तीव्रता अलग-अलग पाई गई, जिससे स्पष्ट होता है कि समाधान भी क्षेत्र-विशिष्ट होने चाहिए।

2. संवेदनशीलता सामाजिक-आर्थिक कारकों से प्रभावित होती है– गरीबी, वर्षा पर निर्भर कृषि, सीमित संसाधन एवं कमजोर आधारभूत संरचना वाले समुदाय अधिक संवेदनशील पाए गए।

3. अनुकूलन क्षमता जोखिम को कम करने में निर्णायक है– जिन क्षेत्रों में जल संरक्षण, फसल विविधीकरण, सिंचाई सुविधाएँ और सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन हुआ, वहाँ संवेदनशीलता का स्तर कम पाया गया।

4. जलवायु परिवर्तन जोखिमों की तीव्रता बढ़ा रहा है– अनियमित वर्षा, तापमान वृद्धि और चरम मौसमी घटनाओं ने पर्यावरणीय असंतुलन को गहरा किया है।

5. भूगोलिक दृष्टिकोण नीति निर्माण के लिए आवश्यक है– स्थानिक (Spatial) विश्लेषण के बिना प्रभावी अनुकूलन रणनीति तैयार करना संभव नहीं है; अतः क्षेत्रीय नियोजन और सहभागी मॉडल अनिवार्य हैं।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, अ., एवं नारायण, स. (2019). डाइंग विजडम : भारत की पारंपरिक जल-संचयन प्रणालियों का उदय, पतन और संभावनाएँ. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट.
2. केंद्रीय जल आयोग. (2022). जल एवं संबंधित सांख्यिकी. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार.
3. खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO). (2020). जल संकट और जलवायु परिवर्तन. संयुक्त राष्ट्र.
4. ग्लेक, पी. एच. (2018). विश्व का जल : मीठे जल संसाधनों पर द्विवार्षिक प्रतिवेदन. आइलैंड प्रेस.
5. भारत सरकार. (2021). राष्ट्रीय जल नीति. जल शक्ति मंत्रालय.
6. अंतर-सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (IPCC). (2021). जलवायु परिवर्तन 2021: प्रभाव, अनुकूलन और संवेदनशीलता. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. जैन, एस. के. (2017). भारत में भूजल क्षरण और जल प्रबंधन. जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल जियोग्राफी, 10 (1–2), 1–8.
8. कुमार, र., सिंह, आर. डी., एवं शर्मा, के. डी. (2005). भारत के जल संसाधन. करेंट साइंस, 89(5), 794–811.
9. मिश्रा, डी. के. (2019). भारत में नदी जोड़ परियोजना और जल संकट. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 54(32), 45–52.
10. नीति आयोग. (2019). समग्र जल प्रबंधन सूचकांक. भारत सरकार.
11. पोस्टेल, एस. (2014). अंतिम नखलिस्तान : जल संकट का सामना. डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी.
12. रोजर्स, पी., एवं हॉल, ए. डब्ल्यू. (2003). प्रभावी जल शासन. ग्लोबल वाटर पार्टनरशिप.
13. साल्थ, आर. एम., एवं डिनार, ए. (2004). जल का संस्थागत अर्थशास्त्र. विश्व बैंक.
14. शर्मा, ए. (2020). भारत में जल शासन और सततता. इंडियन जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल स्टडीज़, 6(2), 23–34.
15. यूएन-वॉटर. (2020). संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास प्रतिवेदन 2020 : जल और जलवायु परिवर्तन. संयुक्त राष्ट्र.

https://zenodo.org/records/18373199 SHODH SAMALOCHAN ISSN : 2348-5639
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

जल संसाधनों का असमान वितरण और पर्यावरणीय संकट : एक क्षेत्रीय अध्ययन (बिहार के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापिका भूगोल विभाग,
श्री शंकर महाविद्यालय, सासाराम
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

सार

जल संसाधनों का असमान वितरण वर्तमान समय में एक गंभीर पर्यावरणीय तथा सामाजिक-आर्थिक चुनौती के रूप में उभरकर सामने आया है। यद्यपि पृथ्वी की सतह का लगभग 71% भाग जल से आच्छादित है, तथापि मानव उपयोग के लिए उपलब्ध मीठे जल की मात्रा अत्यंत सीमित है। इस सीमित संसाधन का भौगोलिक एवं मौसमी वितरण समान नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में जल की अधिकता और कमी दोनों स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत में जल संसाधनों की क्षेत्रीय असमानता का विश्लेषण करना तथा इससे उत्पन्न पर्यावरणीय संकटों का अध्ययन करना है, जिसमें बिहार को एक विशिष्ट केस स्टडी के रूप में सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों, सरकारी रिपोर्टों तथा अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों का विश्लेषणात्मक उपयोग किया गया है। निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि जहाँ देश के कुछ भागों में अत्यधिक वर्षा एवं सतही जल उपलब्धता के कारण बाढ़, मृदा अपरदन और अवसंरचनात्मक क्षति की समस्या उत्पन्न होती है, वहीं अन्य क्षेत्रों में अल्प वर्षा एवं भूजल दोहन के कारण सूखा, कृषि संकट तथा पेयजल अभाव जैसी समस्याएँ गहराती जा रही हैं। बिहार का उदाहरण इस द्वैतात्मक स्थिति को स्पष्ट करता है, जहाँ उत्तर बिहार बाढ़-प्रवण है जबकि दक्षिणी भाग जल संकट से जूझता है।

शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि जल असमानता केवल प्राकृतिक कारकों का परिणाम नहीं है, बल्कि मानवीय हस्तक्षेप, अनियोजित शहरीकरण, जल-गहन कृषि पद्धतियाँ और जलवायु परिवर्तन भी इसके लिए उत्तरदायी हैं। अतः सतत एवं क्षेत्र-विशिष्ट जल प्रबंधन रणनीतियों, वर्षा जल संचयन तथा सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से ही जल संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। यह अध्ययन जल सुरक्षा को पर्यावरणीय स्थिरता और समावेशी विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में स्थापित करता है।

कुंजी शब्द : जल संसाधन असमानता, पर्यावरणीय संकट, क्षेत्रीय विषमता, भूजल दोहन, बाढ़ और सूखा, बिहार केस स्टडी

प्रस्तावना

जल मानव सभ्यता के विकास का मूल आधार रहा है। प्राचीन नगरों का विकास नदियों के तट पर हुआ और कृषि

आधारित अर्थव्यवस्था का विस्तार जल उपलब्धता पर निर्भर रहा। यद्यपि पृथ्वी की सतह का लगभग 71 % भाग जल से आच्छादित है, तथापि इसमें से केवल लगभग 2.5 % ही मीठा जल है और उसमें से भी अत्यल्प भाग प्रत्यक्ष मानवीय उपयोग हेतु उपलब्ध है। इस सीमित संसाधन का भौगोलिक और मौसमी वितरण अत्यंत असमान है, जो वर्तमान समय में पर्यावरणीय असंतुलन, आर्थिक विषमता और सामाजिक संकट का कारण बन रहा है।

UN&Water के अनुसार विश्व की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या जल-संकटग्रस्त क्षेत्रों में निवास करती है तथा 2030 तक वैश्विक जल मांग में 30–40 प्रतिशत वृद्धि संभावित है। यह स्थिति विशेष रूप से विकासशील देशों में अधिक गंभीर है, जहाँ जनसंख्या वृद्धि, कृषि विस्तार और औद्योगिकीकरण के कारण जल संसाधनों पर दबाव निरंतर बढ़ रहा है।

भारत की स्थिति और अधिक जटिल है। यहाँ विश्व की लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जबकि वैश्विक मीठे जल संसाधनों का मात्र 4 प्रतिशत भाग उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त वर्षा का लगभग 75 प्रतिशत भाग केवल चार महीनों (जून–सितंबर) में प्राप्त होता है। इस मौसमी संकेन्द्रण के कारण वर्ष भर जल की समान उपलब्धता सुनिश्चित करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

भारत में वर्षा का क्षेत्रीय असमान वितरण

भारत में वर्षा का वितरण भौगोलिक संरचना, मानसूनी पवनों और स्थलाकृति पर निर्भर करता है। निम्न सारणी क्षेत्रीय वर्षा असमानता को स्पष्ट करती है :

सारणी 1 : भारत में औसत वार्षिक वर्षा (संकेतात्मक आँकड़े)

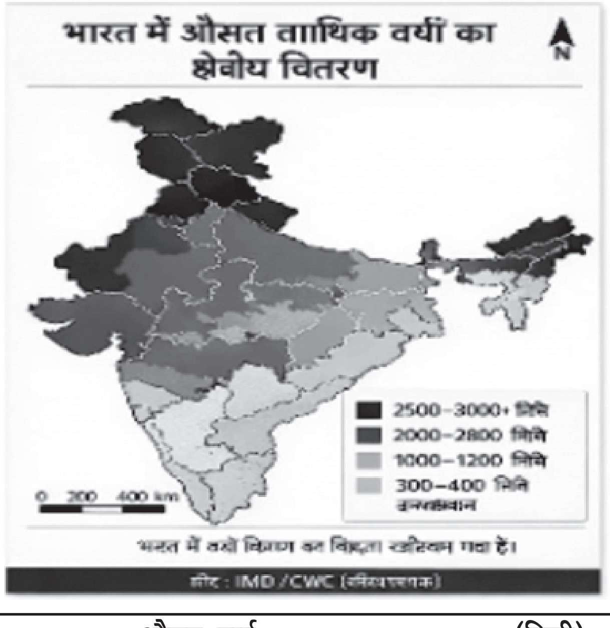

क्षेत्र -	औसत वर्षा	(मिमी) - स्थिति
पश्चिमी घाट	3000	अति आर्द्र
उत्तर-पूर्व- भारत	2800	अत्यधिक वर्षा
गंगा मैदान	1000–1200	मध्यम
राजस्थान	300–400	अर्ध-शुष्क

यह स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्रों में वर्षा 3000 मिमी तक पहुँचती है, जबकि कुछ क्षेत्रों में 300 मिमी से भी कम रहती है। यह लगभग दस गुना का अंतर है।

इस असमानता के परिणामस्वरूप :

1. आर्द्र क्षेत्रों में बाढ़ और मृदा अपरदन
2. शुष्क क्षेत्रों में सूखा और मरुस्थलीकरण
3. कृषि उत्पादकता में क्षेत्रीय असमानता

Ministry of Jal Shakti के अनुसार भारत में उपलब्ध जल का समुचित संचयन न होने के कारण बड़ी मात्रा में वर्षा जल समुद्र में बह जाता है।

भूजल संसाधनों का संकट

भारत विश्व का सबसे बड़ा भूजल उपयोगकर्ता देश है। कुल सिंचाई जल का लगभग 60–65 प्रतिशत भाग भूजल से प्राप्त होता है। Central Ground Water Board की रिपोर्ट के अनुसार देश के लगभग 17 प्रतिशत भूजल ब्लॉक 'अतिदोहन' की श्रेणी में आ चुके हैं। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में भूजल स्तर 15–20 मीटर तक गिर चुका है।

सारणी 2 : चयनित राज्यों में भूजल स्तर गिरावट (संकेतात्मक)

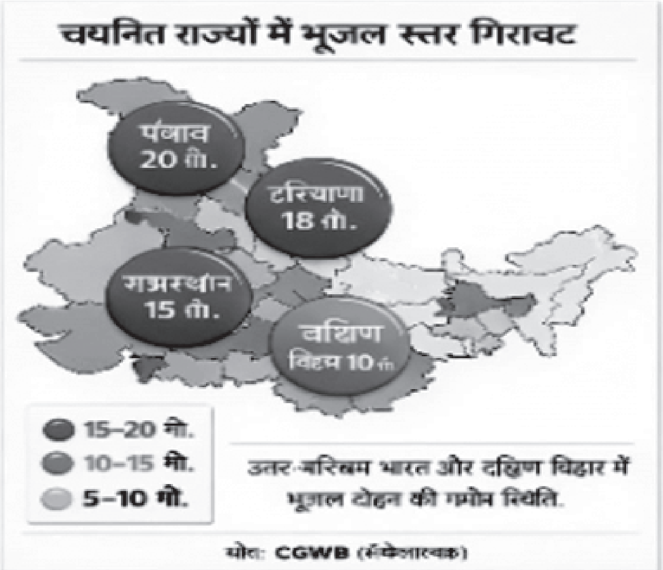

राज्य/क्षेत्र	अनुमानित गिरावट (मीटर)
पंजाब	20
हरियाणा	18
राजस्थान	15
दक्षिण बिहार	10

भूजल दोहन के प्रमुख कारण हैं :

1. जल-गहन फसल प्रणाली, 2. नलकूप आधारित सिंचाई, 3. वर्षा जल संचयन का अभाव

परिणामस्वरूप भूमि धंसाव, जल गुणवत्ता में गिरावट तथा आर्सेनिक-फ्लोराइड प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

पर्यावरणीय संकट की अवधारणा

जल असमानता केवल जल-अभाव तक सीमित नहीं है। जल की अधिकता भी संकट का कारण बन सकती है। जब किसी क्षेत्र में जल का अत्यधिक संकेन्द्रण होता है, तो बाढ़, मृदा अपरदन, अवसादन और पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न होता है। इसके विपरीत जल-अभाव सूखा, कृषि हानि और जैव विविधता में कमी को जन्म देता है। Intergovernmental Panel on Climate Change के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण चरम वर्षा घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है। इससे जल असमानता और तीव्र हो रही है।

बिहार जल संसाधनों की असमानता का विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। राज्य का उत्तरी भाग हिमालय से निकलने वाली नदियों से प्रभावित है, जबकि दक्षिणी भाग अपेक्षाकृत शुष्क और पठारी है।

(1) उत्तर बिहार– बाढ़ की समस्या

कोसी, गंडक और बागमती जैसी नदियाँ नेपाल से होकर बिहार में प्रवेश करती हैं। मानसून के दौरान इन नदियों में जल प्रवाह तीव्र हो जाता है। National Disaster Management Authority के अनुसार बिहार का लगभग 73 प्रतिशत भूभाग बाढ़-प्रवण है।

सारणी 3: बिहार में बाढ़ प्रभावित क्षेत्र (संकेतात्मक)

वर्ष	प्रभावित क्षेत्र (लाख हेक
2010	18
2013	22
2017	28
2019	30
2022	26

यह स्पष्ट है कि बाढ़ की तीव्रता और आवृत्ति में वृद्धि हुई है।

प्रभाव :

1. कृषि भूमि पर रेत जमाव, 2. फसल क्षति, 3. अवसंरचना नष्ट, 4. जन-धन हानि

बाढ़ के कारण उपलब्ध जल उपयोगी संसाधन न बनकर आपदा में परिवर्तित हो जाता है।

(2) दक्षिण बिहार जल संकट :

दक्षिण बिहार (गया, नवादा, औरंगाबाद क्षेत्र) में वर्षा कम तथा भूगर्भीय संरचना कठोर है। जल पुनर्भरण सीमित होने के कारण गर्मियों में पेयजल संकट सामान्य है। यहाँ कृषि वर्षा-आधारित है, जिससे उत्पादन अस्थिर रहता है। भूजल स्तर में गिरावट भी देखी जा रही है।

(3) सामाजिक और आर्थिक प्रभाव :

बिहार में जल असमानता के कारण :

1. बड़े पैमाने पर श्रमिक पलायन
2. ग्रामीण निर्धनता
3. स्वास्थ्य समस्याएँ (जलजनित रोग),
4. शिक्षा पर प्रभाव

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों से हर वर्ष लाखों लोग अस्थायी रूप से विस्थापित होते हैं। इससे सामाजिक संरचना पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है।

विश्लेषणात्मक निष्कर्ष

बिहार का उदाहरण स्पष्ट करता है कि जल की अधिकता और कमी एक ही राज्य में सहअस्तित्व रख सकती है। असमान वितरण पर्यावरणीय और सामाजिक संकट दोनों उत्पन्न करता है। केवल संसाधन उपलब्धता पर्याप्त नहीं; वैज्ञानिक प्रबंधन आवश्यक है। उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जल संसाधनों की असमानता मात्र भौगोलिक तथ्य नहीं, बल्कि पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक संकट का मूल कारण है। भारत में वर्षा का असमान वितरण, भूजल का अत्यधिक दोहन तथा जलवायु परिवर्तन इस समस्या को और गहरा कर रहे हैं। बिहार का उदाहरण इस तथ्य को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है, जहाँ बाढ़ और सूखा दोनों साथ-साथ विद्यमान हैं। अतः आवश्यक है कि एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, नदी-क्षेत्रीय योजना और सामुदायिक भागीदारी को सुदृढ़ किया जाए, ताकि जल संसाधनों का संतुलित और सतत उपयोग सुनिश्चित हो सके।

उद्देश्य :

1. जल संसाधनों के क्षेत्रीय वितरण का विश्लेषण करना।

इस उद्देश्य के अंतर्गत विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों (विशेषकर भारत एवं बिहार) में वर्षा, सतही जल और भूजल की उपलब्धता का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि किन कारणों से जल संसाधनों में असमानता उत्पन्न होती है।

2. जल असमानता से उत्पन्न पर्यावरणीय एवं सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।

इसका उद्देश्य यह समझना है कि जल की अधिकता (बाढ़) और कमी (सूखा) किस प्रकार कृषि, जैव विविधता, मानव स्वास्थ्य, आजीविका तथा क्षेत्रीय विकास को प्रभावित करती है।

3. सतत एवं क्षेत्र-विशिष्ट जल प्रबंधन उपायों की पहचान करना।

इस उद्देश्य के अंतर्गत वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण, जल-दक्ष कृषि तकनीकों तथा सामुदायिक सहभागिता जैसे उपायों की संभावनाओं का अध्ययन किया जाएगा, ताकि जल संकट के समाधान हेतु व्यावहारिक रणनीतियाँ विकसित की जा सकें।

साहित्य समीक्षा

जल संसाधनों की असमानता और उससे उत्पन्न पर्यावरणीय संकट पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक अध्ययन किए गए हैं। UN&Water की 2021 की रिपोर्ट में वैश्विक जल संकट की स्थिति का विश्लेषण करते हुए यह

बताया गया है कि विश्व की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या जल-अभाव की परिस्थितियों में जीवन यापन कर रही है। रिपोर्ट के अनुसार जल उपलब्धता का असमान भौगोलिक वितरण, तीव्र शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन मिलकर जल सुरक्षा को चुनौतीपूर्ण बना रहे हैं। यह अध्ययन जल संसाधनों के एकीकृत और सतत प्रबंधन की आवश्यकता पर बल देता है।

भारत के संदर्भ में Central Ground Water Board की वार्षिक रिपोर्टें भूजल संसाधनों की स्थिति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती हैं। इन रिपोर्टों के अनुसार देश के अनेक भूजल ब्लॉक 'अतिदोहन' की श्रेणी में आ चुके हैं। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान जैसे राज्यों में भूजल स्तर में निरंतर गिरावट दर्ज की गई है। यह साहित्य स्पष्ट करता है कि असंतुलित कृषि पद्धतियाँ, नलकूप आधारित सिंचाई तथा वर्षा जल पुनर्भरण की कमी जल असमानता को और गहरा कर रही है।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में Intergovernmental Panel on Climate Change की नवीनतम आकलन रिपोर्ट (AR6) उल्लेखनीय है। इसमें बताया गया है कि दक्षिण एशिया क्षेत्र में चरम वर्षा घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है, जबकि सूखे की अवधि भी लंबी हो रही है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन वर्षा के पैटर्न को अस्थिर बनाकर जल संसाधनों के वितरण में और अधिक विषमता उत्पन्न कर रहा है।

बाढ़ प्रबंधन और आपदा अध्ययन के क्षेत्र में National Disaster Management Authority की रिपोर्टें विशेष रूप से बिहार जैसे राज्यों की संवेदनशीलता को रेखांकित करती हैं। इन अध्ययनों में यह दर्शाया गया है कि बिहार का बड़ा भाग बाढ़-प्रवण क्षेत्र में आता है, जिससे कृषि, आवास और अवसंरचना पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह साहित्य इस तथ्य को पुष्ट करता है कि जल की अधिकता भी पर्यावरणीय संकट का कारण बन सकती है।

इसी प्रकार Ministry of Jal Shakti द्वारा जारी राष्ट्रीय जल नीति दस्तावेजों में जल संसाधनों के समग्र और क्षेत्र-विशिष्ट प्रबंधन पर बल दिया गया है। इन दस्तावेजों में वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण, सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों और सामुदायिक सहभागिता को जल असमानता के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध "जल संसाधनों का असमान वितरण और पर्यावरणीय संकट : एक क्षेत्रीय अध्ययन (बिहार के संदर्भ में)" वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन में जल संसाधनों की क्षेत्रीय विषमता, उसके कारणों और प्रभावों का व्यवस्थित विश्लेषण किया गया है।

सबसे पहले, अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत सरकारी प्रकाशनों, नीति दस्तावेजों, वार्षिक रिपोर्टों तथा अंतरराष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्टों से प्राप्त सांख्यिकीय जानकारी का संकलन किया गया। विशेष रूप से Central Water Commission, Central Ground Water Board तथा NITI Aayog द्वारा प्रकाशित आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। जलवायु परिवर्तन से संबंधित तथ्यों के लिए Intergovernmental Panel on Climate Change की रिपोर्टों का संदर्भ लिया गया।

दूसरे चरण में, संकलित आँकड़ों का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया। विभिन्न क्षेत्रों-जैसे उत्तर भारत, पश्चिमी भारत, दक्षिण भारत तथा बिहार के वर्षा वितरण, भूजल स्तर और जल उपयोग के आँकड़ों की तुलना कर क्षेत्रीय असमानता की प्रकृति को समझा गया। बिहार को केस स्टडी के रूप में लेकर उत्तर बिहार (बाढ़-प्रवण क्षेत्र) और दक्षिण बिहार (जल-अभाव क्षेत्र) की स्थिति का पृथक विश्लेषण किया गया।

अध्ययन में सांख्यिकीय प्रस्तुतीकरण हेतु तालिकाओं और ग्राफों का उपयोग किया गया, जिससे जल संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग और संकट की प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से दर्शाया जा सके। प्रतिशत, औसत तथा प्रवृत्ति विश्लेषण (Trend Analysis) जैसी सरल सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया। अंततः शोध की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का क्रॉस-सत्यापन (Cross Verification) किया गया। इस प्रकार, अध्ययन पद्धति गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों दृष्टिकोणों का संयोजन प्रस्तुत करती है, जिससे जल संसाधनों की असमानता का समग्र एवं वैज्ञानिक

विश्लेषण संभव हो सका।

परिणाम एवं चर्चा

प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि जल संसाधनों का वितरण भारत में अत्यंत असमान है और यह असमानता पर्यावरणीय, सामाजिक तथा आर्थिक संकटों को जन्म दे रही है। संकलित द्वितीयक आँकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि देश के पूर्वोत्तर एवं गंगा–ब्रह्मपुत्र मैदान क्षेत्रों में जल की उपलब्धता अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों में जल का अभाव गंभीर रूप से विद्यमान है। औसत वार्षिक वर्षा जहाँ पश्चिमी घाट और असम क्षेत्र में 2000–3000 मि.मी. तक दर्ज की जाती है, वहीं राजस्थान के पश्चिमी भागों में यह 300–400 मि.मी. तक सीमित रहती है। यह भौगोलिक विषमता कृषि, पेयजल उपलब्धता और क्षेत्रीय विकास को सीधे प्रभावित करती है।

अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि जल-बहुल क्षेत्रों में बाढ़ की आवृत्ति अधिक पाई जाती है। उदाहरणस्वरूप, बिहार का उत्तरी भाग कोसी, गंडक और बागमती जैसी हिमालयी नदियों के कारण प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित होता है। बाढ़ की स्थिति में मृदा अपरदन, फसल क्षति तथा आधारभूत संरचनाओं को भारी नुकसान होता है। इससे कृषि उत्पादन में अस्थिरता उत्पन्न होती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, दक्षिण बिहार एवं दक्कन के पठारी क्षेत्रों में कम वर्षा और सीमित सतही जल स्रोतों के कारण सूखा एवं जल संकट की स्थिति देखी जाती है। इस प्रकार जल की अधिकता और कमी दोनों स्थितियाँ पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ाती हैं।

भूजल संबंधी आँकड़ों से यह ज्ञात होता है कि अनेक राज्यों में भूजल स्तर में निरंतर गिरावट दर्ज की गई है। अत्यधिक नलकूप आधारित सिंचाई और जल-गहन फसलों की खेती ने इस समस्या को और गंभीर बना दिया है। पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के साथ-साथ बिहार के कुछ जिलों में भी भूजल स्तर में 0.5 से 1 मीटर प्रतिवर्ष तक गिरावट दर्ज की गई है। इसके परिणामस्वरूप भूमि धंसाव, जल गुणवत्ता में गिरावट तथा आर्सेनिक प्रदूषण जैसी समस्याएँ सामने आई हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि जल संकट केवल उपलब्धता की समस्या नहीं, बल्कि प्रबंधन की भी चुनौती है।

सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से अध्ययन यह संकेत करता है कि जल असमानता ग्रामीण गरीबों को अधिक प्रभावित करती है। वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर किसानों की आय में अस्थिरता देखी गई है। सूखा-प्रभावित क्षेत्रों में खाद्य असुरक्षा तथा पलायन की समस्या अधिक गंभीर रूप में उभरती है, जबकि बाढ़-प्रवण क्षेत्रों में विस्थापन और पुनर्वास की समस्या उत्पन्न होती है। महिलाओं और बच्चों पर भी इसका विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जल संग्रहण एवं घरेलू उपयोग की जिम्मेदारी प्रायः उन्हीं पर होती है।

चर्चा के स्तर पर यह कहा जा सकता है कि जल संकट की समस्या केवल प्राकृतिक कारणों का परिणाम नहीं है। अनियोजित शहरीकरण, जल-गहन कृषि नीतियाँ, पारंपरिक सिंचाई पद्धतियाँ और अपर्याप्त जल नीति क्रियान्वयन इस असमानता को और अधिक गहरा करते हैं। जलवायु परिवर्तन ने वर्षा के पैटर्न को अनिश्चित बनाकर इस संकट को और जटिल बना दिया है। अतः जल संसाधनों का वैज्ञानिक, समन्वित और क्षेत्र-विशिष्ट प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है।

समग्रतः परिणाम एवं चर्चा यह स्पष्ट करते हैं कि जल संसाधनों की असमानता बहुआयामी समस्या है, जिसका समाधान केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए नीतिगत सुधार, सामुदायिक सहभागिता, वर्षा जल संचयन, भूजल पुनर्भरण तथा जल-दक्ष कृषि पद्धतियों को समन्वित रूप से लागू करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि जल संसाधनों का असमान वितरण भारत में एक गंभीर पर्यावरणीय एवं सामाजिक-आर्थिक चुनौती के रूप में उभर रहा है। यद्यपि देश में औसत वर्षा पर्याप्त प्रतीत होती है, परंतु इसका भौगोलिक और मौसमी वितरण अत्यंत असंतुलित है। कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा के कारण बाढ़, मृदा अपरदन और

अवसंरचनात्मक क्षति की समस्या उत्पन्न होती है, जबकि अन्य क्षेत्रों में अल्प वर्षा एवं भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण सूखा, पेयजल संकट और कृषि अस्थिरता देखने को मिलती है।

बिहार का उदाहरण इस असमानता को विशेष रूप से स्पष्ट करता है। उत्तर बिहार बाढ़ की समस्या से जूझता है, जबकि दक्षिण बिहार जल-अभाव और गिरते भूजल स्तर की चुनौती का सामना कर रहा है। यह द्वैतात्मक स्थिति दर्शाती है कि जल संकट केवल जल की कमी नहीं, बल्कि उसके असमान वितरण और अप्रभावी प्रबंधन का परिणाम है। इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन, अनियोजित विकास और जल-गहन कृषि पद्धतियाँ इस समस्या को और जटिल बना रही हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जल संसाधनों की उपलब्धता से अधिक महत्वपूर्ण उनका समुचित, संतुलित और सतत प्रबंधन है। यदि वर्तमान प्रवृत्तियाँ जारी रहीं, तो भविष्य में जल सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय संतुलन पर गंभीर खतरा उत्पन्न हो सकता है।

सुझाव

1. एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन को लागू किया जाए।
2. वर्षा जल संचयन एवं भूजल पुनर्भरण को अनिवार्य बनाया जाए।
3. जल-दक्ष कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहन दिया जाए।
4. बाढ़ प्रबंधन में संरचनात्मक और गैर-संरचनात्मक उपाय अपनाए जाएँ।
5. जल नीति में क्षेत्र-विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया जाए।
6. सामुदायिक सहभागिता और जन-जागरूकता बढ़ाई जाए।
7. जलवायु परिवर्तन अनुकूलन रणनीतियाँ विकसित की जाएँ।

संदर्भ सूची

1. केंद्रीय भूजल बोर्ड (2022). भारत में भूजल संसाधनों की वार्षिक रिपोर्ट। नई दिल्ली : जल शक्ति मंत्रालय।
2. केंद्रीय जल आयोग (2021). भारत में जल एवं संबंधित सांख्यिकी। नई दिल्ली : भारत सरकार।
3. नीति आयोग (2018). समग्र जल प्रबंधन सूचकांक रिपोर्ट। नई दिल्ली : भारत सरकार।
4. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (2020). भारत में बाढ़ प्रबंधन दिशा-निर्देश। नई दिल्ली।
5. जल शक्ति मंत्रालय (2012). राष्ट्रीय जल नीति। नई दिल्ली : भारत सरकार।
6. बिहार राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (2021). बिहार में बाढ़ जोखिम विश्लेषण रिपोर्ट। पटना।
7. सिंह, आर. बी. (2015). पर्यावरण भूगोल। नई दिल्ली : प्रयाग पुस्तक भवन।
8. शर्मा, एच. एस. (2014). भारत का भौतिक भूगोल। जयपुर : रावत पब्लिकेशन।
9. प्रसाद, के. (2017). जल संसाधन एवं पर्यावरण संकट। पटना : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. यादव, एस. (2019). बिहार का भौगोलिक अध्ययन। वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
11. UN-Water (2021). The United Nations World Water Development Report 2021: Valuing Water. Paris: UNESCO.
12. Intergovernmental Panel on Climate Change (2022). Climate Change 2022: Impacts, Adaptation and Vulnerability (AR6). Geneva.
13. World Bank (2016). High and Dry: Climate Change, Water and the Economy. Washington, DC.
14. Food and Agriculture Organization (2017). Water for Sustainable Food and Agriculture. Rome.
15. Central Ground Water Board (2022). Dynamic Ground Water Resources of India. New Delhi.

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Geeta Devi
Asst. Pro. Music Departement
Dasmesh Girls college Chak Alla
Baksh Mukerian

for the paper titled

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का समय सिद्धांत

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

शिवेंद्र कुमार

शोधार्थी, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

डॉ. शांत कुमार चतुर्वेदी

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य, विश्वविद्यालय चित्रकूट

for the paper titled

दिव्यांगों में आत्मविश्वास का महत्त्व तथा अष्टावक्र महाकाव्य

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

नूरजहाँ खान राउर

शोधार्थी, एम.ए., नेट-सेट (हिन्दी), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

निर्देशक :

डॉ. माधुरी गर्ग एवं डॉ. महेन्द्र कुमार कुशवाहा

for the paper titled

हिन्दी कथा में पहाड़ी पलायन का यथार्थ एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

पूजा कुमारी
(शोधार्थी)
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

for the paper titled

लोकनाट्य परंपरा में 'बिदेसिया' का स्थान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor
Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor
Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590

ISSN:2348-5639

Impact Factor 6.521

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

रोहिता केतन राऊत

(पीएचडी शोध छात्रा), रामनारायण रुइया स्वयात्त महाविद्यालय, माटूंगा, मुंबई

डॉ. प्रो.पांडुरंग महालिंगे

शोध निर्देशक, मुंबई विश्वविद्यालय

for the paper titled

मिथिलेश्वर और आनंद यादव के साहित्य में व्यक्त नारी विमर्श का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

*This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590
ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सोहद्रा दीवान
अतिथि सहायक प्राध्यापक
शासकीय गुण्डाधूर, स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, कोण्डागांव (छ.ग.)

for the paper titled

छत्तीसगढ़ की साहित्यिक विकास में जनजाति महिलाओं का योगदान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639
January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor
Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor
Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Pankaj Kumar Garg

Affiliation: [Research Scholar, Law, Agra College Agra]

Dr. Reeta Nigam

Supervisor: Professor, Department of Law, Agra College Agra.

for the paper titled

DIGITAL JUSTICE AND THE DIGITAL DIVIDE: ASSESSING THE IMPACT OF VIRTUAL COURT HEARINGS ON MARGINALISED COMMUNITIES IN INDIA

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590
ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Pankaj Kumar Garg
Assistant professor,
HLM Law College,Duhai, Ghaziabad

for the paper titled

DIGITAL JUSTICE AND THE DIGITAL DIVIDE: ASSESSING THE IMPACT OF VIRTUAL COURT HEARINGS ON MARGINALISED COMMUNITIES IN INDIA

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor
Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor
Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590

ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ ਤੁਲੀ
ਖੋਜਾਰਥੀ,ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ,
ਟਾਂਟੀਆ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ ਸ੍ਰੀ ਗੰਗਾ ਨਗਰ

for the paper titled

ਦੋ ਜਪੁ, ਦੋ ਰਚਨਾਕਾਰ: ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਖ ਦੇ ਪਰਿਪੇਖ ਤੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਕ੍ਰਿਤ 'ਜਪੁ' ਜੀ ਸਾਹਿਬ ਅਤੇ ਹਰੀਆ ਕ੍ਰਿਤ 'ਰਾਗ ਆਸਾ ਜਪੁ' ਦਾ ਤੁਲਨਾਤਮਕ ਨਿਕਟ ਅਧਿਐਨ

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

Impact Factor
6.521

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

अनूप कुमार

(शोधार्थी), विश्वविद्यालय गांधी विचार विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

डॉ. शैलेन्द्र कुमार

(शोध निर्देशक और एसोसिएट प्रोफेसर), राजनीति विज्ञान विभाग,
जे. पी. महाविद्यालय, नारायणपुर, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

for the paper titled

पश्चिमी चंपारण जिला (बिहार) में मनरेगा का वर्तमान प्रभाव का एक सामाजिक-आर्थिक अध्ययन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590

ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

Rakesh Kumar Sharma
Designation: PhD Research Scholar
Institutional Affiliation: University Department of Political Science,
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

for the paper titled

Climate Change Politics and Global Governance

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor
Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'
M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights),
DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor
Dr. Varsha Rani
MA (Sanskrit), M. Ed.
UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

शोध समालोचन
Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

आनंद कुमार

(यू.जी.सी नेट-जे.आर.एफ शोधार्थी)

विभागः इतिहास विभाग

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

for the paper titled

वैदिक साहित्य में विज्ञान एवं तकनीकः एक ऐतिहासिक अवलोकन

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor 6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. भुवन मेलकानी

सहायक प्राध्यापक (संविदा) संस्कृत विभाग

सं राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय थलीसैंण

श्री देव सुमन उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय (उत्तराखण्ड)

for the paper titled

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित दुर्ग व्यवस्था की उपयोगिता

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964590 ISSN:2348-5639

शोध समालोचन

Shodh Samalochan

Impact Factor
6.521

An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. दलपत सिंह

सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग एवं संकाय

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

for the paper titled

वर्तमान परिदृश्य में मौलिक अधिकारों का बदलता स्वरूप और भारतीय संविधान : समस्या और समाधान

Published in Shodh Samalochan ISSN:2348-5639

January - March 2026, Vol. 13, Issue-1

Managing Editor

Dr. Mukesh Kumar 'Rishi Verma'

M.A., Vidya Vachaspati, F.H.R. (Human Rights), DCA, Certificate Course in Urdu.

Executive Editor

Dr. Varsha Rani

MA (Sanskrit), M. Ed. UGC NET/ JRF, Ph.D.

***This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper/Topic**